ओ३म्

मिश्र पद्याञ्जली

भाग–१

–मुन्नालाल मिश्र

ओ३म्

मिश्र पद्याञ्जली

भाग–१
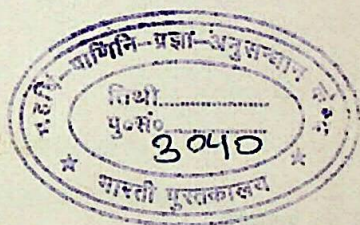
–मुन्नालाल मिश्र

प्रथम संस्करण :

मिती आषाढ़ कृष्ण ८ सं. २०३५ वि.
२७ जून, १९७८ ई. मंगलवार

□

मूल्य : ६–०० रुपये

□

प्रकाशक :

पं. मुन्नालाल मिश्र
१२-१-३३ प्राचीन मल्लेपल्ली,
हैदराबाद–५०० ००१

□

मुद्रक :

अरविंद प्रिंटिंग प्रेस
चूड़ीबाज़ार, हैदराबाद–१२

जीवन परिचय

जन्म : मि. चैत्र शु. ९ सं. १९६४ विक्रमी तदनुसार ता. २२ अप्रेल १९०७ ईसवी बेगम बाजार, हैदराबाद ।

नाम : रामनवमी के दिन जन्म के कारण रामचन्द्र रखा गया पर माता प्यार से मुन्ना कहती रही जो आगे चलकर मुन्ना से मुन्नालाल बन गया ।

पिता : श्री पं. जगन्नाथ जी मिश्र

माता : श्री रुक्मिणी देवी
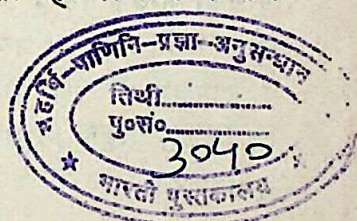
शिक्षा : श्री पं. चुन्नीलाल जी गुराँ (बेगमबाजार) में अक्षर और हिसाब आदि लिखने का ज्ञान प्राप्त किया ।

जीवन यात्रा–

११ वर्ष की आयु का था तब पिता जी का मि. कार्तिक वदी ६, १९७५ वि. को स्वर्गवास हुआ । उसके पश्चात् पढ़ना बन्द करके कपड़े की दुकान में काम सीखते रहा ।

१३ वर्ष की आयु में श्री फतेहचन्द जी तिवारी की कन्या रत्ना के साथ विवाह सम्पन्न हुआ । मि. फाल्गुण शु. ३ सं. १९७७ विक्रमी के दिन । कुछ दिनों के पश्चात् कपड़े की दुकान छोड़कर आटे की गिरनी लगाया ।

बचपन से ही गायन की रुचि थी। लगभग २५ वर्ष की आयु में स्व. श्री मोहनलाल जी बल्देवा के सम्पर्क में आया और होली आदि अवसरों पर सार्वजनिक मंचों पर गाने लगा।

उन दिनों राजस्थानी समाज में बिगाड़क और सुधारक दो दल थे श्री पं. बन्सीलाल जी व्यास बिगाड़क दल के अगुवा और श्री बल्देवा जी सुधारक दल के थे।

अपनी रुचि और स्वभाव के कारण मुझे बल्देवा जी की भूमिका अधिक पसन्द आई, इसलिए उनके साथ रहा और सुधारक विचारों का प्रचार किया। उन्हीं के सम्पर्क के कारण पं. रामचन्द्र जी देहलवी आदि आर्य नेताओं के विचार सुनने को मिले। उन्हीं विचारों को भजनों में ढालकर मंचों पर सुनाता रहा।

प्रथम कन्या उर्मिला का जन्म् मि. श्रावण बदी १० सं. १९९० विक्रमी को हुआ और दूसरी कन्या शशिकला का जन्म् सं. १९९३ विक्रमी श्रावण शु. ३ के दिन हुआ।

उर्मिला को एक लड़का और एक लड़की है। शशिकला को एक लड़का और तीन लड़कियाँ हैं। सन् १९३१ ई से महात्मा गाँधी के हरिजन आन्दोलन से प्रभावित होकर पं. बन्सीलाल जी व्यास आदि के साथ-साथ भाग लेता रहा।

सन् १९३८ ई. में आर्य सत्याग्रह में भाग लिया। सर्व प्रथम ६ व्यक्तियों का जत्था हमारा ही था। यह सत्याग्रह वेगमबाजार में आरंभ किया और चंचलगुड़ा सेंट्रल जेल में १५ दिन रहा तथा सजा होने के पश्चात नौ मास गुलबर्गा कारा-

वास में रहकर छूटा और उसके २३ दिन के पश्चात् माता का स्वर्गवास हुआ।

आजीविका के लिए नौकरी आदि करने से प्रचार कार्य में पूरा समय नहीं दे पाता था। पत्नी के सहमति से उनके पूरे गहने बेचकर राशि एक मित्र के पास जमा करादी और उसके व्याज से गृहस्थी चलने में सहायता मिलती रही।

शुभचिंतकों के स्नेह व सहयोग के कारण आर्थिक संकट का सामना नहीं करना पड़ा। उसी राशि से तथा ऋण लेकर एक मकान क्रय किया जिसमें रह रहा हूँ।

सितंवर सन् १९५७ ई. में हिन्दी-रक्षा आन्दोलन के समय चंढीगढ़ में २५ व्यक्तियों के साथ सत्याग्रह करने पर डेढ़ मास की सजा हुई और अम्बाला सेंट्रल जेल में रहे।

गो रक्षा आन्दोलन के समय संसद-भवन दिल्ली में २५ व्यक्तियों के साथ सत्याग्रह किये। एक मास की सजा हुई। १५ दिन तिहाड़ जेल में और १५ दिन हिसार जेल में रखे गये।

मैं अपने अब तक के विचार गद्य और पद्य में लिपिबद्ध कर चुका हूँ और वे पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और भी भविष्य में प्रकाशित करने की इच्छा है।

भारत सरकार ने स्वतंत्रता सेनानियों के साथ मुझे भी ताम्र-पत्र दिया और २ सौ रु. प्रतिमास पेंशन देना आरंभ कर दिया।

ईश्वर की कृपा से अब तक जो सेवा कार्य करता आ रहा हूँ उसी में लगा रहूँ, यही कामना है।

प्राक्कथन

सर्व प्रथम उस जगदीश्वर का,
ध्यान हमें मन में धरना है।
तत्पश्चात् पाठकों के, सम्मुख—
ये भाव प्रकट करना है ॥

मैंने सैतालीस वर्ष से, संग्रह किया विचारों को है।
उन्हें पिरोकर इन पद्यों में, लिख रख दिया विचारों को है ॥
भलीभाँति से इनको पढ़िये, भलीभाँति से मनन कीजिए।
रखकर सदा स्मृति में इनको, भली भाँति अध्ययन कीजिये ॥
बात बुद्धि में जम जाने पर, दृढ़तापूर्वक ग्रहण कीजिए।
खरी न उतरे कसौटियों पर, उन्हें शीघ्र ही त्याग दीजिये ॥
और आप फिर मुझसे मिलिये, समझा कर अपना बनाइये।
जो भी बात असत्य आपको, दिखती है मुझसे छुड़ाइये ॥
वचन आपको देता हूँ मैं, बात समझ में आ जाने पर।
पकड़ी बात छोड़ दूँगा मैं, सत्य, तथ्य को पा जाने पर ॥
ईश्वर से भी अधिक सत्य को, मन में मान दिया करता हूँ।
सिद्ध सत्य द्वारा होने पर उसको स्थान दिया करता हूँ ॥
मैंने यह कर रखी प्रतिज्ञा, वचन विरोध न आने दूँगा।
नैसर्गिक जो अटल सत्य है, दूर न उससे जाने दूँगा ॥
सत्य सार्वभौमिक त्रैकालिक होता है, यह बात सही है।
यह धरती प्रत्यक्ष साक्षी होकर के सर्वदा रही है ॥
लिखित और विश्वास मात्र पर, चलना यह स्वीकार नहीं है।
उसको कभी नहीं मानूँगा, जिसका कुछ आधार नहीं है ॥
तर्क और विज्ञान साथ में, हो अनुमान प्रमाण साथ में।
सर्व मान्य हो बात साथ ही, हो विधि का सुविधान साथ में ॥
मैं दबाव में या प्रभाव में आकर, बात नहीं मानूँगा।
तुरत मान लूँगा निश्चय ही, जब उसको सच्ची जानूँगा ॥

मेरे विचार क्यों बदले ?

श्री मोहनलाल जी बल्दवा, कसारहट्टे में रहते थे ।।
आर्य समाजी और सुधारक भी जो अपने को कहते थे ।।
गायन आदि बना लेते थे, कभी कभी गाया भी करते ।
विरोधियों के सन्मुख, बातें करने डट जाया भी करते ।।

होली में वे अपने गायन, मुझसे सदा गवाया करते ।
आर्य समाजों में भी मुझको कभी कभी ले जाया करते ।।
पूजनीय श्री रामचन्द्र जी देहलवी जब जब आते थे ।
उनके भाषण सुनने को हम लोग सभी मिल कर जाते थे ।।

इनका यों सम्पर्क प्राप्त कर, सुने देहलवी जी के भाषण ।
फिर तो मुन्नालाल "मिश्र" का, डोल गया मन का सिंहासन ।।
और अन्य विद्वानों के भी, भाषण जब सुनने में आए ।
धीरे धीरे उन सब का संग्रह कर लिया, मुझे मन भाए ।।

पत्नी ने भी साथ दे दिया, हर प्रकार से चाहा जैसे ।
खुल कर के प्रचार करने का, मित्रों अवसर आया ऐसे ।।
पत्नी का सहयोग मिले तो, स्वर्ग नहीं फिर और कहीं है ।।
यदि मिल गई कर्कशा तो नर्क कहीं फिर और नहीं है ।

श्री वंसीलाल व्यास जी के संग, किया कार्य मैंने मिल जुल कर ।
जनता का प्रोत्साहन हर दम, मिलता रहा मुझे था खुलकर ।।
ईश्वर से है यही प्रार्थना, सेवा जब तक जिऊँ करूँ मैं ।
उन्नति करते हुए जगत में रहूँ व हँसते हुए मरूँ मैं ।।

इस पुस्तक की रचना में, जिन मित्रों ने सहयोग दिया है ।
तन से, मन से जिस प्रकार का जितना भी उपकार किया है ।।
उन सब का ही "मिश्र" हृदय से करता है आभार प्रदर्शन ।
मित्रों का जो चला आ रहा, बढ़ता रहे और आकर्षण ।।

भगवान ! कृपा इतनी हम पर हो जाए ।
यह अन्तरात्मा कभी न मरने पाए ।।

यह अन्तरात्मा जागृत रहे हमारी ।
हम बने रहें जग में, सुयोग्य संसारी ।।
हम अन्तरात्मा के प्रतिकूल न होव ।
अनुचित प्रकार की हम से भूल न होवे ।।

सर्वदा प्रभो ! हम न्याय नीति अपनाएँ ।। १ ।। भगवान ।।

प्रेरणा आप जो सदा किया करते हैं ।
जो भी सुझाव नित आप दिया करते हैं ।।
दृढ़ता पूर्वक हम प्रति-दिन चलें उसी पर ।
उस पर ही निर्भर रहें प्रभो ! जीवन भर ।।

निज स्वार्थ हेतु अन्यों को नहीं सताएँ ।। २ ।। भगवान ।।

आक्रमण न आगे होकर करें किसी पर ।
यह निश्चय करके, दृढ़ हम रहें इसी पर ।।
प्रतिकार करें हरदम अत्याचारों का ।
अनुचित उपयोग न होवे अधिकारों का ।।

हम नहीं आप अपने से धोखा खाएँ ।। ३ ।। भगवान ।।

यह मनुज पाप करने ही तब पाता है ।
जब अन्तरात्मा, उसका मर जाता है ।।
इसलिए किया है हमने यही निवेदन ।
कर कृपा विनय यह सुन लीजे हे भगवन ।।

यह "मिश्र" शान से अपनी आन निभाएँ ।। ४ ।। भगवान ।।
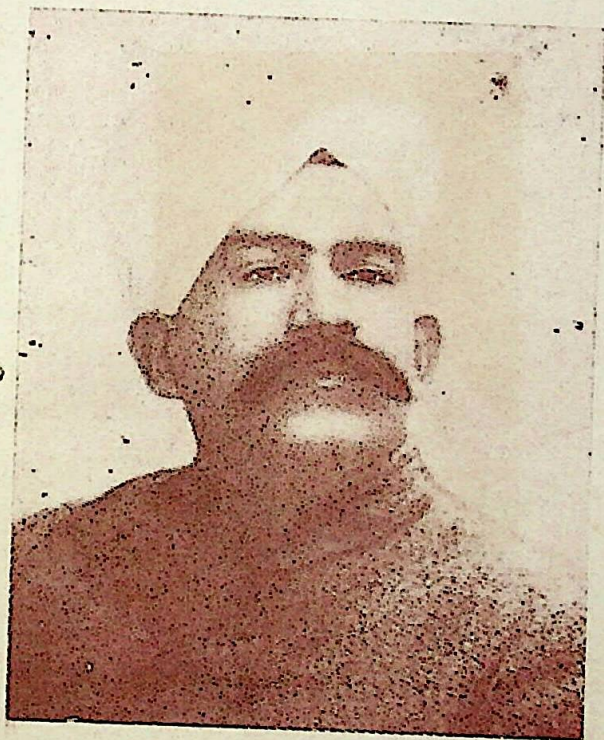
शास्त्रार्थ महारथी पं. रामचन्द्र जी देहलवी

जिनकी ओजपूर्ण तर्कसिद्ध वाणी ने मुझे सत्य अन्वेषण का मार्ग दिखाया।
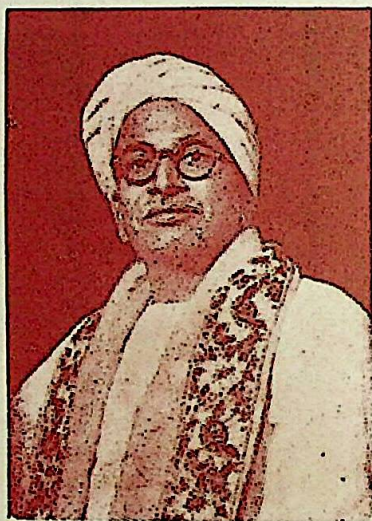
कर्मठ कार्यकर्ता श्री मोहनलाल जी बलदेवा
जिनके सम्पर्क ने मुझे समाज की अन्ध विचारधारा के
विरुद्ध लड़ते रहने का साहस प्रदान किया।
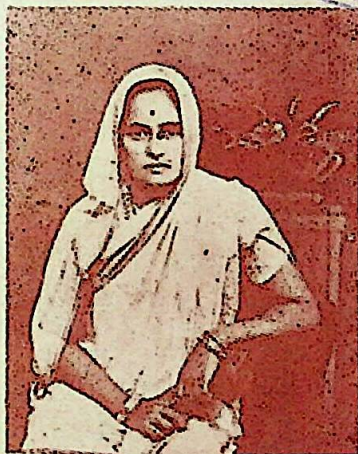
धर्मपत्नी रत्न देवी मिश्र

जन्म १९६६ वि. आषाढ़ बदी ८। जिनके सम्पूर्ण समर्पण हार्दिक सहयोग से मेरा मार्ग सदा निष्कण्टक बना रहा।
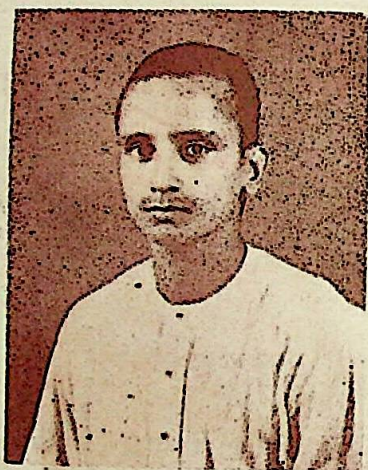
उपदेशक मुन्नालाल मिश्र

ज्ञान और अनुभव से जो सत्य लगा उसे भजनों के माध्यम से जन-जन के हृदय तक पहुँचाने के लिए सदा प्रयत्नशील रहा।

१

है महानतम रचना तेरी,
धन्य धन्य हे माया धारी
दिव्य कलाकृतियों से शोभित,
देखा तेरी धरती सारी

सूरज चन्द्र महान बनाए–अगर अगर तारे अटकाए ।
कोटि जन्म यदि यत्न करें भी, महिमा कही न जाय तिहारी ।। है महान ।।
झाड़ पहाड़ विशाल समन्दर–नाना जीव बसे उर अन्दर
मानव, दानव और असुर सुर, नाना विधि के नर औ नारी ।। है महान ।।
शुद्ध बुद्ध, अनुपम अविनाशी–घट घट वासी तू सुख राशी
परिवर्तन से रहित एक रस, अजर अमर निर्भय सुखकारी ।। है महान ।।

२

हे प्रभो ! जग में हमारी कल्पना साकार हो ।
हो गए स्वाधीन अब, सच्चरित्र का विस्तार हो ।।
वेद विद्या युक्त ब्राह्मण, हों धुरन्धर देश में ।
मार्ग दर्शक हों जगत के प्राप्त सब अधिकार हो ।। हे ।।
क्षत्रियों में वीरता हो, ओज अनुभव हो भरा ।
राम से आचरण वाले, धर्म के अवतार हों ।। हे ।।
सम्पदा धन धान्य से परिपूर्ण हों सब वैश्य जन ।
और हो दातृत्व उनमें, बुद्धि के भण्डार हों ।। हे ।।
पूर्ण हो कौशल कला से, शुद्ध जन समुदाय सब ।
भाव सेवा का लिए, सेवक सुहृदय उदार हों ।। हे ।।
अन्न से भरपूर हो कृषि, वृक्ष फल औ फूल से ।
दुग्ध घृत से पूर्ण हो महि, सत्य से व्यापार हो ।। हे ।।
हे दयामय कर दया, दो आत्मबल ऐसा हमें ।
"मिश्र" कहता है वही करने सदा तैयार हो ।। हे ।।

सुख दुख पाकर भी मन में,
हर्षोर न शोक करूं मैं ।
दो मुझे आत्मबल ऐसा,
सानंद सदा विचरूं मैं ।।

जो कर्म किये हैं मैंने, उन कर्मों का फल पाने ।
तैयार रहूँ मैं हरदम, सुख एवं कष्ठ उठाने ।।
ना क्षमा आपसे माँगूं, भयभीत हुआ घबरा कर ।
साहस पूर्वक सब भोगूं, दो ऐसी शक्ति कृपा कर ।।
नूतन पापों को करने, तैयार न रहूँ डरूं मैं ।। दो ।।

तुम न्याय किया करते हो, अन्याय करोगे कैसे ?
कर क्षमा आप यह, उल्टा व्यवसाय करोगे कैसे ।।
तुम क्षमा किया करते हो, यों लोग कहा करते हैं ।
क्यों क्षमा माँग कर भी वे, फिर दुःख सहा करते हैं ।।
तेरी आज्ञा का पालन, करने पर ध्यान धरूं मैं ।। दो ।।

स्तुति करूं प्रार्थना तेरी, फिर बनूं उपासक तेरा ।
पुरुषार्थ करूं औ समझूं, कल्याण इसी में मेरा ।।
मैं कभी न देने जाऊं, तुझसा सम्मान किसी को ।
ना भूल करूं मैं ऐसी, दूं तेरा स्थान किसी को
अन्यों में और स्वयं में, ऐसी भावना भरूं मैं ।। दो ।।

दुरितो दुर्गुण व्यसनों से, हरदम ही दूर रहूँ मैं ।
रख शुद्ध विचारों को फिर, वाणी से सत्य कहूँ मैं ।।
हो कृपा "मिश्र" पर ऐसी, कर सदाचार का पालन ।
हो सके जहाँ तक कर दूँ, दुखियों का दुःख निवारण ।।
जब अन्त समय आ जाए तो हँसते हुए मरूं मैं ।। दो ।।

हृदय में–उत्तम भाव बसे।
सत्पथ पर चलने को भगवन, हम सब कमर कसें॥

काम क्रोध रूपी विषधर ये, हमको नहीं डसें।
मोह लोभ के फन्दे में हम व्यर्थ न कभी फंसे॥ हृदय में॥

कैसी भी स्थिति में हों पर हम मृदु मुस्कान हँसें।
कृपा आपकी हो हम पर, सुख की वर्षा बरसें॥ हृदय में॥

जन सेवा का प्रभो आप, लो काम सदा हमसे।
स्वार्थ सिंधु में नाव हमारी कभी न जाय धँसें॥ हृदय में॥

इच्छुक हो यह "मिश्र" यही वर माँग रहा तुमसे
साहस देकर प्रभो प्रेरणा कर दो अन्तर से॥ हृदय में॥

५

सदा ही जीवन ज्योति जले।
हे भगवान! देश भारत यह फूले और फल।

मानवता के ढाँचे में यह, मानव नित्य ढलें।
एक दूसरे के प्रति श्रद्धा रख, आगे निकलें॥ सदा ही॥
प्राप्त आत्म बल करें और तप करें कष्ट सहलें।
गर्वित हो जग करे अनुकरण, ऐसी चाल चलें॥ सदा ही॥
छले न जाए और किसी को, हम भी नहीं छलें॥
लोभ मोह की चिकनाहट में, पाँव नहीं फिसलें॥ सदा ही॥
अन्यों की उन्नति होने पर, अपने–कर–न मलें।
अन्यों के वैभव को लखकर, कभी न मन मचलें॥ सदा ही॥
ठोकर लगने से पहले ही भगवन! हम सम्हलें॥
क्रोध और कामाग्नि आदि में "मिश्र" नही पिघलें॥ सदा ही॥

६

हमारा राष्ट्र महान बने—
हे भगवान हमारे हो, साकार सभी सपने ॥

गौरव प्राप्त पूर्व सा होवें, हो तत्पर बढ़ने ।
करने नव निर्माण, सुदृढ़ हो कष्ट सदा सहने ॥ हमारा ॥

माताएँ सब राम कृष्ण से, उत्तम पूत जने ।
आततायियों के आगे डटने एवं लड़ने ॥ हमारा ॥

किसी राष्ट्र से कभी लड़ाई भगवन नहीं ठने ।
रहे मित्र बन और मनों में, हो सद्भाव घने ॥ हमारा ॥

भारतवासी भ्रातृभाव से, बढ़ें काम करने ।
किन्हीं कारणों से भी इनके, आपस में न ठने ॥ हमारा ॥

शुद्ध भाव से नम्र प्रार्थना की है, जो हमने ।
सफल कार्य हो सभी "मिश्र" के जो भी हों जितने ॥ हमारा ॥

७

सदा हम शुभ संकल्प करें ।
हे भगवान विश्वभर में, यह मानता उभरं ॥ सदा ॥

मन पर रहे नियंत्रण अपना, सद्गुण ही निखरें ।
करते हुए सुकर्म किसी से भी हम नही डरें ॥ सदा ॥

महिलाएँ सब निर्भयता से, इस जग में विचरें ।
दूषित हाव भाव पुरुषों के मन में से बिसरें ॥ सदा ॥

निर्विषयी होकर मन वश कर तेरा ध्यान धरें ।
आत्मोन्नति हो नित्य निरन्तर, ऐसे भाव भरें ॥ सदा ॥

साहस पूर्वक हम दलितों दुखियों के, दुःख हरें ।
"मिश्र" सहर्ष जगत् में रह, वीरों की मौत मरें ॥ सदा ॥

बावरे हृदयान्तर पट खोल । साथ ही शुभ कर्मों को रोल ।।

जिसे ढूंढने तू जाता है। फिर फिर फिर वापिस आता है
मिला कहीं क्या बोल ।। १ ।।

वहाँ मिले ? क्या यहाँ नहीं है। सोच तनिक तू कहाँ नहीं है।
घर तो प्रथम टटोल ।। २ ।।

अन्त कहाँ है उस अनंत का। पार मिलेगा कहाँ पंथ का
बात तर्क पर तोल ।। ३ ।।

कर्म भूमि है कर्म किये जा : नाम लिये जा दान दिये जा
बात है यह अनमोल ।। ४ ।।

९

असत् तज सत् की ओर चलें ।
करिये दया दयामय ऐसी कभी न हम फिसले ।।

अन्धकार से हट कर जाएँ, हम प्रकाश ओर ।
निकल मृत्यु से प्राप्त करें हम प्रभो अमृत का छोर ।
सदा हम फूलें और फलें ।। १ ।। असततज ।।

बोलें वचन सदा हितकारी, कटुता रहे न शेष ।
उत्तम शब्द सुने कानों से, मन में रखें न द्वेष ।।
सदा ही जीवन ज्योति जले ।। २ ।। असततज ।।

उन्नति के साधन कर संग्रह, प्रतिदिन करें विकास ।
तज आलस्य प्रमाद करें, उत्पन्न आत्म विश्वास
सदा ही शुभ कर्मों में ढलें ।। असततज ।।

कर संघर्ष शत्रु पर निश्चित विजय करें हम प्राप्त ।
कर के कृपा वीर रस ऐसा, हममें कीजे व्याप्त ।।
संकटों से यह "मिश्र" टलें ।। असततज ।।

भगवन ! यह वरदान दीजिये ।

स्वाभिमान पूर्वक जीवन में, जीने का सामान दीजिये ।

सदाचार सुविचार दीजिये । श्रेष्ठ बुद्धि व्यवहार दीजिये ।
नैतिकता के साथ, जगत में जीने का अधिकार दीजिये ।
भली बुरी बातों की हम को ठीक ठीक पहचान दीजिये ।। भगवन ।।
मानवता से प्यार दीजिये—सभ्य योग्य परिवार दीजिये ।
सत्पथ से न डिगें हम ऐसा, मनमें उच्च विचार दीजिये ।
भगवन ! अपने निज भक्तों में, हमको उच्च स्थान दीजिये ।। भगवन ।।
दुर्जनता के निकट न जाएं सज्जनता को नित अपनाएँ ।
दुष्टों से संघर्ष करें हम, सत्पुरुषों का मन न दुखाएँ ।
कष्टों के घिर जाने पर भी, मुख पर मृदु मुस्कान दीजिये ।।भगवन ।।
दुर्व्यसनों से दूर रहें हम—सद्गुण से भरपूर रहें हम ।
आततताइयों देशद्रोहियों के प्रति मन से क्रूर रहें हम
हे प्रभु शक्ति निधान "मिश्र" को ऐसी शक्ति महान दीजिये ।।भगवन ।।

११

भगवान ! हमारे जीवन का यह व्रत हो ।
हम धर्म कर्म में, रहें सदा ही रत हो ।।

प्रभु नैतिकता का रहे, सदा स्तर ऊँचा ।
मानवता धारण करें, रहे सर ऊँचा ।।
संयम पूर्वक हम, अनुशासन को पालें ।
ऊँचे होकर हम रहें, रहे कर ऊंचा ।।
आचरण हमारे, सभी सत्य संगत हो ।। भगवान ।। १ ।।
आदेश देश के विधान का हम माने ।
कर्तव्य स्वयं का, क्या है यह पहचाने ।।
उच्छृंखलता को, कभी न लाए मन में ।

६

तैयार रहें, सम्मान सदा अपमान ।

यह मानव जीवन, दिन प्रति दिन उन्नत हो ॥ भगवान ॥ २ ॥

व्यसनों से रहकर दूर क्रूरता त्यागें ।

हम करने में, पुरुषार्थ न पीछे भागें ।

सद्गुण को, करने ग्रहण रहें हम तत्पर ।

सच्चे अर्थों में, भाग्य हमारे जागें ।

मत, रहे हमारा ऋषियों का जो मत हो ॥ भगवान ॥ ३ ॥

विद्वान वयोवृद्धों का आदर करके ।

अनुचित, कामों से बचे सदा ही डर के ॥

हम उचित आज्ञा, सदा बड़ों की माने ।

यश सकल विश्व में फैले सदा उभर के ।

है चाह "मिश्र" की, हम में सुख सम्पत हो ॥ भगवान ॥ ४ ॥

८

जग नियन्ता का जिसे, विश्वास है ।

आत्म बल समझो, उसी के पास है ॥

विश्व में, रहता सदा निर्भय वही

असुर दल पर प्राप्त करता जय वही ।

वह मनुज, होता कभी न निराश है ॥ आत्म ॥

कर्म मन वचनों से करता भक्ति जो ।

वन उपासक प्राप्त करता शक्ति जो ॥

वह कभी, रखता न चित्त उदास है ॥ आत्म ॥

मानता जो, ईश का आदेश है ।

जानता, रक्षक मेरा अखिलेश है

इन्द्रियों का, वह न रहता दास है ॥ आत्म ॥

ढोंग से, वह दूर रहता है सदा ।

कर्म, वह निष्काम करता सर्वदा ॥

प्राणियों को, वह न देता त्रास है ॥ आत्म ॥

चित्त में, उद्विग्न होता वह नहीं।
कष्ट पाकर, धैर्य्य खोता वह नहीं ॥
दुर्गुणों का, नित्य करता नाश है। आत्मबल ॥
वह कभी कर्तव्य से गिरता नहीं।
बोल कर फिर वचन से, फिरता नहीं
"मिश्र" उसका तो न होता ह्रास है ॥ आत्म ॥

१३

शक्ति दो हमें शक्ति भण्डार।
शक्ति प्राप्त कर, देश हमारा हो जाए तैयार ॥

तुम से ही कर प्राप्त बने है, शक्ति मान सब देश।
बने हुए शिर मोर है जग में, पाकर स्थान विशेष ॥
बढ़ें हम भी, आगे करतार ॥ शक्ति ॥ १ ॥

तन बल, मन बल, जन बल, धन बल, विद्या बल, के साथ।
नाथ ! संगठन बल दे, हम पर रखो कृपा का हाथ ॥
साथ ही, हमसे रखिये प्यार ॥ शक्ति ॥ २ ॥

बन हम आज स्वतंत्र गये हैं, किंतु रखें यह याद।
सुखसे जिएँ और जीकर लें मनुज जन्म का स्वाद ॥
किसी पर करें न अत्याचार ॥ शक्ति ॥ ३ ॥

बन कर हम कर्तव्य परायण, चाहें ना अधिकार।
पद लोलुपता में न फँसें हम, रखें शुद्ध व्यवहार ॥
बने हम नहीं भूमि पर भार ॥ शक्ति दो ॥ ४ ॥

ऐसा राज्य चलाएँ समझे राम राज्य है लोग।
मन की मन में ना रह जाएँ करें सफल उद्योग ॥
"मिश्र" की सुन लो यही पुकार ॥ शक्ति दो ॥ ५ ॥

कैसे बचूं पाप से भगवन्

पाप किये बिन काम चले ना यत्न किया बहु तेरा अब तक ।
पाप किये बिन पेट भरे ना भूखों मरूं कहो मैं कब्र तक ॥
पाप किये पर ही मिलता धन ॥कैसे॥ १ ॥

चंचल मन ही सदा सताता, सदा मानसिक पाप कराता ।
ऊपर से बलवान इन्द्रियाँ मुझे फसाती मैं फँस जाता ।
हो जाता है दूषित यह मन ॥ कैसे ॥ २ ॥

बचूं पाप से कष्ट उठाऊं लोग सभी कहते पागल हैं ।
घर के सब ही करे अनादर घेर रखा ऐसा दल दल है ॥
कहते हैं है निरा लड़कपन ॥ कैसे ॥ ३ ॥

करूं पाप औ द्रव्य कमाऊं घर वाले बलि बलि जाते हैं ।
करता है सम्मान जगत यह प्रति दिन सब ही गुण गाते हैं ।
घेर रखी है ऐसी उलझन ॥ कैसे ॥ ४ ॥

कभी सोचता हूँ भिक्षा के द्वारा अपना काम चलालूं ।
धर्मी कौन मिलेगा फिर क्यों पापी से ले पाप कमालूं ॥
आ पड़ती है ऐसी अड़चन ॥ कैसे ॥ ५ ॥

यह निष्कर्ष निकाला मैंने पाप करूंगा मैं कम से कम ।
अधम कहा लूंगा पर मैं तो नहीं कहाउँगा अधमा धम ॥
करो "मिश्र" का मार्ग प्रदर्शन ॥ कैसे ॥ ६ ॥

दो ईश हमें आशीष यही आदर्श भरा यह जीवन हो।
उपकार व सेवा में तन्मय सुविचारों से मेरा मन हो॥

हो प्रेम सदा सब जीवों से शुभ कर्मों से अनुराग सदा।
दें त्याग अशुभ कामों को हम वैरी न कभी कोई जन हो॥दो.ईश॥

निर्मल निश्छल हो हृदय तथा शारीरिक और मनोबल हो।
अभिमान न हो हो स्वाभिमान गौरव से ऊंची गर्दन हो॥ दोईश॥

गंभीर वीर हो धीर और हम हरें पराई पीड़ा को।
देशौर जाति परहित में ये तन मन धन सब कुछ अर्पण हो॥ दो.ईश॥

मिल जाये श्रम करने पर जो बिन कष्ट किसी को पहुँचाए।
सात्विक हो खाद्य पदार्थ शुद्ध, बस वही हमारा भोजन हो॥ दोईश॥

तृष्णा व घृणा कुछ क्लेश न हो, औ साथ किसी के द्वेष न हो।
बन मित्र रहे सब ही प्राणी औ नहीं किसी से अनबन हो॥ दोईश॥

व्यवहार कुशलता सज्जनता धार्मिकता हो आस्तिकता हो।
मानवता से हो ओतप्रोत हममें न घुसा दानवपन हो॥ दोईश॥

यह "मिश्र" सदा निर्दोषी हो प्रत्येक समय सन्तोषी हो।
हो सुविचारों का सृजन सदा कुविचारों का मुख मर्दन हो॥ दोईश॥

१६

बना रहे अखिलेश सदा सर्वोपरि भारत देश ।।

रहे विश्व में यह महान बन–पाए सब में सदा बड़प्पन ।
विकसित हो परिपूर्ण रूप से यही चाह है हे जीवन धन ।।
विजयी हो कर संघर्षों में पाए स्थान विशेष ।। बना रहे ।।
शुद्ध सभी के हो अन्तस्थल भाव रहे सब के ही निर्मल ।
और रहे हम सब लोगों में तन बल मन बल धन बल जन बल ।।
सुदृढ संगठन हो हम सब का कभी न पावें क्लेश ।। बना रहे ।।
हम सब का ही एक लक्ष हो सदा न्याय का एक पक्ष हो ।
शुद्ध भाव ही प्रबल रूप से देश भक्ति का यही लक्ष हो ।।
देशी धर्म जाति रक्षण में भूलें राग–द्वेश ।। बना रहे ।।
यही भाव नित प्रेरित करिये, दया दृष्टि इतनी नित करिये ।।
कभी न हों हम विचलित पथ से कभी न हम को कंपित करिये ।।
मांग रहा वर "मिश्र" आपसे दीन दयालु दिनेश ।। बना रहे ।।

१७

भगवन ! हमें क्षमा मत कीजे

जो भी हमने किये कर्म है–उन्हें भोगना यही धर्म है ।
करते समय न हम भय खाए अब क्यों आती हमें शर्म है ।
उचित न्याय पूर्ण देता है दण्ड हमें वह निश्चय दीजे ।। भगवन ।।
शुभ कर्मों का भाता फल है–रहते उसके लिए विकल है ।
क्यों कर ऐसा हो सकता है जब कि आपका न्याय अटल है ।
देकर दण्ड यथा विधि हमको कर के कृपा शरण में लीजे ।। भगवन ।।
ऐसी हो सद्बुद्धि हमारी, न्याय नीति हमको हो प्यारी ।
पालन कर आदेश आपका "मिश्र" बने सुयोग्य संसारी ।।
धर्म बिना कोई न सहायक होंगे भाई और भतीजे ।। भगवन ।।

देश का हो प्रभु नव निर्माण
उन्नति हो प्रत्येक निषय में बने राष्ट्र उद्यान ।

मानव मानव बनकर विचरें नैतिकता के साथ ।
राष्ट्रीयता अपना कर सब बन कर रहे सनाथ ।।
विश्व में पाए हम सम्मान ।। देश का ।।

सफल सभी उद्योग हमारे सफल सभी हों कार्य ।
देशोन्नति का लक्ष हमारा बन जाए अनिवार्य ।।
बने यह भारत देश महान ।। देश का ।।

विद्या का प्रति दिन विकास हो बढे नित्य व्यापार ।
एक दूसरे के संग में हम वर्तें शिष्टाचार ।।
जगत में बढे हमारी शान ।। देश का ।।

कृषिक श्रमिक जन सभी सुखी हो बढ़े अन्न का कोष ।
धनपति साधारण जन को भी हो पूरा संतोष ।।
मात्र प्राणी का हो कल्याण ।। देश का ।।

सभी राष्ट्र के संचालक हो त्यागी औ विद्वान ।
नीति निपुणता को अपना कर पाए उच्च स्थान ।।
कहाएँ जंग में बुद्धि निधान ।। देश का ।।

गोपालन हो जनता द्वारा, गो कटना हो बन्द ।
राम राज्य सा यहाँ राज्य हो आ जाए आनंद ।।
चाहता "मिश्र" यही वरदान ।। देश का ।

लिए देश के जिऊं मरूं सच्चा इन्सान बनूं ।
और बनूं पाए का पत्थर नहीं निशान बनूं ॥

परहित में मरके भी इच्छा नहीं नाम की हो ।
हे भगवान हृदय में मेरे लगन काम की हो ॥
और न मेरे मन में इच्छा मोक्ष धाम की हो ।
दुखियों का दुख हरूँ प्रार्थना सुबह शाम की हो ॥
सुख दुख संकट सब कुछ सहने में चट्टान बनूं ॥ और बनूं ॥

सब कुछ करूं मरूं पर फिर भी मेरा नाम न हो ।
किसी भाँति भी भगवन मेरा काम सकाम न हो ॥
आत्म शान्ति बस मिले और कोई आराम न हो ।
कार्य वही मैं करूं बुरा जिसका परिणाम न हो ॥
बसा करे तू सदा हृदय में तेरा स्थान बनूं ॥ और बनूं ॥

लोग करे गुणगान कभी इसकी भी चाह न हो ।
और करे बदनाम कोई इसकी परवाह न हो ॥
नाम कमाने का मेरे मन में उत्साह न हो ।
साथ किसी के अन्तरात्मा में भी डाह न हो ॥
दृष्टि किसी की में भी मैं चाहे न महान बनूं ॥ और बनूं ॥

सच्चरित्रता सदाचार का निशि दिन ध्यान रखूं ।
कर्म अशुभ शुभ क्या है इसकी भी पहचान रखूं ॥
करते हैं जो आप प्रेरणा उसका स्थान रखूं ।
"मिश्र" चाहता है भारत माता की आन रखूं ॥
अपने पर अधिकार रखूं ऐसा बलवान बनूं ॥ और बनूं ॥

भगवन ! हम मानव है मानवतां का विस्तार करे ।
अपना हित साधे और साथ ही पर उपकार करें ॥

उद्देश्य बनालें जीवन में सत्पथ पर चलने का ।
दृढ़ता पूर्वक मानवता के ढांचे में ढलने का ॥
तज शत्रु भाव सब के ही संग में सद् व्यवहार करें ॥ अपना हित ॥

निश्चय कर लें हम न्याय नीति से द्रव्य कमाना है ।
खाने को जीना नहीं, हमें जीने को खाना है ।
रख जीव मात्र पर दया शुद्ध सात्विक आहार करें ॥ अपना हित ॥

अपने द्वारा हम काम न कोई अनुचित होने दें ।
मन में सद्भावों को प्रतिदिन हम विकसित होने दें ॥
अवनति न हमारी हो ऐसा ही हम उपचार करें ॥ अपना हित ॥

दुष्कर्मों को हम दूर रखें सन्निकट न आने दें ।
रक्खें शरीर को वश में मन जाता हो जाने दें ॥
हम सदाचार पूर्वक रहकर जग में संसार करें ॥ अपना हित ॥

ईश्वर चिंतन का और आत्म चिंतन का लक्ष्य रखें ।
प्रत्येक भाँति की उन्नति का ही भाव समक्ष रखें ॥
अन्यों का पीछे किंतु स्वयं का प्रथम सुधार करें ॥ अपना हित ॥

भगवान ! हमारा इस प्रकार का जीवन बन जाए ।
बन जाए मनुज महान "मिश्र" सब प्राणी सुख पाएँ ॥
तैयार स्वयं होकर सब को ही हम तैयार करें ॥ अपना हित ॥

२१

दो वरदान दयामय ऐसा, भारत वर्ष महान बने ।
सर्व श्रेष्ठ बन सकल विश्व में, सर्वगुणों की खान बने ।।

अभी आंशिक पराधीन है, औरों के आश्रित है दीन है ।।
हो स्वाधीन पूर्ण रूपेण, शूर वीर बलवान बने ।। दो ।।
सर्व शिरोमणी बन सारों में, शशि समान चमके तारों में ।
अन्य राष्ट्र लें सम्मति इससे ऐसा इसका स्थान बने ।। दो ।।
सदा रहे इसका मुख उज्ज्वल, उन्नत हो इसका यश प्रति पल ।
भारत का प्रत्येक नागरिक सभ्य सुबुद्धि निधान बने ।। दो ।।
रहे लोग सब अनुशासन में, नैतिकता धारें जीवन में ।
देशभक्त बन कर जीना है यही "मिश्र" की आन बने ।। दो ।।

२२

भगवान हमारी नाव अटक ना जाए ।
हम भूल चूक कर मार्ग भटक ना जाए ।।

ऐसा हमको ज्ञान दो–सद्विवेक का दान दो ।
घर के घर में ही कभी चटक ना जाए ।। हम ।।
बैरी से बचते रहे नाम सदा जपते रहे ।
ये काम क्रोध मद लोभ गटक ना जाए ।। हम ।।
हम सब पूर्ण स्वतंत्र हों, याद हमें वे मंत्र हों ।
हम अधर बीच में, नाथ लटक ना जाएँ ।। हम ।।
टेक न छोड़ें धर्म की, रखें लगन शुभ कर्म की ।
हम में से सद आचार सटक ना जाएँ ।। हम ।।
यही "मिश्र" की है विनय, रहें सदा होकर अभय ।
बैरी बन कोई हमें हटक ना जाएँ ।। हम ।।

२३

मुझको मेरी पहचान रहे ।
भगवान कृपा इतनी कर दो, बस दूर सदा अज्ञान रहे ॥

मैं कौन हूँ क्या हूँ कैसा हूँ । समझूँ अपने को जैसा हूँ ।
शोध न कर आत्मनिरिक्षण कर लूँ जान कि बस मैं ऐसा हूँ ।
न्यूनाधिक मैं समझूँ न कभी सच्चा मेरा अनुमान रहे ॥ मुझको मेरी ॥

अपने दोषों को भी जानू । अपनी त्रुटियों को पहचानूँ ।
अपने सत्स्वरूप को समझूँ सच्चे मन से सबको मानूँ ॥
इन सारे विषयों का मुझको सच्चे अर्थों में भान रहे ॥ मुझको मेरी ॥

अतिमान नहीं आने पाए । गौरव न कभी जाने पाए ।
बनकर कुबुद्धि मेरी मुझको हाँ कभी न बहकाने पाए ॥
जीवन में मैं अवनति न करूँ स्थिर मेरी मुझमें आन रहे ॥ मुझको मेरी ॥

हाथों न उठाऊँ हानि कभी । लूँ मैं विवेक से काम सभी ।
अपना मैं स्वयं न शत्रु बनूँ—ठोकर न लगे लो रोक तभी ॥
जो भी कुछ कार्य करूँ सन्मुख मेरे तो लक्ष्य महान रहे ॥ मुझको मेरी ॥

समझू मैं उन्नति अवनति को । भूलूँ न कभी भी जग पति को ।
भ्रम में पड़ने दूँ मैं न कभी अपने मन को अपनी मति को ॥
मानवता का जो "भिक्षु" रहा स्थाई व सुरक्षित स्थान रहे ॥ मुझको मेरी ॥

मनो बल ऐसा दो भगवान मनोबल ऐसा दो भगवान
जैसी स्थिति में रहूँ रहूँ तेरे गाता गुण गान ॥

हानि-लाभ सुख-दुख जो भी कुछ मिले कर्म अनुसार ।
हर्ष सहित सब को सहने में रहूँ सदा तैयार ॥
रखूँ कर्तव्य आदि का ध्यान ॥ मनोबल ॥

कष्ट और संकट का डट कर करूँ सदा प्रतिरोध ।
और आतताई से लेता रहूँ सदा प्रतिशोध ॥
न्याय पर रहकर बनूँ महान ॥ मनोबल ॥

डरूँ पाप से देश द्रोह से रहूँ सदा ही दूर ।
अपने वचनों पर दृढ़ रहकर बन दिखलाऊँ शूर ॥
रखू अपनी कमियों का ध्यान ॥ मनोबल ॥

सदाचार को नैतिकता को चलूँ सदा ही धार ।
दुराचार का दुष्कर्मों का करूँ सदा प्रतिकार ॥
बनालूँ ऐसी अपनी आन ॥ मनोबल ॥

मैं सुमार्ग पर चलने मे ही करूँ सदा पुरुषार्थ ।
निर्भय रहकर "मिश्र" साधता रहे स्वार्थ परमार्थ ॥
मुझे यह मिल जाए वरदान ॥ मनोबल ॥

२५

हम सबके करतार तुम्ही हो ।
जड़ चैतन्य जगत जो भी है–
सब के ही आधार तुम्ही हो ।।

हो अखण्ड अविनाशी अविचल, हो सच्चिदानन्द तुम निश्चल
सीमा रहित अपार तुम्ही हो ।।१।। हम सबके ।।

जन्म मृत्यु से परे अभय भी परिवर्तन से रहित अजय भी
दया क्षमा भण्डार तुम्ही हो ।।२।। हम सबके ।।

सर्व शक्ति सम्पन्न विधाता बन्धन और मुक्ति के दाता
रचते यह संसार तुम्ही हो ।।३।। हम सबके ।।

सकल विश्व के हो संचालक प्राणिमात्र के पोषक पालक
करते भी संहार तुम्ही हो ।।४।। हम सबके ।

नस नाड़ी औ छिद्र रहित हो होते न ही कभी विचलित हो
सद्गुण के आगार तुम्ही हो ।।५।। हम सबके ।।

बिना सहायक एक अकेले खेल सभी कुछ तुमने खेले
सब जग की पतवार तुम्ही हो ।।६।। हम सबके ।।

हो सूक्ष्मातिसूक्ष्म भी निश्चय हो महान से महान, निर्भय
उठा रखा सब भार तुम्ही हो ।।७।। हम सबके ।।

हो गति शून्य और गति दाता जीवों के शुभ सम्मति दाता
रखते सब अधिकार तुम्ही हो ।।८।। हम सबके ।।

"मिश्र" सदा बन रहें तुम्हारा बना आपका रहे सहारा ।
करते सब निर्धार तुम्ही हो ।।९।। हम सबके ।।

हम में सुप्रेरणा ऐसी करुणामय हो ।
पापों को करते समय सदा ही भय हो ।।

सब काम करें हम शुद्ध विचारों द्वारा ।
हो भला सभी का हो यह ध्येय हमारा ।।
हम जीवमात्र के हितचिंतक बन जाएँ ।
हम हानि किसी को कभी नहीं पहुँचाएँ ।।
सर्वदा हमारा यह ही दृढ़ निश्चय हो ।। पापों को ।।

ढल जाएँ नैतिकता में अनुशासन में ।
हम देश भक्ति की रखें भावना मन में ।।
हम सदाचार का पालन करना सीखे ।
हम देश धर्म पर हरदम मरना सीखे ।।
ये भाव हृदय में सब के सदा उदय हो ।। पापों को ।।

हम आत्मनिरिक्षण करते रहें सदा ही ।
दुख जीव मात्र का हरते रहे सदा ही ।।
हम अन्तरात्मा के प्रतिकूल न जाएँ ।
हम अपने आदर्शों को भूल न जाएँ ।।
सब कार्य हमारे मात्र नहीं अभिनय हो ।। पापो को ।।

सच्चे अर्थों में हम आस्तिक बन जाएँ ।
वास्तविक रूप में धार्मिक बन दिखलाएँ ।।
हम दुर्व्यसनों से दूर सदाही रहकर ।
हम दिखलावें कर उसी बात को कहकर ।।
भगवान हमारी हम पर सदाविजय हो ।। पापों को ।।

विश्व के रचयिता कर कृपा हे पिता–
वर हमें दे सुपथ को सुझा दो।
पूर्ण स्वाधीन हमको बना दो ।।

देश स्वाधीन तो हो गया है। किंतु वर्चस्व सब, सो गया है ।।
गर्व को ज्ञान को, आत्मसम्मान को–
बुद्धि देकर, हमें फिर जगा दो ।। पूर्ण ।।

आन अपनी स्वयं खो रहा है। दास हाथों, स्वयं हो रहा है।
दासता वह गई, आ रही है नई–
इस नई दासता को मिटा दो ।। पूर्ण ।।

वेश भूषा बदल अब रही हैं। बात विपरीत, सब चल रही हैं।
बुद्धि देकर इन्हें, पास ले कर इन्हें–
जो सिखाना है, इनको सिखा दो ।। पूर्ण ।।

देश अपना पराई है भाषा। हो रहा देखिये क्या तमाशा।
आत्म सम्मान को देश की आन को–
ये न त्यागें सुसद्भाव ला दो ।। पूर्ण ।।

भक्ति अब देश के प्रति नहीं है। कुछ समझ में नहीं आ रही है।
भक्ति की भावना और शुभ कामना को सभी के हृदय में बसा दो ।।

पश्चिमी सभ्यता छा रही है। संस्कृति भी मिटी जा रही है ।।
इस पतन से हमें, तन व मन से हमें, हे दयामय दया कर बचा दो ।।

हो चमत्कार ही "मिश्र" ऐसा, चाहते हम हृदय से है जैसा।
विश्व में नाम हो–हम करे काम वो।
वीर रस कर कृपा वह बहा दो ।। पूर्ण ।।

लिए देश को जिऊँ मरूँ, सच्चा इन्सान बनूँ।
और बनूँ पाए का पत्थर नहीं निशान बनूं ।।

पर हित पर मर कर भी इच्छा, नहीं नाम की हो।
लगन सदा मेरे मन में भगवन सुकाम की हो ।।
नहीं लालसा मेरे मन में मोक्ष धामकी हो।
दुखियों का देख हरूं, प्रार्थना सुबह शामकी हो ।।
दुख सुख संकट सहने सब कुछ मैं चट्टान बनूं ।। और ।। १ ।।

पाप न करूँ और हो जाए तो स्वीकार करूँ।
फल पाने के लिए स्वयं को मैं तैयार करूँ ।।
अत्याचार न सहूँ, नहीं मैं अत्याचार करूँ।
हो जाने पर भूल, भूल का तुरत सुधार करूँ ।।
बसा करे तू सदा हृदय में तेरा स्थान बनूं ।। और ।। २ ।।

मात्र स्वार्थ साधना करूँ ऐसी भी चाह न हो।
जग को ठगकर धनवान बनूँ, इसमें उत्साह न हो ।।
किसी व्यक्ति के प्रति मेरे मन में कुछ डाह न हो।
यश अपयश कुछ मिले मुझे इसकी परवाह न हो ।।
दृष्टि किसी की में चाहे ना व्यक्ति महान बनूँ ।। और बनूं ।। ३ ।।

सच्चरित्रता सदाचार का हर दम ध्यान रखूं।
कर्म अशुभ शुभ क्या है इसकी भी पहचान रखूँ ।।
करते हैं शुभ आप प्रेरणा उसका ज्ञान रखूं।
"मिश्र" चाहता है कि आपका नित सम्मान रखूं ।।
अपने पर अधिकार रखूं ऐसा बलवान बनूँ ।। और बनूं ।। ४ ।।

२९

दो घड़ी प्रभु नाम का कर जाप तू ।
और करना छोड़ दे सब पाप तू ।।

साथ ही कर यम नियम की साधना ।
दुर्व्यसन को त्याग, कर आराधना ।।
शुद्ध मन से नित्य नाम अलाप तू ।। दो ।।

त्याग दुर्जनता तथा कुविचार को ।
और अपना तू सदा सुविचार को ।।
मार्ग कर शुभ ग्रहण अपने आप तू ।। दो ।।

बात अन्तर आत्मा की मान कर ।
पाप की औ पुण्य की पहचान कर ।।
तो न कर पाएगा पश्चाताप तू ।। दो ।।

कर्म शुभ कितना, अशुभ कितना किया ।
"मिश्र" ऋण कितना लिया कितना दिया ।।
दिल दुखा मत ले किसी का शाप तू ।। दो ।।

३०

भेज दो भारत में भगवान ।
कपिल कणाद व्यास गौतम जैसे महान विद्वान ।।

क्षत्रिय राम—कृष्ण अर्जुन से योध्दा भीम समान ।
नीति निपुण चाण्यक शिवाजी जैसे बुद्धि निधान ।।

भरत लक्ष्मण जैसे भ्राता सर्व गुणों की खान ।
हो उत्पन्न देश भारत में—महावीर हनुमान ।।

भामा शाह सरीखे दाता रखे देश की शान ।
वीर महाराणा प्रताप से, रखे स्वयं की आन ।।

भगत सिंह आजाद चंद्र शेखर जैसे बलवान ।
स्वतंत्रता की रक्षा करने करे समर्पण प्राण ।।

वल्लभ भाई पटेल जैसे शासक कुशल महान ।
हर्षित होकर "मिश्र" गर्व से गाएँ उनका गान ।।

३१

प्रार्थना कर चुके अब बात कुछ चरितार्थ की सोंचो ।
स्वार्थ को साध लेने पर, तनिक परमार्थ की सोंचो ।।

भला अपना न करना, बात यह कहते नहीं तुम से ।
किंतु अपने भले के साथ देशहितार्थ की सोंचो ।। प्रार्थना ।।

स्वार्थ को त्याग देने से मनुज कुछ कर नहीं सकता ।
लक्ष परमार्थ का रखकर सदा तुम स्वार्थ की सोंचो ।। प्रार्थना ।।

कहाँ किस बात को कैसे करें सोंचो विवेकी बन ।
समझ शब्दार्थ को फिर बाद में भावार्थ की सोंचो ।। प्रार्थना ।।

तथ्य को प्राप्त करना हो व्यर्थ की बात मत पकड़ो ।
हटो अत्योक्तियों से बात "मिश्र" यथार्थ की सोंचो ।। प्रार्थना ।।

सत्य समझिये लाभ नहीं है केवल प्रभु गुण गान किये से ।
स्वाद न आएगा मिश्री का नाम लिए से ध्यान किये से ।।

स्तुति मत करिये भजन न करिये ऐसा है कहना न हमारा ।
ध्यान नहीं उस प्रभु का धरिये ऐसा है कहना न हमारा ।।
पर उपासना किये बिना तो कुछ भी करना सार नहीं है ।
उससे सदा माँगने में ही मानव का उद्धार नहीं है ।।
होगा लाभ सुनो मानव का–
आदेशों का मान किये से ।। १ ।। सत्य ।।

स्तुति भी और प्रार्थना करना ये दोनों भी कार्य सरल है
हींग फिटकरी लगे न कुछ भी किंतु न होता कुछ भी हल है ।।
भक्त जनों में नाम सरलता पूर्वक हाँ हो ही जाता है ।
साधारण जनता के सम्मुख सन्मानित हो भी जाता है ।।
किंतु आत्म उत्थान न होगा–
इस प्रकार सम्मान किये से ।। २ ।। सत्य ।।

स्तुति करिये गुण गान गाइये और प्रार्थनाएँ भी करिये ।
किंतु साथ ही उपासना पर ध्यान अधिक तर अपना धरिये ।।
ईश्वर के गुण कर्म आदि को अपनाए से होती गति है ।
सफल उपासक बन जाए तो यह ही सच्ची आत्मोन्नति है ।।
सब कुछ मिलता ईश्वर के गुण–
कर्मों की पहचान किये से ।। ३ ।। सत्य ।।

सत्यवादिता सच्चरित्रता रक्खें यम नियमों को पालें ।
मनु ने कहे धर्म के लक्षण, उन सब को जीवन में ढालें ।।
विषयों और वासनाओं का त्याग करें ईश्वर को जाने ।
आत्म निरिक्षण कर के, अपना जो भी है स्वरूप पहचाने ।।
"मिश्र" लाभ है नित्य साधना,
एवं अनुसंधान किये से ।। ४ ।। सत्य ।।

सच्चे अर्थों में गोरक्षक तन मन से बन दिखलाएँगे ।
हे भगवान देश भारत में ऐसे दिन कब आएँगे ॥

धार्मिकता के साथ आर्थिक प्रश्न गाय के संग जोड़ेंगे ।
व्यर्थ विचार अन्ध श्रद्धा के भाव सभी मन से छोड़ेंगे ॥
नियमानुसार सुधार नस्ल का करने की मन में धारेंगे ।
ढंग आधुनिक अपना कर फिर कुछ अपना जीवन वारेंगे ॥
गाय बचेगी त्याग किये से फिर उसका फल पा जाएँगे ॥ हे भगवान ॥

निकट नगर के जो जंगल हो दुग्धालय उसमें खोलेंगे ।
केवल गौवें रखकर उसमें लक्ष अर्थ पर ही जो देंगे ॥
गौ बैलों से नित्य कमाई करके यदि धनवान बनेंगे ।
कृषि गोरक्षा सच्चे अर्थों में कर वैश्य महान बनेंगे ॥
गाय बचेगी अगर गाय को नहीं निकम्मी रख पाएँगे ॥ हे भगवान ॥

मरने के पश्चात गाय को गाड़ेंगे न कभी धरती में ।
चर्म आदि का क्रय विक्रय कर समझेंगे जब लाभ इसी में ॥
गाय कमा कर जब धन देगी सभी लोग गो को पालेंगे ।
और साथ ही दुग्ध गाय का पीने की आदत डालेंगे ॥
गाय बचेगी उसको उसके पाँओं पर जब ठहराएँगे ॥ हे भगवान ॥

नहीं बचेगी केवल माता कह पूजा कर जय कहने से ।
नहीं बचेगी अकर्मण्य बन घर में बैठे चुप रहने से ॥
नहीं बचेगी दुग्ध भैंस का क्रय विक्रय कर के पीने से ।
नहीं बचेगी दुर्बल और निकम्मी रह जग में जीने से ॥
गाय बचेगी योग्य बने पर बात समझ यह समझाएँगे ॥ हे भगवान ॥

३४

सफल प्रार्थना होगी निश्चय ।
किंतु सुनो ! पुरुषार्थ किये पर ।।

अति उत्तम उद्गार हृदय के वाणी द्वारा प्रभु के आगे ।
रक्खें जाते जब कि किसी भी प्राणी द्वारा प्रभु के आगे ।।
उसका है भावार्थ यही वह मान रहा है उन वचनों को ।
इसीलिए तो स्पष्ठ हृदय से खोल कहा है उन वचनों को ।।
होंगे वचन सफल वचनों को–
ठीक ठीक चरितार्थ किये पर ।। १ ।। सफल ।।

मानव के पुरुषार्थ किये पर ईश्वर होता सदा सहायक ।।
वचनों को चरितार्थ किये पर ईश्वर होता सदा सहायक ।।
अकर्मण्य मानव को आस्तिक कहना यह तो बात व्यर्थ है ।
आस्तिकता के साथ एक दम करना ही यह तो अनर्थ है ।।
प्रभु की कृपा प्राप्त करता है–
यह मानव परमार्थ किये पर ।। २ ।। सफल ।।

सफल हुए क्या हो सकते है–नाम मात्र ही रटने वाले ।
अकर्मण्य बन कर कर्तव्य परायणता से हटने वाले ।।
विषयों में फँस कर जो रहते, सच्चरित्र का ध्यान नहीं है ।
कष्ठ प्राणियों को दे रखते नारी का सम्मान नहीं है ।।
जीवन सुधरेगा क्या उनका–
सिद्ध जगत में स्वार्थ किये पर ।।३।।

क्या इस जग में जी न रहे हैं नहीं प्रार्थना करने वाले ।
क्या दुःखों को पा न रहे हैं कहीं प्रार्थना करने वाले ।।
कर्मों का फल क्या न मिलेगा, बिना प्रार्थना कर्म किये पर ।
नास्तिक जन क्या सुखी न होंगे कर उपासना कर्म किये पर ।।
बातें "मिश्र" समझ में आएँगी ।
उत्तम भावार्थ किये पर ।। ४ ।। सफल ।।

नाम जपो आचरण सुधारो ।
नाम जपे से तभी लाभ है ।।
सच्ची आस्तिकता को धारो ।।

आचरणों को बिना सुधारे नाम जपे से लाभ नहीं है ।
केवल वाणी से रटने पर हुआ किसी को लाभ कहीं है ।।
संयम व्रत को धारण कर के मन के कुविचारों को मारो ।। नाम जपो ।।

नाम न जप जो चले नियम पर उनका क्या कल्याण न होगा ।
यम नियमों के बिन निश्चय इस मानव का उत्थान न होगा ।।
तर्क बुद्धि के द्वारा कुछ तो सोंचो समझो और विचारो ।। नाम जपो ।।

अपनी कमियों को दोषों को करके देखो आत्म निरीक्षण ।
काम क्रोध मद लोभ आदि के सन्मुख करो न आत्म समर्पण ।।
कहाँ हुई हो रही कहाँ है भूलें अपनी आप निहारो ।। नाम जपो ।।

क्षमा मांग कर पाप धुल गये ऐसा समझ कभी मत चलिये ।
गत कर्मों के फल पाने को तत्पर रहकर आप सम्हलिये ।।
इन विपरीत भावनाओं को मत तुम अपने गले उतारो ।। नाम जपो ।।

सच्चरित्रता सदाचार ही "मिश्र" सत्य अर्थों में तप है ।
जीवों के कल्याण हेतु जो शब्द निकलते वह ही जप है ।।
वगुला भक्ति बता कर केवल वाणी से मत व्यर्थ पुकारो ।। नाम जपो ।।

शरणागत का अर्थ यही है प्रभु को आत्म समर्पण करना ।

शरण हुए पर अपने पर रहता अपना अधिकार नहीं है ।
केवल प्रभु आज्ञा हो पालन अपना सर्वाधार वही है ।।
नहीं हाथ में अब तो अपने हानि लाभ औ जीना मरना ।। शरणागत का ।।

स्वार्थ सिद्धि करने की अब तो रही न बाकी गुंजायश है ।
शरणा गति प्रभु की होने पर अब तुझ पर ना तेरा वश है ।।
हो उसकी आज्ञा का पालन ध्यान तुझे यह ही है धरना ।। शरणागत का ।।

जग के जीव सभी तेरे हैं विश्व सभी परिवार है तेरा ।
चल विशालतम हृदय बना कर, किसी एक को समझ न मेरा ।।
दुःखों को भी दुख न समझ कर सबके दुःखों को है हरना ।। शरणागत का ।।

केवल पाप फलों से डर कर शरणागत होने जाता है ।
शरणागत हूँ कहकर मुख से किये पाप धोने जाता है ।।
मूर्ख समझकर उस ईश्वर को चाह रहा स्वच्छन्द विचरना ।। शरणागत का ।।

ईश्वर की सत्ता को तो मैं करता हूँ स्वीकार ।
पर सच्चा आस्तिक बनने में हुई है मेरी हार ।।

ईश्वर को प्रत्यक्ष जान कर भी न जानता हूँ ।
इसका अर्थ है यही मान कर भी न मानता हूँ ।।
ईश्वर क्या है कैसा है सब कुछ बखानता हूँ ।
पीता नहीं सुधा को बैठा हुआ छानता हूँ ।।
जपता भी हूँ नाम, घूमता बैठा मैं हर बार ।।१।। पर सच्चा ।।

सर्व शक्ति सम्पन्न विधाता वह जगदीश्वर है ।।
न्याय नियंता फल का दाता वह विश्वंभर है ।।
क्षमा नहीं करता पापों को यह करुणा कर है ।।
फिर भी पाप कर्म करने लगता न मुझे डर है ।।
दिखलाता हूँ ईश्वर के प्रति सदा सर्वदा प्यार ।।२।। पर सच्चा ।।

आस्तिक बनूं वास्तविक इसका कर न सका अभ्यास ।
फिर भी कहता हूँ उसके प्रति है मेरा विश्वास ।।
दूर नहीं है हर दम रहता है वह मेरे पास ।
किंतु उपासक बन न सका इससे है चित्त उदास ।।
देता है प्रमाण उसका तो यह समस्त संसार ।।३।। पर सच्चा ।।

आस्तिकता की झलक मात्र ही आ पाई है मित्र ।
उतर न पाया अभी हृदय में प्रभु का पूरा चित्र ।।
झलक मात्र से कुछ कुछ मेरा जीवन हुआ पवित्र ।
बहुत शेष है अभी उभरना बनना सुंदर चित्र ।।
"मिश्र" जगत का निश्चय ही है सृजन हार कर तार ।।४।। पर सच्चा ।।

वास्तविक रूप ईश्वर का, जाने यह चाह नहीं है।
उसको समझे समझाएँ इसकी परवाह नहीं है ।।

जिसके मन में जो आया, घड़ लिया रूप ईश्वर का ।
दे दिया नाम जिसको भी चाहा उस विश्वंभर का ।।
सर्वज्ञ सर्व व्यापक कह जड़ को चैतन्य बनाया ।
प्रतिमाओं को पुजवाया जैसा चाहा बहकाया ।।
ईश्वर को ईश्वर माने—
इसमें उत्साह नहीं है ।। १ ।। वास्तविक ।।

मन माने जुटा लिए है मन बहलाने के साधन ।
प्रतिमा की करली पूजा समझा ईश्वर आराधन ।।
कर खेल खिलौनों से यों सन्तोष मान लेते है।
हो गया प्राप्त वह ईश्वर इस भाँति जान लेते हैं ।।
होकर गुमराह समझते खुद को—
गुमराह नहीं है ।। २ ।। वास्तविक ।।

जीवन भर इस चक्कर में सब समय गमा देते हैं ।
मिल गई सफसता कहकर विश्वास जमा लेते हैं ।।
है मूर्ख जनों का साधन, कह स्वयं मूर्ख बनते हैं।
कर के कुतर्क लड़ने को तत्पर रहते तनते हैं ।।
जो सत्य तथ्य है उस पर—
करते निर्वाह नहीं है ।। ३ ।। वास्तविक ।।

जो नहीं समझना चाहे उन को समझाएँ कैसे ।
हट पर जो डटे हुए हों फिर उन्हें हिलाएँ कैसे ।।
जिज्ञासा जिसे नहीं है मानेगे कैसे कहिये ।
जो "मिश्र" कह रहा सच है जानेगे कैसे कहिये ।।
सुन बात हमारी कहते यह—
नेक सलाह नहीं है ।। ४ ।। वास्तविक ।।

कहा किसी ने प्रभु भक्तों में रहा आत्म विश्वास चाहिये ।
मैंने कहा बात कोई हो हो जाना अभ्यास चाहिये ।।

मानव तन पाकर मानव को मानव पन अपनाना चाहिये ।
धार्मिकता नैतिकता दृढ़ता जीवन में ले आना चाहिये ।।
दुराचार से दुर्व्यसनों से दूर रहे नित दुष्ट जनों से ।
हित चिंतक बन जीव मात्र के काम न लेवे दुर्वचनों से ।।
आत्मोन्नति के द्वारा मानव करना सदा विकास चाहिये ।
मैंने कहा बात कोई हो हो जाना अभ्यास चाहिये ।

शुभ संकल्प भावना उत्तम रखें सदा ही अपने मन में ।
पड़े देखना नीचा जिससे काम न हो ऐसा जीवन में ।।
कायर कृपण कुटिल बन कर भी जग में जीना नहीं चाहिये ।
अस्त व्यस्त होकर व्यसनों में खाना पीना नहीं चाहिये ।।
वे बोले कुछ दान दक्षिणा देने धन भी पास चाहिये ।
मैंने कहा बात कोई हो हो जाना अभ्यास चाहिये ।।

देश द्रोह से दूर सदा रह देश भक्त बन रहना चहिये ।
काम पड़े पर जो भी संकट आए उसको सहना चहिये ।।
स्वार्थ साधना किंतु स्वार्थ की पराकाष्ठा कभी न करना ।
रक्त चूस कर औरों का धन घर में लाकर कभी न भरना ।।
इस प्रकार से मानवता का कभी न करना ह्रास चाहिये ।
मैंने कहा बात कोई हो हो जाना अभ्यास चाहिये ।।

भली बुरी जिस किसी बात का जीवन में अभ्यास हो गया ।
कितना भी महान हो मानव फिर तो उसका दास हो गया ।।
नहीं असंभव किंतु कठिन है बहुत बड़े साहस के द्वारा ।
प्रबल प्रयत्न किये पर ही फिर व्यसनों से मिलता छुटकारा ।।
मानव को सुमार्ग पर चलने बोले मिला प्रकाश चाहिये ।
मैंने कहा बात कोई हो हो जाना अभ्यास चाहिये ।।

देश का क्या होगा भगवान ।
प्रजातंत्र के योग्य प्रजा का हो रहा निर्माण ।।

अपना स्वार्थ साधने में ही, नेता है तल्लीन ।
स्वाभिमान से हटा देश को बना रहे हैं दीन ।।
देश भक्ति की शुद्ध भावना को न मिल रहा स्थान ।।

माल विदेशों का अपनाने जनता है तैयार ।
गर्म हो रहा है दिन पर दिन अब काला बाजार ।।
देशी वस्तु पसन्द नहीं, कैसे होगा कल्याण ।।

धन की तृष्णा पद लोलुपता छाई है चहुँ ओर ।
मेल मिलावट के धन्दों का बहुत बढ़ गया जोर ।।
सभी चाहते बहती गंगा में कर लेना स्नान ।।

शील रहित चल रहे चित्र अब उन्हें देखकर लोग ।
अपने हाथों लिपटाते हैं दुराचार को रोग ।।
सच्चरित्रता का अब कहिये किसे रहेगा ध्यान ।।

मदिरा पीना जुआ खेलना, बना आज का धर्म ।
नंगे नाच क्लोबों में होना माने गए सुकर्म ।।
क्या है धर्म सुकर्म "मिश्र" अब --कौन करेगा छान ।।

४१

केवल वाणी से माँगे पर क्या प्रभु का वरदान मिलेगा।
विना चले बिन यत्न किये क्या जग में इच्छित स्थान मिलेगा ।।
बिना बीज बोए के ही क्या वृक्ष लगेगा मात्र कहे के ।।
सफल प्रार्थना होएगी क्या, यत्न विना चुप चाप रहे के ।।
अकर्मण्य बन विनय किये से कहो कि क्या सुनवाई होगी।
कर्म रूपितरू के बिन फल की बात कहीं सुनपाई होगी ।।
विना बीज बिन खाद दिये क्या —
इस धरती से धान मिलेगा ।। १ ।। केवल ।।

हे भगवान दया कर हमको सम्पति सुख भण्डार दीजिये।
माँगा करिये और साथ ही उल्टे उल्टे कर्म कीजिये ।।
क्या होगी यह सफल प्रार्थना क्या है यह विश्वास तुम्हारा।
बिना यत्न के किये कहो क्या होगा कहीं विकास तुम्हारा ।।
बिना पढ़े बिन सत्संगति के—
क्या तुम को सद्ज्ञान मिलेगा ।। २ ।। केवल ।।

बिना प्रार्थना किये कर्म कर क्या मानव फल पा न रहा है।
नास्तिक जन भी पनप रहे क्या कहो समझ में आ न रहा है ।।
कायरता से भाग्यवाद का करते दुर उपयोग कई जन।
किंतु वास्तविक भाग्यवाद का करते कोई नहीं समर्थन ।।
बिन कर्तव्य निभाए जग में —
क्या कहिये सम्मान मिलेगा ।। ३ ।। केवल ।।

हम जो चाहे वैसा ही हो कार्य समझलो ईश्वर द्वारा।
कर विचार समझो समझाओ क्या होगा कल्याण हमारा ।।
अपितु अधिक अंधेर मचेगी और अधिक संघर्ष बढ़ेगा।
मनमानी करके यह मानव होकर के निर्द्वन्द लड़ेगा ।।
"मिश्र" तुम्हें कर्मानुसार ही मिलना वह सामान मिलेगा ।। केवल ।।

प्रार्थना करके हृदय में भाव भरना चाहिये।
भावना की भाँति ही पुरुषार्थ करना चाहिये ॥

लाभ केवल प्रार्थना से हो सकेगा कुछ नहीं।
यत्न द्वारा आपका जीवन सुधरना चाहिये ॥ प्रार्थना ॥

वीर योद्धा की तरह कर्तव्य के मैदान में।
शत्रुओं को जीतने दृढ़ हो उतरना चाहिये ॥ प्रार्थना ॥

काम क्रोधादिक भयंकर शत्रु ये जो है प्रबल।
कर प्रथम वश में इन्हें निर्भय विचरना चाहिये ॥ प्रार्थना ॥

साधने में स्वार्थ अपना अन्य का अनहित न हो।
हर समय इस बात पर तो ध्यान धरना चाहिये ॥ प्रार्थना ॥

सर्व व्यापक जान प्रभु को कर्म शुभ करते रहें।
पाप के करते समय तो नित्य डरना चाहिये ॥ प्रार्थना ॥

"मिश्र" उत्तम जन्म मानव का मिला है जब तुम्हें।
तब किसी के भी नहीं मन को अखरना चाहिये ॥ प्रार्थना ॥

४३

ईश्वर के प्रति सुनो हमारा है ऐसा विश्वास।
वह दो नौ दस बीस नहीं है है न पचीस पचास ।।

प्रकट न होता और न होता उसका है विस्तार।
नहीं सिकुड़ता और न बढ़ता वह तो किसी प्रकार ।।
किसी समय भी कभी न होता उसका ह्रास विकास ।। १ ।।

जन्म न लेता और न मरता, रहता सदा पवित्र।
नहीं उतारा जाता उसका किसी भाँति भी चित्र ।।
कभी नहीं आलस्य घेरता, होता नहीं उदास ।। २ ।।

आता जाता नहीं, न रोटी खाता पीता नीर।
नहीं बन्द होता ताले में, है उसका न शरीर ।।
कभी नहीं वह विचलित होता, होता नहीं हताश ।। ३ ।।

नहीं किसी से कभी झगड़ता, और न होती हार।
चाहे उसे मारना कोई, उसे न सकता मार ।।
विकट और अत्यन्त निकट है, रहता हर दम पास ।। ४ ।।

जर जर होता कभी नहीं, होता है उसे न रोग।
नहीं भोगना पड़ता उस को किसी कर्म का भोग ।।
होता नही प्रसन्न कभी वह, होता नहीं निराश ।। ५ ।।

कभी न होती भूल, भूल कर करता नहीं सुधार।
नहीं बदलने पाते उसके कुछ भी "मिश्र" विचार ।।
कभी नहीं थकने पाता लेना न कभी अवकाश ।। ६ ।।

सत्य, यथार्थ, वास्तविकता को।
समझे उतना ज्ञान चाहिए॥
और सरल भाषा में समझाने वाले विद्वान चाहिये॥

शान्त और एकाग्र चित्त हो सुनने वाले पात्र चाहिये।
सत्य ग्रहण करना है हमको लक्ष एक यह मात्र चाहिये॥
और चाहिये सहन शीलता, सरल हृदय का व्यक्ति चाहिये।
और प्रबल जिज्ञासा मन में शुद्ध भावना भक्ति चाहिये॥
और साथ ही श्रोताओं का बनना लक्ष महान चाहिये॥ और॥

नहीं चाहिये उच्छृंखलता करना नहीं कुतर्क चाहिये।
निर्भयता पूर्वक ही करना तर्क वितर्क सुत तर्क चाहिये॥
द्वेष ईर्षा को न स्थान दे, कर ना सदव्यवहार चाहिये।
निश्चय कर लेना यह मन में हम को जीत न, हार चाहिये॥
सत्य तथ्य का संग्रह कर के, कर लेना रस पान चाहिये॥ और॥

प्रति पक्षी की बातें सुन कर ऊब न जाना हमें चाहिये।
अपितु नम्रता पूर्वक ही उसको समझाना हमें चाहिये॥
सच्ची बात हृदय की कहते भय भी खाना नहीं चाहिये।
अपनी बातें उन्हें मनाने व्यर्थ दबाना नहीं चाहिये॥
प्रभाव में आ, दबाव में आ, नहीं छोड़ना स्थान चाहिये॥ और॥

मन मुटाव हो नहीं किसी से ऐसी करना बात चाहिये।
स्वयं मान लेवें प्रति पक्षी ऐसी रखनी बात चाहिये॥
करना नहीं अनर्थ अर्थ का, नहीं उठाना हाथ चाहिये।
जो भी कुछ निर्णय करना हो, किया शांति के साथ चाहिये॥
बार बार है कथन "मिश्र" का इन बातों का ध्यान चाहिये॥ और॥

जितने भी है वाद सृष्टि की रचना पर रहते निर्भर है।
ईश्वर एवं जीव नहीं प्रत्यक्ष सृष्टि से ये बढ़ कर है ।।

ईश्वर को प्रामाणित करने धरती को सन्मुख धरते हैं ।
उस कर्ता की विविध क्रिया का उदाहरण प्रस्तुन करते हैं ।।
जड़ जग में जो दीख रही हैं जो बातें नाना प्रकार की ।
विविध कलाएँ हमें सूचना देती है उस कलाकार की ।।
सृष्टि न होती तो न पता कुछ लगता क्या होता ईश्वर है ।। १ ।।

गुण है वहाँ द्रव्य का होना मानी गई बात निश्चित है ।
ज्ञान शून्य हो द्रव्य वहाँ भी वस्तु न हो पाती विकसित हैं ।।
सर्व शक्ति सम्पन्न सर्व व्यापक सत्ता भी जहाँ न होगी ।
नियमवद्ध क्रम पूर्वक फिर तो समझो रचना वहाँ न होगी ।।
निश्चय कोई सृष्टि रचयिता होगा वह भी अजर अमर है ।। २ ।।

ईश्वर और जीव को माने विना काम चलजा सकता है ।
किन्तु सृष्टि को विन माने तो कुछ न समझ में आ सकता है ।।
जग को मिथ्या कहने वाले जग का ही प्रमाण देते हैं ।
कहने को तो नहीं मानते मन से सदा मान लेते हैं ।।
जग की सत्ता को विन माने, दे न कभी सकते उत्तर हैं ।। ३ ।।

सिद्ध आत्मा हो सकता है इस शरीर की हल चल से ही ।
है प्रत्यक्ष प्रमाण जीव का पंच तत्व की ही यह देही ।।
जड़ जग ही चैतन्य जीव का है सच्चा आधार समझिये ।
जग के बिना नहीं चल पाता कोई भी व्यवहार समझिये ।।
जलचर थलचर नभचर जग पर चल पाते सब नारी नर है ।। ४ ।।

जो जैसा है उसको वैसा—
कहना जग में सत्य वही है ॥

ईश्वर को सर्वज्ञ, जीव को है अल्पज्ञ समझना चाहिये ।
और प्रकृति को जड़ कह कर के इससे नहीं बदलना चाहिये ॥
सूर्य सूर्य है, जल जल ही है, वायु वायु, धरती धरती है ।
जनता एक दूसरे में विपरीत भावना क्यों करती है ॥
निर्भयता से सदा क्यों नहीं करती जो कुछ बात सही है ॥ जो जैसा ॥

ईश्वर है क्यों नहीं मूर्ति में, पर ईश्वर तो मूर्ति नहीं है ।
प्रतिमा के द्वारा ईश्वर की हो सकती क्या पूर्ति कहीं है ?
प्राण मूर्ति में आएगा क्या कर देने से प्राण प्रतिष्ठा ?
रखने से विपरीत भावना सच कहलाएगी क्या निष्ठा ?
नहीं समझ में आता ऐसा क्यों यों जनता मान रही है ॥ जो जैसा ॥

लाभ न होगा जड़ पदार्थ को सर्वेश्वर का स्थान दिये से ।
होती है विपरीत भावना ईश्वर सा सन्मान दिये से ॥
ईश्वर को ईश्वर माने, पर लोग हमें नास्तिक कहते हैं ।
जड़ प्रतिमा को ईश्वर कह कर अपने को आस्तिक कहते हैं ॥
मूर्ति मान प्रभु नहीं, देख लो स्वयं वेद ने बात कही है ॥ जो जैसा ॥

भ्रान्ति पूर्ण बातों में फँसकर झूठी बातें पकड़ रखी है ।
वाक जाल में फँसकर जनता अपने को ही जकड़ रखी है ॥
ईश्वर की करिये उपासना दूर करो इस झूठे भ्रम को ।
ईश्वर को ही ईश्वर माने यह ही सदा चाहिये हमको ॥
"मिश्र" सत्य पथ को अपना कर चलिये कहना बात यही है ॥ जो जैसा ॥

प्रभु का भक्त बना जो होता ।
तो क्यों अकर्मण्य बन कर मैं अपना जीवन यों ही खोता ।।

करता जो प्रभु की उपासना तो क्यों दुर्गुण मुझ में रहते ।
क्यों मैं दुख पाता, पछताता, लोग मुझे पापी क्यों कहते ।।
क्यों उद्विग्न हुआ मैं रोता ।। १ ।। प्रभु का ।।

क्यों मैं इन्द्रिय लोलुप होकर शोक सिंधु में फँसता जाता ।
क्यों वश में होकर तृष्णा के इन्द्र जाल में धँसता जाता ।।
भार पाप का क्यों मैं ढोता ।। २ ।। प्रभु का ।।

सच्चरित्र निर्माण न करके दुराचार को क्यों अपनाता ।
जीवन के क्षण व्यर्थ गमाकर क्यों मैं जग में पाप कमाता ।।
नैया क्यों मझधार डुबोता ।। ३ ।। प्रभु का ।।

वार वार नाना प्रकार की सदा योनियों में क्यों आता ।
प्रभु के जा संनिकट सदा ही क्यों ना मैं आनंद मानता ।।
क्यों न पाप पंकज को धोता ।। ४ ।। प्रभु का ।।

ईश्वर भक्त स्वयं के मुख से इसीलिए मैं कभी न कहता ।
अपने में कमियाँ क्यों रखता ईश्वर भक्त अगर मैं रहता ।।
क्यों मैं खाते रहता गोता ।। ६ ।। प्रभु का ।।

यम नियमों का पालन कर के करता क्यों न योग का साधन ।
"मिश्र" मनुष्य योनि पाकर के करता क्यों न ईश आराधना ।।
क्यों मैं गाल बजाता थोला ।। ५ ।। प्रभु का ।।

जग की दिव्य कला कृतियों पर जब जाता है ध्यान ।
परम पुरुष उस जगदीश्वर का तब होता है भान ।।

मानव की शक्ति से परे हैं कइयों ऐसे काम ।
उन कामों को चला रहा, है ईश्वर उसका नाम ।।
भू मण्डल में घूम रहे हैं बिना लिये विश्राम ।
नित्य निरन्तर कार्य हो रहे देखो आठों याम ।।
अणु अणु में प्रत्यक्ष दीखता भरा हुआ विज्ञान ।। १ ।। जग की ।।

कई कार्य करने में देखो मानव है असमर्थ ।
प्रकृति स्वयं करती है कहते करते लोग अनर्थ ।।
लोग बिना समझे ही करते नित्य वितण्डा व्यर्थ ।
मान रहे चैतन्य शक्ति को कहो हुआ क्या अर्थ ।।
जड़ जग में चैतन्य शक्ति का होता जब अनुमान ।। २ ।। जग की ।।

कर्ता के विन कार्य कभी क्या हो सकता है मित्र
कलाकार के विना कभी क्या उतर सकेगा चित्र ।।
गुणि के विना लिखा जाएगा कैसे कहो चरित्र ।
केवल गुण कों आप मानते है यह बात विचित्र ।
गुणि का पता गुणों के द्वारा–, होता है श्रीमान ।। ३ ।। जग की ।।

कोई भी हो वस्तु जगत की टिके न बिन आधार ।
एक दूसरे पर आधारित है सारा संसार ।।
रचना करता स्थिति में, रखता करता है विस्तार ।
इन सब का आधार भूत है "मिश्र" वही करतार ।।
इन तथ्यों को समझ लोग बनते जब निष्ठा वान ।। ४ ।। जग की ।।

करण रूप जीव होने से कार्य रूप प्रकृति के द्वारा ।
कर्ता बन ईश्वर ने रचदी सृष्टि है यह सिद्धान्त हमारा ।

ब्रह्म जीव प्रकृति तीनों ही कारण रहित कहाते हैं ये ।
तीनों का आरंभ नहीं है अनादि माने जाते हैं ये ।।
प्रकृति अज्ञ अल्पज्ञ जीव है ईश्वर है सर्वज्ञ कहाता ।
मात्र योग्यता का अन्तर है किन्तु आयु में भेद न आता ।।
इन दोनों को ईश्वर से ही मिलता आया सदा सहारा ।। कर्ता बन ।।

सत् है प्रकृति, जीव सत् चित् है, प्रभु सत् चित् आनन्द रूप है ।
जीव प्रजा है पुत्र रूप है, ईश्वर पिता स्वरूप भूप है ।।
ईश्वर एक अनेक है दोनों तीनों का अपना महत्व है ।
जड़ है प्रकृति, जीव औ ईश्वर कहलाते चैतन्य तत्व है ।।
इन तीनों के रहने से ही जग का होता खेल है सारा ।। कर्ता बन ।।

परमाणुओं के मिश्रण से ही प्रभु ने जग की रचना की है ।
जीवों को कर्तव्य कर्म को करने की सुविधाएँ दी है ।।
शुभ कर्मों को करने की ही सदा प्रेरणा दी है उसने ।
कर्मों के प्रति फल जीवों को विविध योनियाँ दी है उसने ।।
कर्मों के फल भोगे बिन तो जीवों को मिलता न किनारा ।। कर्ता बन ।।

जग बनता है और बिखरता, जीव जन्म लेते आया है ।
क्रमशः चक्र निरन्तर चलता यह ही ईश्वर की माया है ।।
पर ईश्वर है सदा एक रस परिवर्तन से रहित विधाता ।
वह निमित्त कारण रहकर ही "मिश्र" कहाता है निर्माता ।।
बातें यही समझ में आई, हमने है जब कभी विचारा ।। कर्ता बन ।।

क्रिया से कर्ता की पहचान गुणी का गुण से होता ध्यान ।
कीजिये चिंतन कुछ श्रीमान सामने रख अनुमान प्रमाण ।।

शब्द गुण रखता है आकाश–स्पर्श करता वायु में निवास ।
अग्नि गुण अपना रखता तेज इन्द्रियों को होता आभास ।।
रसों का रहता जल में स्थान ।। १ ।। कीजिये ।।

और मिट्टी का गुण है गन्ध नाक से है इसका सम्बन्ध ।
आत्मा का गुण है चैतन्य देह का करता सदा प्रबन्ध ।।
बुद्धि से होता इसका भान ।। २ ।। कीजिये ।।

सृष्टि में है अनेक गुण अन्य–गुणी हैं ईश्वर भी चैतन्य ।
समझने पर तो है प्रत्यक्ष–जानते वे हो जाते धन्य ।
न खाली जिससे कोई स्थान ।। ३ ।। कीजिये ।।

द्रव्य के रहते हैं गुण साथ, बात है यह तो जग विख्यात् ।
द्रव्य गुण भिन्न न होते कभी समझने की है यह ही बात ।।
सिद्ध होता इससे भगवान् ।। ४ ।। कीजिये ।।

मान लेने से उसको मात्र–न आस्तिक कहलाता वह पात्र ।
निरन्तर करता है जो खोज सफल होएगा वह ही छात्र ।।
सत्य पर रखे "मिश्र" नित ध्यान ।। ५ ।। कीजिये ।।

स्वयं भू सदा एक रस है अजन्मा,
किसी भी समय में बदलता नहीं है।
कहाता है वह सर्व व्यापक इसी से है,
हिलाता नहीं और चलता नही है ॥

न आता न जाता न खाता न पीता न सोता न रोता न होता है रोगी ।
सभी शक्तियाँ है उसी में समाई किसी अन्य में तो हुई है न होगी ॥
स्वय के नियम पर रहा है सदा ही नियम से कभी वह विटलाता नहीं है।
न आरंभ उसका न है अन्त उसका न है आर उसका न है पार उसका।
सभी चंद्र तारे है नक्षत्र जो कुछ सभी को है मिलता है आधार उसका ॥
बनाता सजाता मिटाता घटाता स्वयं किन्तु देही में ढलता नहीं है।
न करता कभी काम अपने लिए कुछ किसी भाँति की है नही चाह उसको।
कभी भी न आलस्य ही घेरता है न होता कभी भी है उत्साह उसको ॥
किसी लोभ में मोह में क्रोध में फँस किसी भी समय में फिसलता नहीं है।
न होती किसी भी समय में हैं चिंता किसी भी समय में नहीं कष्ट होता।
बनाया गया ना बना है कभी भी न घटता न बढ़ता नहीं नष्ट होता ॥
कभी हो विवश हाथ मलता नही है व जलता नहीं और गलता नहीं है।
रहा दूर है मूर्खों से, सदा ही, रहा बुद्धिमानों के अति ही निकट है।
सरल योगियों के लिए है सदा, पर दुराचारियों के लिए तो विकट है ॥
किया पाप जिसने नियम पर न चलकर कभी फूलता और फलता नहीं है।
दया का है भण्डार निश्चय है यह तो कहाता है पर रूद्र भी नाम उसका।
किये कर्म का फल यथा वत् है देता, सदा न्याय करना रहा काम उसका ॥
इसी से तो कहते हैं आए सदा हम क्षमा मांगने पर पिघलता नहीं हैं।
बिना ज्ञान के तो सदा दूर है वह समय स्थान की तो न दूरी रही है।
गुणों के निकट हो सका जो न मानव सदा भक्ति उसकी अधूरी रही है।
नहीं "मिश्र" वह पा सकेगा कभी भी है गिरता रहा जो सँभलता नहीं है।

हम जीवों में दुर्गुण भर कर,
कितना अपकार किया तुमने।
भगवन हमको बतलाओ क्यों,
यह दुर्व्यवहार किया तुमनें ॥

हम सब में सद्‌गुण ही सद्‌गुण यदि भर देते तो क्या होता।
उपकार आप हम पर इतना यदि कर देते तो क्या होता॥
हम सब सज्जन बन कर रहते तो करते अत्याचार नहीं,
हम करते अत्याचार नहीं तब होता हाहाकार नहीं।
दुर्जनता हममें भरकर यह कैसा व्यापार किया तुमने ॥१॥

जीवों की रचना करना ही मानो तुमने था ठान लिया।
तो चलो ठीक ही किया बात हमने भी लो यह मान लिया॥
हमको उत्तम न बना कर यों क्यों अधम कोटि के रच डाला,
यों लोग पूछते हैं हमसे कैसा है यह रचने वाला।
अपनी बदनामी का भी तो कुछ नहीं विचार किया तुमने ॥२॥

जब सर्व शक्ति सम्पन्न आप, परिपूर्ण व्यक्ति कहलाते हैं।
उत्तम जीवों की रचना क्यों करने में फिर सकुचाते हैं॥
सम्पूर्ण गुणों से युक्त हमें कर देते तो क्या हो जाता,
क्या हानि तुम्हारी हो जाती क्या कहो तुम्हारा खो जाता।
सद्‌गुण हममें ना भर कर क्यों यह बण्टाढार किया तुमने ॥३॥

दुष्टता न हममें होती तो हम क्यों आपस में यों लड़ते।
हिंसा असत्य मद लोभ क्रोध अपनाने क्यों आगे बढ़ते॥
आचरण भ्रष्ट हम क्यों होते, क्यों पतित कार्य करने जाते,
सज्जनता ही जब अपनाते तो 'मिश्र' सभी जन सुख पाते।
ऐसी रचना करने का क्यों कहिए निर्धार किया तुमने ॥४॥

न्यायपूर्वक जितनी सुविधाएँ देनी थी मैंने दी है।
जीवों के कर्मानुसार ही मैंने सभी व्यवस्था की है॥

मैंने अपनी ही इच्छा से सब कुछ किया मनुज का भ्रम है।
जीवों के अपने स्वभाव का, चला निरन्तर आया क्रम है॥
जैसा मनुज कर्म करता है, मैं तो उसका फलदाता हूँ,
मत समझो निज इच्छा से मैं कर्म किसी से करवाता हूँ।
सब कुछ मैं करवाता हूँ यों कहते उनकी नासमझी है॥१॥

प्रकृति पृथक सत्ता है इसमें छुपे हुए कितने ही गुण है।
उनका मैं विकास करता हूँ, रहते वे जितने ही गुण है॥
प्रकृति स्वयं विकसित हो जाए, इसका तो उसमें अभाव है,
दूर नहीं हो सकता उससे जिसका जो कुछ भी स्वभाव है।
उन सबका मैंने विकास कर सृष्टि बना करके रक्खी है॥ २॥

मात्र एक मैं ही मैं होता, फिर तो क्या आवश्यकता थी?
मैं परिपूर्णानन्द स्वयं हूँ, इच्छा क्यों मुझमें हो पाती?
पूर्ण काम मैं कहलाता हूँ, मुझको भी क्या यश पाना था?
क्या मुझको भी अपने मन को सहलाना था बहलाना था?
नासमझी से लोग व्यर्थ की बातें यों करते कैसी है॥ ३॥

प्रकृति स्वयं अज्ञानपूर्ण है इच्छाओं से रहित रही है।
आवश्यकताओं से भी यह तो दूर रही है बात सही है॥
जीव अपूर्ण है चेतन सत्ता, धरती इसके लिए बनाई,
कर्ता बना 'मिश्र' का मैं तो क्या अब भी न समझ में आई।
तीनों सत्ताओं को समझो, युक्तियुक्त जो बात कही है॥ ४॥

प्रभु मन मन्दिर में रहता है उसे ढूँढने जाते क्यों हो।
व्याप्त हो रहा वह सब जग में तुम यह बात भुलाते क्यों हो ।।

कहो कौन सा स्थान शेष है सत्ता जिसकी वहाँ नहीं है।
इधर उधर क्यों भटक रहे हो बतलाओ वह कहाँ नहीं है ।।
कुछ विवेक से सोचो भी तो उससे निकट कौन है दूजा।
किस प्रकार से करनी चहिये उस परिपूर्ण व्यक्ति की पुजा ।।

कर विपरीत आचरण अपने तुम मन को समझाते क्यों हो ।। प्रभु ।।

राम कृष्ण इत्यादि महा पुरुषों ने जिसका नाम लिया है।
जिसकी कर उपासना वे भी जीवन में शुभ कर्म किया है ।।
उसकी ही उपासना कर के अपना जीवन सफल बनाओ।
उसके गुण हो सके जहाँ तक धारण कर के श्रेष्ठ कहाओ ।।

इस प्रकार के श्रेष्ठ मार्ग को अपनाते घबराते क्यों हो ।। प्रभु ।।

सर्वेश्वर की उपासना में व्यय कर दिखलाना न पड़ेगा।
अन्न वस्त्र फल फूल द्रव्य भी रखकर समझाना न पड़ेगा ।।
उसके गुण को धारण करना बहुत कठिन है बहुत सरल है।
बन जाता वरदान कभी तो पीना पड़ता कभी गरल है ।।

अपनी पकड़ी बातों को ही बैठे व्यर्थ निभाते क्यों हो ।। प्रभु ।।

घुसे अन्ध विश्वासों में हीं सदा आप अटके रहते हो।
सत्य तथ्य को छोड़ छाड़कर व्यर्थ आप भटके रहते हो ।।
कर लेते संतोष सदा ही उसे प्राप्त कर लिया समझ कर।
उस अनन्त की ओर न बढ़कर व्यर्थ समय खोते जीवन भर ।।

भूल भूलैया में पड़कर यों "मिश्र" गोल फिरजाते क्यों हो ।। प्रभु ।।

पूर्व जन्म के कर्मों का फल,
यदि जीवों के संग न होता।
तो इतना फिर विविध भाँति,
का दीख रहा वह रंग न होता।

ईश्वर ने अपनी इच्छा से यह शरीर दे डाला होता।
फिर क्यों कोई गोरा होता फिर क्यों कोई काला होता ?
दीन दुखी दुर्बल क्यों होते ? क्यों फिर कोई दुर्बल होते ?
सब समान गुण वाले होते सुन्दर दृढ़ सुडोल तन होता ॥
अन्धा पीड़ित रोगी कोई प्राणीयहाँ अपंग न होता ॥ १ ॥ पूर्व ॥

हम सब सद्गुण धारी होते, हममें कहीं विकार न होता।
जीवों के द्वारा जीवों का कभी कहीं संहार न होता ॥
द्वेश न होता, क्लेश न होता, जग में हाहाकार न होता।
नीच ऊँच का भेद न होता, जग में अत्याचार न होता ॥
जीव सभी सानंद विचरते, कभी जगत में जंग न होता ॥ २ ॥ पूर्व ॥

कर्मों के फल मिलने का जो नियम नहीं ईश्वर का होता।
भाग्यवाद का उदय न होता, फल कर्मो का फिर क्या होता ॥
ईश्वर ने अपनी इच्छा से हमको जब कि बनाया होता।
तो उत्तर दायित्व उसी का उसके ऊपर आया होता ॥
अपराधी मानव न कहाता फिर तो कोई तंग न होता ॥ ३ ॥ पूर्व ॥

हम रहते आधीन उसी के हम करते वह जो करवाता।
अपने पर जब बात न आती, कहो हमारा फिर क्या जाता।
भला बुरा अन्याय न्याय यह जो भी कुछ हमसे हो पाता ॥
पराधीन ही हम जब रहते कौन हमें फिर बुरा बताता ॥
"मिश्र" कभी बदनामी का तो आकर खड़ा प्रसंग न होता ॥ ४ ॥ पूर्व ॥

५६

लोग कहा करते हैं ऐसे ईश्वर सब कुछ कर सकता है।

ऐसा कहते हैं, है उनसे सीधा सादा प्रश्न हमारा।
उत्तर देने में न कभी भो करना देखो ? आप किनारा।।
अपनी इच्छा से क्या ईश्वर जब चाहे तब मर सकता है ? १।।

क्या उत्पन्न कभी कर सकता ऐसा भी पहाड़ इस जग में।
स्वयं उठाने की न शक्ति हो जिसके हाथों एवं पग में।।
ईश्वर कहो चाहने पर भी कभी किसी से डर सकता है ? २।।

पक्ष पात से कभी चाहकर करता क्या अन्याय किसी से ?
लेकर घूस किया, कर सकता क्या ईश्वर व्यवसाय किसी से ?
अपनी इच्छा से जीवों का क्या वह संकट हर सकता है ? ३।।

ऐसा करने पर क्या उसका कभी बड़प्पन रह सकता है।
हाँ कर सकता है ईश्वर, क्या यह कोई भी कह सकता है।।
"मिश्र" अपूर्ण जीव ही ऐसे हो स्वच्छंद विचर सकता है।। ५।।

प्रभु के रूद्ररूप से डरिये ।

वह दयालु है, वह कृपालु है करुणाकर है, वह शंकर है ।
किन्तु साथ ही साथ समझिये महारुद्र है प्रलयंकर है ।।
होना पड़े कुपित उसको भी ऐसा कोई काम न करिये ।। प्रभु के ।।

पाप करे पर क्षमा करे वह ऐसा उसका नियम नहीं है ।
क्षमा किया है कभी किसी को मिला न यह आधार कहीं है ।।
इसीलिए तो कहते है हम, वन स्वछंद न आप विचरिये ।। प्रभु के ।।

क्षमा माँगने वालों को भी दण्ड सदा पाते देखा है ।
किये कर्म के फल स्वरूप ही उन्हें तड़प जाते देखा है ।।
प्रभु के अटल नियम के ऊपर अपना ध्यान सदा ही धरिये ।। प्रभु के ।।

रिश्वत और सिफारिश उसको कभी नहीं फिसला सकती है ।
पाप कर्म करने वाले पर दया न उसको आ सकती है ।।
वह कठोर से भी कठोर है चाहे जितनी आहें भरिये ।। प्रभु के ।।

अब जो कुछ भी कर्म करोगे उसका फल भी पृथक मिलेगा ।
गत कर्मों के जो भी फल है उनको भी वह निश्चय देगा ।।
"मिश्र" अशुभ कर्मों को करने प्रांगण में मत कभी उतरिये ।। प्रभु के ।।

जिसको वेद मना करता है,
काम नहीं वह करना चहिये ।
जिसको करने को कहता हो,
उसमें कभी न डरना चहिये ॥

माता पिता और गुरुजन की बात वेद के यदि विरुद्ध हो ।
नहीं मानना चहिये उनकी किन्तु साथ ही भाव शुद्ध हो ॥
इन सब से ही वेद बड़ा है रखना यह ही बात ध्यान में ।
लक्ष रखे उनकी सेवा का भेद न आए स्वाभिमान में ॥
नित वेदानुकूल भावों को अपने मन में भरना चाहिये ॥ १ ॥

दशरथ जैसा पिता मिले पर हमें राम बन जाना चाहिये ।
मिले हिरणकश्यप के जैसा बन प्रहलाद दिखाना चहिये ॥
कुंभकर्ण औ मेघनाद का कभी कहीं अनुकरण न करना ।
द्रोणाचार्य भीष्म बन उनके जैसा भी आचरण न करना ॥
स्वाभिमान पर जीना चहिये और आन पर मरना चहिये ॥ २ ॥

सचरित्रता को अपनाना अनुशासन का पालन करना ।
सदा शिष्ठता का पालन कर घर भर का संचालन करना ॥
करते हुए भलाई सबकी अपनी सदा भलाई करना ।
दुष्टजनों का साथ न देना, कर शुभ कर्म कमाई करना ॥
उच्छृखल बन व्यर्थ अकड़ कर जग में नहीं विचरना चहिये ॥ ३ ॥

अनुचित उचित परिस्थितियों को अपने सदा ध्यान में रखना ।
करें कौनसा काम किस समय यह सर्वदा ध्यान में रखना ॥
मैं जो कह दूँ वही न्याय है समझ कार्य न प्रतिकूल करना ।
जिसका कुफल मिले जीवन में ऐसी कोई भूल न करना '।
तुम से "मिश्र" हो सके जितना दुख दुखियों का हरना चहिये ॥ ४ ॥

बतलाई गई हमें तो है प्रभु भक्तों की पहचान यही ।

उज्ज्वल रहता चरित्र जिन का मन भी रहता पवित्र जिनका ।
मानव ही नहीं मात्र प्राणी रहता है बना मित्र जिनका ।।
व्यवहार तथा व्यापार सभी जिनका रहता निर्दोष सदा ।
जो कुछ भी होता प्राप्त उन्हें उसमें रहता संतोष सदा ।।
प्रभु के आदेशों पर चलना रहता है जिनका ध्यान यही ।। १ ।।

जीने की इच्छा नहीं जिन्हें, मरने की चिन्ता नहीं जिन्हें ।
केवल अपनी ही स्वार्थ सिद्धि करने की चिन्ता नहीं जिन्हे ।।
प्रभु पर रखते विश्वास अटल होते वे हतोत्साह नहीं ।
सुख की भी जिनको चाह नहीं दुख में वे भरते आह नहीं ।।
आत्माभिमान की हो रक्षा, रहती है जिनकी आन यही ।। २ ।।

भय खाते पापों से, पापी से होते वे भयभीत नहीं ।
कितना भी आत्याचारी हो उनको सकता है जीत नहीं ।।
अन्यायी हो उनके आगे दवना वे तो जानते नहीं ।
बलपूर्वक कोई मनवावें उनकी वे तो मानते नहीं ।।
वे सदा न्याय पर चलते हैं उनका अपना है स्थान यही ।। ३ ।।

स्तुति करें, करें निन्दा कोई ना मिले, मिले सत्कार चहे ।
सत्पथ वे छोड़ नहीं पाते चाहे कुछ मी संसार कहे ।।
स्वीकार भूल को करने में वे कभी मानते हार नहीं ।
बलपूर्वक थोपे वात कोई तो करते वे स्वीकार नहीं ।।
तुम "मिश्र" बनो उनके जैसे बस उनका है सम्मान यही ।। ४ ।।

ईश्वर ने रच सृष्टि दिखाया,
क्या महान आश्चर्य नहीं है ?
रचना कर फिर स्थिति में लाया,
क्या महान आश्चर्य नहीं है ?

सूर्य चन्द्र औ तारा मण्डल अधर अधर जो लटक रहे हैं ।
एक दूसरे के आकर्षण पर जो सब ही अटक रहे हैं ।।
महासमुद्र और ये नदियाँ, जो दिन रात वहा करती हैं ।
कलकल ध्वनि से हमें सुनाकरके यह बात कहा करती है ।
किस प्रकार से हमें बनाया क्या महान आश्चर्य नहीं है ? ईश्वर ने ।।

जीवों को नाना प्रकार की अनुपम जो कि योनियाँ दी हैं ।
अपना काम चलालें इतनी बुद्धि योग्यता सबको ही है ।।
मानव को देकर विशेषता दे डाले विकास के साधन ।
साथ साथ फिर दी स्वतंत्रता, करलें अपना उत्तम जीवन ।।
दे प्रेरणा मार्ग दर्शाया, क्या महान आश्चर्य नहीं है ? ईश्वर ने ।।

अणु अणु में प्रकृति के छिपी जो शक्ति कार्य कर रही निरन्तर ।
उसके कार्य हो रहे उनमें कभी नहीं कुछ आता अन्तर ।।
विविध कलाओं के द्वारा ही कलाकार की भी महानता ।
क्षुद्र जीव अपने विवेक से किसी अंश में उसे जानता ।।
पार न उसका कोई पाया क्या महान आश्चर्य नहीं है ? ईश्वर ने ।।

मानव अपनी साधारण सी करतूतों पर गर्वाता हैं ।
फूला नहीं समाता मन में सदा प्रदर्शन करवाता है ।।
छुपे रहस्य प्रकृति के जो है कुछ कुछ जान लिया करता है ।
सर्व शक्ति सम्पन्न व्यक्ति अपने वो मान लिया करता है ।।
"मिश्र" सदा रहता भरमाया, क्या महान आश्चर्य नहीं है ? ईश्वर ने ।।

जीव न होते प्रकृति न होती,
तो फिर यह संसार न होता ।
ये होते ईश्वर न होता,
तो भी यह विस्तार न होता ।।

प्रकृति अज्ञ अल्पज्ञ जीव है रचना होती फिर यह कैसे ।
ये अनन्त भू मण्डल इनके द्वारा रह सकते स्थिर कैसे ।।
संख्या में अनंत होकर भी रचना करने क्या समर्थ है ?
अल्प शक्ति जीवों से होता यह सब यह अनुमान व्यर्थ है ।।
किसी भाँति भी करें कल्पना यह जग तो तैयार न होता ।। जीव ।।

कार्य रूप प्रकृति न होती औ अल्पज्ञ जीव न होता ।
ईश्वर जो निमित्त कारण है होता नहीं कहो क्या होता ।।
कर्ता बिन कारण होकर भी कार्य कहो कब बन पाएगा ।
तर्क युक्ति से शून्य कहो सिद्धान्त समझ में भी आएगा ।।
किसी एक के अभाव में भी यह सब कारोबार न होता ।। जीव ।।

कर्ता बिन कारण के रचना करें समझ में भी आएगी ।
वस्तु बिना ही वस्तु बताओ कहीं कभी भी बन पाएगी ।।
जब कि सृष्टि क्रम है अनादि यह हुआ कभी आरंभ नहीं है ।
फिर त्रिवाद को नहीं मनाना क्या कहलाता दंभ नहीं है ।।
निर्विकार ईश्वर के द्वारा तो उत्पन्न विकार न होगा ।। जीव ।।

भाव रूप में है जो उसका होता कभी अभाव नहीं है ।
'मिश्र' बताओ क्या यह भगवत् गीता का प्रस्ताव नहीं है ।।
है परमाणु अमिट केवल बस परिवर्तन का नाम नाश है ।
यहाँ नहीं तो कहीं समझिये निश्चित ही उनका निवास है ।।
जीव प्रकृति बिन ईश्वर द्वारा रचना औ संहार न होता ।। जीव ।।

ऋषि दयानन्द का मत हमको इसलिए पसन्द आया ।
तर्क युक्ति बुद्धि से युक्त कह बातें समझाया ।।

पर ब्रह्म है एक वही है जग का निर्माता ।
परिवर्तन से रहित सभी जीवों का सुखदाता ।।
सर्व शक्ति सम्पन्न सभी गुण जिसमें रहते हैं ।
वेद और विद्वान नित्य यों सब ही करते हैं ।।
जिस किसी व्यक्ति ने यत्न किया खोजा उसने पाया ।। १ ।।

जन्म मृत्यु आना जाना एवं घटना बढ़ना ।
उसमें न कभी घटता गिरना या ऊपर को चढ़ना ।।
देह इन्द्रिया तीत छिद्र से शून्य कहाता है ।
आँखों से दीखता नहीं वह समझा जाता है ।।
नक्षत्र सूर्य चन्द्रादि अनेकों रचकर दिखलाया ।। २ ।।

वह निर्विकार है और कभी साकार नहीं होता ।
है निराकार इसलिए प्रकट आकार नहीं होता ।।
वह इसीलिए अवतार कभी ना लेने पाता है ।
वह नहीं स्वयं बनता है—सबको स्वयं बनाता हैं ।।
जो सत्य बात थी कही हमें वह कभी न बहकाया ।। ३ ।।

उस सर्वेश्वर का स्थान नहीं कोई पा सकता है ।
सर्वेश्वर की श्रेणी में तो वह ही आ सकता हैं ।।
बुद्धि से शून्य कोई उसका व्यवहार नहीं होता ।
किसी व्यक्ति का उस पर कुछ अधिकार नहीं होता ।।
है ईश्वर के आधीन सदा ही ईश्वर की माया ।। ४ ।।

यह प्रतिमा जड़ है इसे नहीं चैतन्य मान चलिये ।
उस जगदीश्वर को जगदीश्वर ही सदा जान चलिये ।
इस प्रतिमा में ही क्यों ईश्वर तो सर्व व्यापक है ।
वह अखिल कोटि ब्रह्माण्ड रचयिता है संस्थापक है ।।
यों दर्शन इस निर्भ्रान्त सत्य का सबको करवाया ।। ५ ।।

सब जीवों को अल्पज्ञ कहा पर हैं अनादि सत्ता ।
सीमित है इनके कार्य और है अल्प बुद्धिमत्ता ।।
ये अपने ही कर्मानुसार देही धारण करते ।
ले बार बार ये जन्म जगत में जीते औ मरते ।।
संख्या निश्चित है पर अनंत है ऐसा दर्शाया ।। ६ ।।

है प्रकृति चेतना शून्य और सत्ता अनादि माना ।
है सत् स्वरूप यों कहा इसे मिथ्या न कभी जाना ।।
इस जग के द्वारा ही ईश्वर प्रामाणित होता है ।
इस जग के द्वारा ही जीवों का भी हित होता है ।।
है प्रकृति नित्य विज्ञान आज के ने भी बतलाया ।। ७ ।।

जो करो प्रार्थना ईश्वर से वैसा पुरुषार्थ करो ।
तुम स्वार्थ सिद्धि भी करो साथ ही में परमार्थ करो ।।
केवल जप के करने से तो उद्धार नहीं होगा ।
शुभ कर्म किये बिन समझो बेड़ा पार नहीं होगा ।।
इस झूठा आस्तिकता ने ही नुकसान है पहुँचाया ।। ८ ।।

ईश्वर की उपासना करके अपना उत्थान करो ।
इस जग में रहकर यथा योग्य सबका सम्मान करो ।।
इस जड़ जग से भी लाभ उठालो जितना जी चाहे ।
पर ध्यान रखो यह कभी किसी की हानि न हो जाए ।।
उस ईश्वर द्वारा जब कि मिली है सुन्दर यह काया ।। ९ ।।

वाणी से सत्य कहो पर वह व्यवहार विरुद्ध न हो ।
हो सके वहां तक यत्न करो संसार विरुद्ध न हो ।।
डट जाना है आवश्यक जहाँ वहाँ पर डट जाओ ।
पर करना हो अन्याय वहाँ पर पीछे हट जाओ ।।
हाँ पापी से तो नहीं पाप से डरना सिखलाया ।। १० ।।

अन्यों को शिक्षा देने के पहले तुम स्वयं बनो ।
अन्यों को तुम झेंपाने आगे बढ़ो न व्यर्थ तनो ।।
कर आत्म निरीक्षण स्वयं यत्न कर पहले तुम सुधरो ।
स्वयं सुधर कर अन्यों में तुम उत्तम भाव भरो ।।
यह तथ्य "मिश्र" ने ऋषि के उपदेशों में है पाया ।
ऋषि दयानन्द का मत हमको इसलिए पसन्द आया ।। ११ ।।

बैठा एकान्त में चित्त को थाम कर ।
बात सुनते हैं तव मानते हैं सभी ।।

है बुरी बात क्या है भली बात क्या ।
बुद्धि मत्ता से पहचानते हैं सभी ।।

क्या भली बात है क्या बुरी बात है ।
न्याय पर बात रख छानते हैं सभी ।।

आचरण के समय सोंचते तक नहीं ।
जान कर भी नहीं जानते है सभी ।।

ईश्वर है परिपूर्ण इसी से वह हर्षाता कभी नहीं है।
है आनँद स्वरूप इसलिए वह दुख पाता कभी नहीं है ।।

शुभ कर्मों से प्रभु प्रसन्न होता यों सभी समझ लेते हैं ।
किन्तु वास्तविक बात है उस पर कुछ भी ध्यान नहीं देते हैं ।।
अनुनय विनय करे पर जैसे हम प्रायः प्रसन्न हो जाते ।
यही बात उस ईश्वर पर भी बिन समझे ही सदा घटाते ।।
अप्रसन्न या वह प्रसन्न होकर दिखलाता कभी नहीं है ।। १ ।।

करे शुभाशुभ कर्म मनुज जो यथा योग्य उसका फल मिलता ।
अटल नियम है यह ईश्वर का उसमें आती नहीं शिथिलता ।।
शुभ फल मिलने पर प्रसन्न है ऐसा प्रायः कह देते हैं ।
अशुभ मिले पर अप्रसन्न है ऐसा लोग समझ लेते हैं ।
किन्तु सुनो ! परमेश्वर में परिवर्तन आता कभी नहीं है ।। २ ।।

यही सूर्य का ताप सदा ही हमको जो देता जीवन है ।।
पोषण भी होंता इससे ही विद्वानों ने कहे वचन है ।
इसी सूर्य के द्वारा ही जग में संहार हुआ करता है ।।
सूरज ज्यों का त्यों है पर सब कारोबार हुआ करता है ।।
ईश्वर हमें नहीं सुख देता और सताता कभी नहीं है ।। ३ ।।

सुख दुख जो भी मिलता हमको हम ही इसके निर्माता हैं ।
नियमों के अनुसार "मिश्र" वह ईश्वर तो फल का दाता है ।।
हम अपनी ना समझी से ही यों उल्टा अनुमान लगाते ।
परिवर्तन से रहित एक रस ईश्वर में परिवर्तन लाते ।।
घटता बढ़ता पीता खाता आता जाता कभी नहीं है ।। ४ ।।

ईश्वर तत्व समझने का है नहीं आँख से दिखपाता है।
झूठा समझो उसे कहे जो आँखों से देख जाता है॥

यदि यह बात मान भी लें हम, बन साकार आ गया ईश्वर।
धारण कर शरीर कोई भी भक्तों को दिखा गया ईश्वर।'
आँखो ने देखा शरीर को ईश्वर फिर भी दीख न पाया।
देखा किसको? उसको? जो भी बनी हुई मिट्टी की काया॥
लोगों ने सिद्धांत बनाया जो कुछ उन के मन भाता है॥१॥ ईश्वर॥

मिला जीव को यह शरीर है फिर भी जीव शरीर नहीं है।
जड़ शरीर मृतिका का है यह जीव जहाँ का रहा वहीं है॥
जीव तत्व अत्यंत सूक्ष्म है आँखों से दिख पाएगा क्या।
इस शरीर को देख जीव मिल गया कहा भी जाएगा क्या॥
इसी भाँति ईश्वर को समझो नहीं दीखने में आता है॥ २॥ ईश्वर॥

परिवर्तन से रहित एक रस वह ईश्वर अविनाशी जब है।
होकर प्रकट देह धारण कर देखा जा सकता ही कब है?॥
कभी सत्य क्या हो सकती है मानव की विपरीत कल्पना।
है सिद्धांत विरोध जहाँ पर रहता है विश्वास न अपना॥
है इन्द्रियाँतीत वह ईश्वर वेद स्वयं जब यह गाता है॥३॥ ईश्वर॥

तोड़ मरोड़ अर्थ मंत्रों के कर डाला है इस मानव ने।
अपने मन के भाव उठाकर भर डाला है इस मानव ने॥
जो निर्भ्रान्त सत्य था उस पर पर्दा डाल दिया है इसने।
अपना स्वार्थ सिद्ध करने को ऐसा कार्य किया है इसने॥
"मिश्र" सत्य को समझो तुमतो अगर सत्य मन को भाता है॥ ४॥

बोला हुआ वाक्य मत बदलो,
यदि वचनों में सच्चाई है।
बुद्धि तर्क पर टिके बात जो,
बनों उसी के अनुयाई है ॥

कही बात का अपने मुख से खण्डन करना उचित नहीं है।
एक बार खण्डन करके फिर मण्डन करना उचित नहीं है॥
खींच तान कर बात निभाना, यह तो ऊँचा लक्ष नहीं हैं।
ऐसा करने पर तो मानव कहलाता निष्पक्ष नहीं है॥
विषयान्तर हो बात निभाना यह तो झूठी चतुराई हैं॥ १ ॥
जिन बातों का किया समर्थन उनको सदा निभाना चहिये।
रहे विरोधाभास किन्तु—हाँ वचन विरोध न आना चहिये॥
पापों का फल मिलता निश्चित, कहते क्षमा माँगते फिर भी।
किसी स्थान पर तो निज वचनों पर रहना सीखो तुम स्थिर भी॥
जो निर्भ्रान्त सत्य हैं बातें नहीं समझ नें क्यों आई है॥ २ ॥
परिवर्तन से रहित अजन्मा नहीं मृत्यु का जिस को भय है।
मान लिया अवतार वाद को फिर विरोध में क्या संशय है॥
कहा उसे आनंद रूप, उसके पीछे जब दुख लिपटाया।
मायापति कह उसके पीछे लिपटा रक्खी तुमने माया॥
कैसी ये बातें विचित्र हैं जो कि आपके मन भाई है॥ ३ ॥
अजर अमर सब कुछ कह कर भी पीड़ित रोगी सभी बनाया।
अजय बताया पर असुरों से बुरी तरह उसको पिट वाया॥
मूर्ख बनाथा उसे रुलाया, और गिराया सदाचार से।
ईश्वर को भी गोल फिराया, मन में आया उस प्रकार से॥
कर विचार फिर कहो "मिश्र" से ऐसी क्यों मन में आई है॥ ४ ॥

प्रभु ने सृष्टि रची मानव ने कर डाला निर्माण नगर का ।

उस ईश्वर ने बिना करो के अनुपम सूरज चन्द्र बनाए ।
इस मानव ने निज हाथों से विविध भाँति के दीप जलाए ॥
उस ईश्वर ने जल निधि की रचना कर अनुपम स्त्रोत बहाए ।
इस मानव ने जल का संग्रह करके नल घर घर पहुँचाए ॥
सकल विश्व का संचालक वह काम चला लेता यह घर का ॥ प्रभु ॥

अन्नोत्पन्न न करता मानव ईश्वर रोटी नहीं बनाता ।
मानव सदा बदलता ईश्वर में न कभी परिवर्तन आता ॥
मानव है स्वतंत्र कर्मों मे प्रभु है उनके फल का दाता ।
मानव के कामों में ईश्वर हस्तक्षेप न करने जाता ॥
पृथक काम है इस मानव के पृथक काम हैं उस ईश्वर का ॥ प्रभु ॥

मानव की माया विचित्र है ईश्वर की महिमा महान है ।
मानव है अल्पज्ञ किन्तु सर्वज्ञ और वह गुण निधान है ।
मानव है अनन्त संख्या में पर न कोई उसके समान है ॥
मानव निम्न स्तर वाला है ईश्वर का सर्वोच्च स्थान है ॥
मानव बाहर बाहर करता काम चलाता वह भीतर का ॥ प्रभु ॥

मानव कितना भी महान हो फिर भी उसमें कमी रहेगी ।
कितना भी पवित्र हो उसमें विषय वासना जमी रहेगी ॥
कितना भी हो भला व्यक्ति फिर भी बुराइयाँ रमी रहेगी ।
बाहर चाहे दिखे नहीं पर मन के भीतर थमी रहेगी ॥
भेद "मिश्र" ने दिखलाया है नारायण का एवं नर का ॥ प्रभु ॥

बुद्धि से तोलकर बात को बोलकर,
फिर न उससे कभी भी टलेंगे ।
हर समय हम निभाते चलेंगे ॥

सच्चिदानन्द है एक ही वो । हम बताएँगे उसको नहीं दो ।
सर्व व्यापक है वो फिर बदलता न जो ।
वाक्य कहकर उसी में ढलेंगे ॥ १ ॥ हर समय ॥

कह अजन्मा नहीं जन्म देंगे । मृत्यु से दूर उसको रखेंगे ।
निर्विकारी है जो दे उसे देह को ॥
वह विकारी उसे–ना छलेंगे ॥ २ ॥ हर समय ॥

है रचयिता जगत का बताकर । हम रचेंगे न प्रतिमा बनाकर ।
जन्मदाता उसे–कह विधाता उसे ।
बन विधाता न हम दोष लेंगे ।। २ ॥ हर समय ॥

कर्म फल से रहित है उसे हम, हम न उसका रखेंगे बदल क्रम ।
जो है भय से परे–है समय से परे–
हम उसे किस तरह बाँध लेंगे ॥ ४ ॥ हर समय ॥

आत्मा का वही आत्मा है । प्राण का प्राण परमात्मा है ।
वह निराकार है –वह सदा धार है ।
शक्ति कर प्राप्त उससे फलेंगे ॥ ५ ॥ हर समय ॥

वह न आता न वह "मिश्र" जाता । आँख से भी नहीं दीख पाता ।
इन्द्रियों से परे–रह के रचना करे ।
हम न उसका कभी स्थान लेंगे ॥ ६ ॥ हर समय ॥

क्यों अल्पज्ञ समझते उसको जो सर्वेश्वर है महान है।
क्यों अनेक बतलाते उसको जब न कोई उसके समान है।।

सकल विश्व को जो रचता है तुम करते हो उसकी रचना।
विमल बुद्धि रखने वाले के लिए असंभव है यह जचना ।।
मन समझाना और बात है मन बहलाना और बात है।
किन्तु यथार्थ सत्य है उसको समझा जाना और बात है ।।
बन्द किया करते हो उसको जिसका तो सर्वत्र स्थान है ।। क्यों अनेक ।।

निर्विकार को निर्विकार ही रहने दो विकार मत थोपो।
परे प्रकृति के कहलाता वह तुम अपने विचार मत थोपो ।।
है सच्चिदानन्द अविनाशी, परिवर्तन से रहित कहा है ।।
शुद्ध बुद्ध आनंद रूप हैं मन इन्द्रिय से दूर रहा है ।।
तुम अपने स्तर पर ले आते यह निश्चय विपरीत ज्ञान है ।। क्यों अनेक ।।

अपने गज से उसे मापते अपने बट से उसे तोलते।
जड़ को जीवों को ईश्वर कह ईश्वर को जड़ जीव बोलते ।।
जैसा है वैसा न समझकर क्यों कल्पना व्यर्थ करते हो।
हटकर यों यथार्थता से तुम सच समझो अनर्थ करते हो ।।
उस महान को तुच्छ समझते कैसा यह उल्टा विधान है ।। क्यों अनेक ।।

तुम न उपासक बनकर उसके उससे तुम अपनी करवाते।
उसकी ओर न बढ़कर तुम तो अपनी ओर उसे ले आते ।।
जीव जीव ईश्वर ईश्वर है भिन्न भिन्न दोनों का स्तर हैं।
भिन्न भिन्न गुण हैं दोनों के समझो बात यही हितकर है ।।
जो असत्य है उसे निभाते "मिश्र" कहाँ के गुण निधान है ।। क्यों अनेक ।।

हम कहते हैं ईश्वरत्व जो रखता है वह ही ईश्वर है।
सर्व व्याप्त है इसीलिए तो उसका निश्चित कहीं न घर है।।

पूर्ण कहाता इसीलिए तो उसे न कुछ आवश्यकता है।
सर्व शक्ति सम्पन्न है इससे कभी नहीं वह तो थकता है।।
परिवर्तन से रहित है इससे नहीं जन्मता है मरता है।
सदा एक रस होने से ही प्रकट न कभी हुआ करता है।।
उस सा नहीं अन्य है दूजा इसीलिए वह सदा निडर है।। हम ।।

निर्विकार है इसीलिए तो वह साकार नहीं हो सकता।
परे प्रकृति से है इससे उसका आकार नहीं हो सकता।।
निजी गुणों से युक्त रहा है इसीलिए तो कहा सगुण है।
दुर्गुण से है शून्य सदा ही, कहलाता इससे निर्गुण है।।
लेता नहीं सभी को देता इसीलिए तो विश्वंभर है।। हम ।।

यह भी है विशेषता उसकी चलता नहीं चलाना सबको।
बिना करो के करता सब कुछ बनता नहीं बनाता सबको।।
बिना कान के वह सुनता है बिन वाणी का वह वक्ता है।
शक्ति न व्यय होती है उसकी रखता वह ऐसी क्षमता है।।
सभी सृष्टियों को धारण कर रखता आया सदा अधर है।। हम ।।

वह सूक्ष्माति सूक्ष्म है फिर भी, वह विशाल से भी विशाल है।
रचना करता पालन करता संहारक है महा काल है।
सभी आत्माओं के भीतर घुसा हुआ अत्यन्त निकट है।
इन्हीं गुणों की दूरी से ही उसका मिलना महा विकट है।।
वह महान से भी महान है अजय अगोचर अजर अमर है।। हम ।।

सत् चित् नित आनंद रूप है, इससे होता नहीं दुखी है।
सुख स्वरूप होने से ही तो रहता आया सदा सुखी है ॥
हुआ कभी आरंभ न उसका होता उसका अन्त नहीं है।
उसके जैसा अन्य कहीं भी बलशाली श्रीमंत नहीं है ॥
"मिश्र" आयु में जीव प्रकृति के कहलाता समानता पर है ॥ हम ॥

बस इसी वास्ते ही मनुज सर्वदा—
आन अपनी है जब कि निभाता नहीं।
कर न पाता है उत्थान इस ही लिए,
औ सुयश भी इसी से हैं पाता नहीं।
दोष अन्यों के दिखते सदा ही इसे,
दोष अपने स्वयं देख पाता नही।
भात अपनी निभाता ने पकड़ी हुई,
आन अपनी निभाने है जाता नहीं ॥

वह सर्व शक्तियों से है परिपूर्ण कहाने वाला।
रच दिया जगत को तो फिर, क्या बड़ा कर्म कर डाला ।।

सम्पूर्ण योग्यताएँ भी उसमें रहती आई है।
सम्पूर्ण गुणों वाला भी वह देता दिखलाई है।।
अन्तर्यामी भी वो है सर्व व्यापक भी वो है।
वह एकमात्र सर्वोपरि सत्ता कहलाता जो है ।।
क्यों आप प्रशंसा करके जपते हो उसकी माला ।। १ ।। वह ।।

होकर अनन्त अविनाशी अव्यय भी कहलाता है।
अनुपम महानतम जब यों उसको बोला जाता है।।
उसकी कृतियों पर फिर क्यों आश्चर्य किया करते हो।
कह धन्य धन्य उसको यों आश्चर्य किया करते हो ।।
सर्वेश्वर हो उसने क्या कर डाला कर्म निराला ।। २ ।। वह ।।

उसकी महानता को तुम उसके कर्मों से तोलो।
उसको तुम पहले समझो फिर वाणी द्वारा बोलो ।।
यह उसके लिए बताओ क्या काम असाधारण हैं।
क्यों करें प्रशंसा इतनी बतलाओ क्या कारण है ।।
मत बुरा मानिये हमने तो यह सारांश निकाला ।। ३ ।। वह ।।

करते विचार हो तुम तो अपने को सन्मुख रखकर।
आश्चर्य इसी से करते उसकी रचना को लखकर ।।
हाँ "मिश्र" उचित है यदि तुम कुछ लाभ उठा लेते हो।
उपयोग बुद्धि का करके तुम उसे मान देते हो ।।
पर हो समर्थ उसने यह जो कुछ भी किया सँभाला ।। ४ ।। वह ।।

ईश्चर चिंतन करें बैठकर,
इसकी सच्ची चाह कहाँ है।
करें आत्म चिंतन यह मानव के,
मन में उत्साह कहाँ है ।।

मनमानी कर व्यर्थ कल्पना, ईश्वर का स्वरूप घड़ डाला।
जो निर्भ्रान्ति रूप प्रभु का था उस पर इसने पर्दा डाला ।।
कहता समझ लिया सब मैंने, उस अनंत का अन्त पा लिया।
शेष जानना कुछ न रहा अब जो पाना था पन्थ पा लिया ।।
ऊपर से दावा है इसका कहिये हम गुमराह कहाँ है ।। ईश्वर ।। १ ।।

बच्चों के जैसे गुड़ियों का खेल खेलता रहता है यह।
मुक्ति प्राप्त होगी इससे ही दृढ़ता पूर्वक कहता है यह ।।
समझाने पर भी न समझता अपनी मनमानी करता है।
सत्य तथ्य को प्राप्त करूँ मैं इस पर ध्यान कहाँ धरता है ।।
अपने किये कुकर्मों पर तो कहिये भरता आह कहाँ है ।। ईश्वर ।। २ ।।

भौतिकता की चकाचौंध में निरा मूर्ख बन फँसा हुआ है।
आत्मोन्नति का लक्ष त्याग कर स्वार्थ सिन्धु में धँसा हुआ है ।।
अपना भला चाहता केवल अन्यों का अनहित करता है।
अँधा धुन्ध मनमाने जग में काम कई अनुचित करता है ।।
मानव बनकर मानवता से करता यह निर्वाह कहाँ है ।। ईश्वर ।। ३ ।।

सारा समय विताता है यह केवल अपना मन बहलाने।
अपनी सुध लेता न कभी भी किन्तु चला जग को समझाने ।।
क्षणिक समय के लिए "मिश्र" अल्पज्ञ जीव हूँ कहता है यह।
पर अपने मन में अपने को पूर्ण समझ कर रहता है यह ।।
अपने दोष और कमियों को मानव पाता थाह कहाँ है ।। ईश्वर ।। ४ ।।

अल्प जीव को ईश्वर कहना,
क्या सचमुच अज्ञान नहीं है।
सर्वेश्वर को अल्प समझना,
क्या उसका अपमान नहीं है ॥

अखिल कोठि ब्रह्मान्ड रचयिता सर्व शक्ति सम्पन्न विधाता।
अपनी तुलना उस ईश्वर से यह मानव है करने जाता ॥
जो आनन्द स्वरूप स्वय है उसके पीछे दुख लिपटाता।
जो परिपूर्ण एक रस है वह उसको सदा अपूर्ण बताता ॥
है आश्चर्य महान कि इसको इतनी भी पहचान नहीं है ॥ १ ॥

परिवर्तन से रहित कहाता घटे न उसमें आना जाना।
जन्म मृत्यु से परे अभय है जिसको यों वेद ने बखाना ॥
लेकर जन्म मरा कहता है उस मानव को क्या समझाना।
करता रहता व्यर्थ कल्पना और चाहता बात निभाना ॥
बनता अपना आप विरोधी क्या वह नर नादान नहीं है ॥ २ ॥

अवयव शून्य एक सत्ता है उसका कैसे चित्र बनेगा।
काम क्रोध मद लोभ मोह मय उसका कहीं चरित्र बनेगा ॥
शुद्ध बुद्ध जो निर्विकार है क्या वह भी अपवित्र बनेगा।
दुर्गुण दूर किये बिन क्या वह हम जीवों का मित्र बनेगा ॥
अपराधी को क्षमा करे वह उसके कच्चे कान नहीं है ॥ ३ ॥

कर के तुम मन घड़त कल्पना अपने मन को मत समझाओ।
सच्चे मन से कर उपासना पालन कर कर्तव्य दिखाओ ॥
कर्म करो शुभ ही शुभ जग में जीव मात्र को सुख पहुँचाओ।
अकर्मण्यता को अपना कर जीवन को मत व्यर्थ गमाओ ॥
'मिश्र" करे विपरीत कर्म, वह तो सच्चा विद्वान नहीं है ॥ ४ ॥

सुनो ! विरोधाभास किसे कहते हैं आज बताएं तुमको ।

ईश्वर जीवों के निमित ही सदा सृष्टि रचता आया है ।
इसीलिए कर्ता कहलाया वेद शास्त्र ने दर्शाया है ।।
अपने लिए नहीं कुछ करता हुआ अकर्ता नाम इसी से ।
नहीं विरोध कहा जायेगा चाहे देखो पूछ किसी से ।।
उदाहरण दे और अनेकों चाहो तो समझाएँ तुम को ।। १ ।।

है सूक्ष्मातिसूक्ष्म अति ईश्वर और वही अति ही महान है ।
दीख रहा इसमें विरोध पर विरोध को उसमें न स्थान है ।।
चहुँ दिशि में है विस्तृत इसी से सभी ओर से वह अनंत है ।
व्याप्त हो रहा है कण कण में बारीकी में भी न अंत है ।।
इसको नहीं विरोध कहेंगे सुनो ! और दर्शायें तुमको ।। २ ।।

करुणा का सागर है ईश्वर और साथ ही प्रलयंकर भी ।
कहलाता है महारुद्र पर साथ साथ वह शिव शंकर भी ।।
इसको आप विरोध न समझें इसमें हो आभास रहा है ।
लो भावार्थ समझ प्रभु को तो परिवर्तन से रहित कहा है ।।
छिपे हुए इन आभासों को कर के प्रकट दिखाया तुमको ।। ३ ।।

सर्व मान्य है बात आत्मा कभी नहीं मरने पाता है ।
किन्तु कोई करले हत्या तो आत्मघात वह कहलाता है ।।
सत्पुरुषों को मर जाने पर उनको अमर कहा जाता है ।
अमर रहा कोई न जगत में केवल कहने में आता है ।।
"मिश्र" ठीक से समझो इसको अगर समझ में आए तुमको ।। ४ ।।

प्रभु ने सृष्टि रची है उसमें कार्य यही बस खास किया है।
छिपे रहस्य प्रकृति में जो थे उनका मात्र विकास किया है।।

वैज्ञानिक है तथ्य वस्तु का होता कभी विनाश नहीं है।
रूपान्तर होते रहता हैं और बात कुछ खास नहीं है।।
मिटा बना जग कहता इस को केवल बात समझने की है।
प्रकृति स्वयं सत्ता अनादि है इसे प्रमाणित सब ने की है।।
कुछ आस्तिक कहलाने वालों ने इसका उपहास किया है।। १।।

ध्यानावस्थित होकर मानव लगा बैठकर जब विचार ने।
लकड़ी के सब छिपे गुणों को देख लिया उस कलाकार ने।।
रचना की नाना प्रकार की है प्रत्यक्ष प्रमाण देखलो।
टेबल कुरसी तख्त आदि का कर डाला निर्माण देखलो।।
इस अल्पज्ञ विचारक ने कितना महान विन्यास किया है।। २।।

अणुओं का संग्रह करके ही अणु बम इसने बना लिया है।
छिपे रहस्यों का शोधन कर कितना कुछ निर्माण किया है।।
अनथक श्रम के द्वारा देखो किये जा रहे यत्न निरन्तर।
मानव की वाणी के द्वारा चर्चाएँ होती है घर घर।।
चन्द्रलोक भी पहुँच गये हैं सब ने यह विश्वास किया है।। ३।।

टेबल कुरसी बनने का गुण यदि लकड़ी में छिपा न होता।
यदि लोहे में खम्बा बनने का जो गुण है रहा न होता।।
कलाकार के द्वारा फिर तो कहो वस्तुएँ कब बन पाती।
इस प्रकार की ईश्वर द्वारा सृष्टि बनाई कैसे जाती।।
छिपा हुआ था अग्नि तत्व जो प्रभु ने प्रकट प्रकाश किया है।। ४।।

सब कुछ कर सकता है वह क्या,
शक्तिमान कहला सकता है ?
जो महान होता है वह क्या ?
हीन कर्म कर जा सकता ??

अपने नियमों की सीमा से बाहर जाना उत्तम है क्या ?
उच्छृंखल बन अनुशासन को तोड़ दिखाना उत्तम है क्या ??
अपराधी को दण्ड न देना कहलाता अन्याय नहीं क्या ?
करने पर अन्याय कहाता यह अनुचित व्यवसाय नहीं क्या ??
सज्जन कहलाने वाला क्या ? दुर्जन बन यश पा सकता है ॥१॥

चोरी करना झूठ बोलना धोखा देना पाप कमाना ?
महिलाओं का सतीत्व हरना फिर इन पापों से बच जाना ??
कर यों दुरुपयोग शक्ति का निर्भयता दिखलाना चहिये ?
सर्व शक्ति सम्पन्न व्यक्ति को क्या यह सब कर जाना चहिये ?
सर्व शक्तिपन के ये लक्षण कह कोई समझा सकता है ॥२॥

प्राय: लोग कहा करते हैं ईश्वर सब कुछ कर सकता है ?
उन्हें पूछना चाहेंगे हम क्या वह ईश्वर मर सकता है ?
यदि मर सकता है तो कहिये मरने वाला ईश्वर कैसा ?
और नहीं मर सकता है तो डरने वाला ईश्वर कैसा ??
इस प्रकार विपरीत कर्म क्या ? कभी समझ में आ सकता है ॥३॥

व्यक्ति बड़ा होगा जो वह तो सदा बड़ा ही काम करेगा।
तुच्छ काम कर के न कभी वह अपने को बदनाम करेगा ॥
अखिल कोटि ब्रह्माण्डों का पति क्या जीवों सा कर्म करेगा।
आएगा ? जाएगा ? जग में क्या जन्मेगा और मरेगा ?
"मिश्र" तुच्छ मानव ही ऐसी बातें कह कर दर्शा सकता है ॥४॥

निर्मूल न होती वस्तु कोई होता केवल रूपान्तर है।

अति सूक्ष्म सभी परमाणु सदा मिलते बन जाता स्थूल रूप।
होते हैं पृथक तभी वनता जो भी जिनका है मूल रूप॥
जो क्रिया, सदा होते रहती, बनने की तथा बिगड़ने की।
समझो परिवर्तन मात्र इसे है बात न अधिक झगड़ने की॥
होता न अभाव वस्तु का यह सिद्धान्त है सर्वमान्य वर है॥१॥

वैज्ञानिक सदा वस्तुओं के गुण का विकास करता केवल।
जो छुपा हुआ है गुण उसका समझो प्रकाश करता केवल॥
यदि गुण का रहे अभाव मित्र ! उसमें आ सकता भाव नहीं।
वैज्ञानिक कितना भी महान हो, करता काम प्रभाव नहीं॥
बस इसी भाँति समझो करता सब कार्य सदा विश्वम्भर है॥२॥

बीजों में रहते छिपे वृक्ष साधन पाने पर फलते हैं।
परमाणु अग्नि के छिपे हुए ज्यों सुलगाने पर जलते हैं॥
लो इसी भाँति बस समझ आप जो जो, गुण जिनमें होते हैं।
पाने पर समय प्रकट होते अस्तित्व न अपना खोते हैं॥
जड़ होने के कारण ही सब निर्भर चैतन्य शक्ति पर है॥३॥

है स्वयं सिद्ध अस्तित्व तीन ये ईश्वर, जीव, प्रकृति जानो।
कर्ता कारण औ कार्यरूप इन तीनों को ही पहचानो।
हो जाय अभाव एक का भी बस बनता कोई कार्य नहीं।
दो के रहने पर तो रचना होना कोई अनिवार्य नहीं॥
स्वीकार तथ्य यह करें "मिश्र" जगवाले इनको क्या डर है॥४॥

क्यों हम उस ईश्वर को मानें,
इसकी आवश्यकता क्या है।
है या नहीं तथ्य को छाने,
इसकी आवश्यकता क्या है॥

ईश्वर को बिन माने के क्या ? अपना काम नहीं चल सकता।
पूजा पाठ जाप के बिन क्या जीवन कहो ? नहीं फल सकता ?
दीख रहा प्रत्यक्ष हमें तो नास्तिक भी जग में जीते हैं।
उन्नति करते हुए रात दिन सुख से रह खाते पीते हैं॥
क्यों हम उसको माने जाने इसकी क्या आवश्यकता है॥१॥

ईश्वरवादी होते वे क्या अत्याचार नहीं करते हैं।
क्या कहिये ईश्वर के भय से दुर्व्यवहार नहीं करते हैं ?
ईश्वरवादी बन कर भी इन लोगों ने क्या लाभ उठाया।
अपितु आड़ लेकर ईश्वर की और अधिक झगड़े फैलाया॥
उसकी सत्ता को पहचाने इसकी क्या आवश्यकता है॥२॥

ईश्वर को माने पर ईश्वर क्या उसकी रक्षा करता है।
नास्तिक कहलाने वाला क्या ईश्वरवादी से डरता है॥
दुराचार हिंसा चोरी क्या ? करते नहीं आस्तिक गण हैं।
धार्मिकता से ओत प्रोत क्या इन सब का उत्तम जीवन है॥
आस्तिक बनने की हम ठाने इसकी क्या आवश्यकता है॥३॥

ईश्वर भक्त कहाने वालों को भी हमने परख लिया है।
आस्तिकता के पर्दे में वे कितना क्या उपकार किया है॥
क्षमा कीजिये इन सबसे तो हम नास्तिक जन ही अच्छे हैं।
सच समझो इनकी अपेक्षा जगह हमारी हम सच्चे हैं॥
"मिश्र" लगे क्यों मगज पचाने इसकी क्या आवश्यकता है॥४॥

सत्य समझिये सत्य बात को,
मित्र निभाना वहुत कठिन है ।।

सत्य बात क्या है पहले तो पता लगाना ही दुष्कर है ।
क्यों कि सत्य हम कहते जिसको लोग झूठ कहने तत्पर हैं ।।
और साथ ही समय समय पर सच्चाई बदला करती है ।
सही तथ्य को जाना जिसने उसकी सदा चला करती है ।।
किसी बात को सत्य यही है, कह बतलाना बहुत कठिन है ।।१।।

कहीं कहीं तो सत्य बात को दुष्कर है वाणी से कहना ।
आपत्तियाँ उठानी पड़ती इसीलिए पड़ता चुप रहना ।।
सत्य कहो कहने वाले भी सत्य कहे पर सहन न करते ।
दृढ़तापूर्वक अटल रहे पर कष्ट सहे पर सहन न करते ।।
सत्य बात पर टिककर जग में, कष्ट उठाना बहुत कठिन है ।।२।।

कभी कभी तो सत्य बात पड़ती विरुद्ध व्यवहारिकता के ।
सत्य कहे पर मूर्ख कहाते देखा है अनुभव में लाके ।।
सत्य कहे पर कई बार सच कहने वाला दुख पाता है ।
स्वयं आपने देखा होगा विना मृत्यु मारा जाता है ।।
ऐसी स्थिति में स्पष्ट सत्य का मार्ग सुझाना बहुत कठिन है ।।३।।

कइयों बार सत्य कहने पर हो जाती है झूठों की जय ।
सत्य कहे पर सच्चों को ही हो जाता है गिरने का भय ।।
कभी कभी कोई मानव जब सच्चाई पर अड़ जाता है ।
पढ़े लिखे विद्वानों के भी द्वारा अड़ियल कहलाता है ।।
इसीलिए तो "मिश्र" सत्यको भी अपनाना बहुत कठिन है ।।४।।

उन्नति कर दिखलाना है तो,
तुम्हें ब्रह्म को खाना होगा ।
खाने के पश्चात् तुम्हें फिर,
उसको अजी पचाना होगा ।।

अन्न दुग्ध फल आदि आदि ये जैसे हैं शरीर का भोजन ।
हृष्ठ पुष्ठ रखने शरीर को करते हैं प्रति दिन आयोजन ।।
बिना किये भोजन शरीर यह दुर्बल और दुखी हो जाता ।
इसीलिए इस मुख के द्वारा मानव भोजन को पहुँचाता ।।
बल वर्धक सुस्वादु वस्तुएँ संग्रह कर ले आना होगा ।।१।।

सुँदर सुँदर दृश्य देखना भोजन आँखों का कहलाता ।
प्रभु की इस महान लीला को देख मनुष्य शान्ति है पाता ।
मधुर मधुर स्वर सुन वीणा के भोजन देता है कानों को ।
इसी भाँति से बात सोचना चहिये सब ही विद्वानों को ।।
बात जहाँ की तहाँ बिठाकर ठीक ठीक समझाना होगा ।।१।।

ब्रह्म आत्मा का भोजन है इस को जब खाया जाता है ।
फिर तो यह अल्पज्ञ आत्मा समझो आप शक्ति पाता है ।
दुर्गुण से हटता है दिन दिन सद्गुण को धारण करता है ।
आत्म शान्ति पाता अन्यों के दुःखों को वारण करता है ।।
नहीं ब्रह्म को खाए तो फिर पिछड़े हुए कहाना होगा ।।३।।

शिक्षा प्रद आदेश वेद के विद्वानों के द्वारा सुनिये ।
कुछ घंटे दो सत्संगति में इतना कहा हमारा सुनिये ।।
अकथित लाभ तुम्हारा होगा बात न यह कोई असत्य है ।
आचरणों में लाकर देखो "मिश्र" निचोड़ा हुआ तथ्य है ।।
इसमें कुछ संदेह नहीं है थोड़ा समय गमाना होगा ।।४।।

मानव के कर्मानुसार ही,
ईश्वर उसका देता फल है।
निज इच्छा से कभी न देता,
यह ही उसका नियम अटल है ॥

कर्म करे जो भी स्वतंत्रता दे रक्खी है उस ईश्वर ने ?
भला बुरा जो चाहे करलो कभी न रोका जगदीश्वर ने ॥
भले कर्म की मात्र प्रेरणा सदा हृदय में कर देता है।
बुरे काम में भय लज्जा संकोच आदि वह भर देता है ॥
मानव माने उसे न माने ईश्वर देता नहीं दखल है

यदि ईश्वर के करवाने से भला बुरा मानव करता है ?
तो स्वतंत्रता कहाँ रही फिर, ईश्वर ही करता धरता है ॥
है निमित्त करण ईश्वर तो निसंदेह यह बात सही है।
वेदों ने उपनिषदों ने यह हमको निश्चित बात कही है ॥
यह संसार कर्म करने को इस मानव का क्रीड़ा स्थल है

मानव को निज इच्छा से ही यदि ईश्वर सब कुछ देता है।
तब ईश्वर उत्तरदायित्व न क्यों अपने ऊपर लेता है ॥
मानव का क्या दोष रहा फिर यदि जग में करता कुकर्म है।
स्वतंत्रता पूर्वक मानव का शेष रहेगा कहाँ धर्म है ॥
फल क्यों पाएगा मानव फिर करदुष्कर्म कपट या छल है

ईश्वर ही करवाता सब कुछ तो फिर सब उपदेश व्यर्थ है।
मानव को शुभ कर्म करो कहने का क्या फिर रहा अर्थ है ॥
पराधीन यदि हम है उसने ले रक्खी है डोर हाथ में।
क्यों करता खिलवाड़ "मिश्र" फिर हम जीवों के सदा साथ में।
कहो ? न्याय है क्या यह उसका करें आप कुछ इसका हल है

है अपराध हमारा यह हम,
ईश्वर को ईश्वर कहते हैं ॥
परिवर्तन से रहित एक रस,
उसको अजर अमर कहते हैं ॥

जड़ प्रतिमा को जड़ प्रतिमा कह कहते हैं हम चित्र चित्र को ।
देख किसी का चित्र ध्यान में लाते हैं उसके चरित्र को ॥
किन्तु चित्र एवं प्रतिमा को नहीं कभी चैतन्य समझते ।
कुमकुम चावल चढ़ा पुष्प, हम अपने को ना धन्य समझते ॥
जड़ को जड़ लकड़ी को लकड़ी पत्थर को पत्थर कहते हैं ॥ १ ॥

है अल्पज्ञ जीव अविनाशी, कार्य सभी इसके सीमित है ।
बार बार ले जन्म जगत में हर्षाता रहता चिंतित है ।
ईश्वर के द्वारा कर्मों का फल प्रति दिन पाता रहता है ।
निशिदिन यह उत्थान पतन के चक्कर में आता रहता है ॥
ईश्वर में जीवों में हमतो बहुत बड़ा अन्तर कहते हैं ॥ १ ॥

ईश्वर तो अविचल अनन्त है अनुपम शुद्ध बुद्ध कहलाता ।
सीमा में बँधता न कभी वह है सर्वज्ञ महान विधाता ॥
कभी किसी माँ की गोदी में लेकर जन्म नहीं आता है ।
है वह एक स्वयं भू सत्ता सकल जगत का निर्माता है ॥
हमसे लेता कभी न कुछ, हम उसको विश्वंभर कहते हैं ॥ ३ ॥

घटता बढ़ता नहीं सिकुड़ता, है गति शून्य किन्तु गति देता ।
निराकार निर्लेप निरञ्जन है वह न्याय नियंता नेता ॥
अपराधों को क्षमा न करता उचित सभी को फल देता है ।
देरी है अन्धेर नहीं है आज नहीं तो कल देता है ॥
प्रलयंकर भी और "मिश्र" हम उसे दयासागर कहते हैं ॥ ४ ॥

संसार वनाने वाले ने यह कहो बनाया क्यों ।
था एक अकेला तब यह सारा खेल खिलाया क्यों ।।

कारण ही नहीं उपस्थित था कोई उसके आगे ।
बिन कारण ही क्यों रचना की बतला दो समझा के ।।
संसार रचूँ यह कहो कि उसके मन में आया क्यों ।। १ ।।

यह सृष्टि रची क्या कहिये अपने मन को बहलाने ।
मन की झंझट क्या उसके पीछे लगी हुई माने ?
जो है आनंद स्वरूप कहो यह मन में लाया क्यों ।। २ ।।

कहलाता है वह निर्विकार यह सभी मानते हैं ।
प्रकृति विकार वाली है यह भी सभी जानते हैं ।।
इस जड़ जग का कर के विकास माया फैलाया क्यों ।। ३ ।।

थी प्रकृति नहीं ये जीव नही जब था अभाव इनका ।
आ गए भाव में ये कैसे अस्तित्व न था जिनका ।
फिर ईश्वर को निमित्त कारण कहकर दर्शाया क्यों ।। ४ ।।

इस जग को मिथ्या कहकर जब हमको समझाते हो ।
मिथ्या जग का फिर उदाहरण क्यों देने जाते हो ।।
संसार रचयिता ईश्वर को तुमने बतलाया क्यों ।। ५ ।।

जग और जगत से बनी हुई देही मिथ्या है जब ।
तुम और तुम्हारी बातें सच्ची क्यों होएगी तब ?
यह बात "मिश्र" के सन्मुख कहकर नहीं निभाया क्यों ।।६।।

वनते तो आस्तिक है हम,
पर ईश्वर का विश्वास कहाँ है।
धार्मिकता की शुद्ध भावना,
नैतिकता भी पास कहाँ है ॥

सत्य अहिंसा न्याय दया पर रहते ही हम अटल कहां है।
दृढ़ता पूर्वक आन निभाने इतने भी हम सवल कहाँ है ॥
सच्चरित्रता की पवित्रता से भी हमको प्यार कहाँ है।
केन्द्र बने शुभसंकल्पों के ऐसे शुद्ध विचार कहाँ है ॥
मानव हैं पर मानवता का हुआ अभी सुविकास कहाँ है ॥ १ ॥

कहाँ आत्म चिन्तन होता है दुर्व्यसनों का त्याग कहाँ है।
जन सेवा से देश भक्ति से हुआ अभी अनुराग कहाँ है ॥
आध्यात्मिता के प्रति रुचि अब हम लोगों में आज कहाँ है।
पापों से बच प्रभु के भय से होते ही शुभ काज कहाँ है ॥
पापों के हो जाने पर भी होता चित्त उदास कहाँ है ॥ २ ॥

खोज करें ईश्वर की ऐसी मन में कहिये चाह कहाँ है।
उसकी महिमा सुनते जाएँ ऐसा भी उत्साह कहाँ है ॥
जैसी स्थिति में रहें उसी में रह पाता संतोष कहाँ है।
सत्कर्मों की लगन कहाँ है जीवन भी निर्दोष कहाँ है ॥
अंतरात्मा में ईश्वर का होता ही आभास कहाँ है ॥ ३ ॥

मात्र दिखावा होने से ही हो पाया उत्कर्ष कहाँ है।
इसीलिए तो आस्तिकता का दीख रहा आदर्श कहाँ है ॥
स्वस्थ देह में उच्च आत्मा वन कर करता क्रांति कहाँ है ॥
सच्चे अर्थों में सच समझो आज किसी को शाँति कहाँ है ॥
भौतिक उन्नति हुई "मिश्र" पर हुआ दुखों का ह्रास कहाँ है ॥ ४ ॥

बुरा भला बोलो यह मेरे लिए,
बात कुछ खास नहीं है ॥
निश्चय मैं नास्तिक हूँ मुझ को,
ईश्वर पर विश्वास नहीं है ॥

किन्तु पूछता हूँ उनको जो मुझ से लोग घृणा करते हैं ।
ताने देते बुरा बताते सिर पर दोष सदा धरते हैं ॥
आस्तिक अपने को कहते पर नहीं पाप करने डरते हैं ।
लम्पट विषयी व्यसनी बनकर आस्तिकता का दम भरते हैं ॥
क्यों करते हैं पाप ? समझते ईश्वर को क्या पास नहीं है ? ॥

ईश्वर की ले आड़ सदा ये क्या क्या पाप नहीं करते हैं ।
क्या है पाप जगत में ऐसे जिन को आप नहीं करते हैं ।'
करते पाप भयानक फिर भी पश्चाताप नहीं करते हैं ।
पर नारी पर धन का बैठे क्या ये जाप नहीं, करते हैं ॥
मन के और इन्द्रियों के ये बतलाओ क्या दास नहीं है ?

सुनो ! सुनाता हूँ मैं मेरी, मैं हूँ अपनी धुन का पक्का ।
मैं भी हूँ आदर्श वान समझो न मुझे कुछ चोर उचक्का ॥
करता हूँ सम्मान सभी का देता नहीं किसी को धक्का ।
पाप न धोने जाता हूँ मैं काशी और मदीना मक्का ॥
इव बातों में सुनो ! सत्य का मुझे मिला आभास नहीं है ॥

बात समझ में आजाने पर करता हूँ इन्कार नहीं मैं ।
उट पटांग बातों को मानूं इसमें तो तैयार नहीं मैं ॥
सच्चरित्र पर ध्यान न रक्खूं ऐसा सुनो ! गँवार नहीं मैं ।
हो जाते हैं पाप पाप से करता मन से प्यार नहीं मैं ॥
अभी "मिश्र" मिलसे ने का भी मुझे मिला अवकाश नहीं है ॥

मैंने नास्तिक को अब तक बुरा बताया ।
जब जाँचा तो अपने को नास्तिक पाया ॥

सच्चे अर्थों में नास्तिक जग में वो है ।
निर्भय होकर जो करता पापों को है ॥
प्रभु को प्रत्यक्ष न समझ बिताए जीवन ।
नास्तिक है वो ऐसा आस्तिक भी जो है ॥
था अन्धकार में सच्ची बात भुलाया ॥ १ ॥

कहने को ही मैं मान रहा ईश्वर को ।
प्रत्यक्ष नहीं मैं जान रहा ईश्वर को ॥
पापों को करते समय भूल जाता हूँ ।
फिर कहो कहाँ ? पहचान रहा ईश्वर को ॥
जब अंतरात्मा ने वह मुझे सुझाया ॥ २ ॥

प्रभु सत्ता को मैं मान पाप करता हूँ ।
रह कर न कभी अंजान पाप करता हूँ ।
पापों का मुझ को निश्चय दण्ड मिलेगा ।
इसका है मुझ को ध्यान पाप करता हूँ ।
झूठे घमण्ड का जब आवरण हठाया ॥ ३ ॥

जो उत्तम कर्मों को करने वाला है ।
जिसने जीवन में सदाचार पाला है ॥
चाहे ईश्वर को कभी न मन से माने ।
पर सच्चरित्र में अपने को ढाला है ॥
ऐसा नास्तिक है मुझ से सदा सवाया ॥ ४ ॥

आस्तिक बनना जग में आसान नहीं है ।
मिलता आडंबर से भगवान नहीं है ॥

पाले जो उसके नियम वही आस्तिक है।
क्यों होगा ऐसों का उत्थान नहीं है ॥
आस्तिक होकर ना मैंने नियम निभाया ॥ ५ ॥

जब बात "मिश्र" ने मन के बीच विचारा ।
तब अंतरात्माने इस भाँति पुकारा ।
खुल गये हृदय के पाट सभी बस मेरे ।
फिर पक्षपात से हट आचरण निहारा ॥
दुःखित होकर मन ही मन में पछताया ॥ ६ ॥

८५

सत्य की चाह तो है किसी को नहीं ।
बात पकड़ी निभाना सभी चाहते ॥

प्रश्न का ठीक उत्तर न देकर सदा–
नित्य भाषण सुनाना सभी चाहते ॥
है निराधार बातें मगर मानते ।
गीत अपने है गाना सभी चाहते ॥
है विरोधी उन्हें शब्द जंजाल में ।
डाल कर है फँसाना सभी चाहते ॥

झूठ कहता है विज्ञान जिस बात को ।
सत्य मज़हब बताता है ? आया उसे ॥
तर्क पर बात टिकती नहीं है मगर–
सत्य कहकर सदा ही बताया उसे ॥
एक ने सच कहा जिस किसी बात को–
झूठ कह दूसरे ने निभाया उसे ॥
वर्ष बीते सहस्रों झगड़ते हुए–
बात पकड़ी नहीं छोड़ पाया उसे ॥
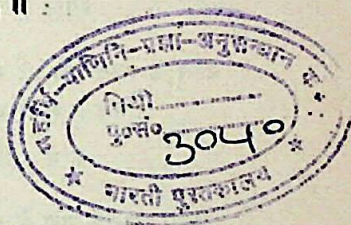
बिन बनाए स्वयं वस्तु बनती नहीं–
यह नियम स्पष्ट बतला रहा है।
दीखने में यही आ रहा है ॥

वस्तु से वस्तु बनती रही है। बात यह एकदम ही सही है।
खोज की जब गई–बात निकली सही–
स्पष्ट विज्ञान समझा रहा है ॥ १ ॥ दीखने में ॥

वस्तु के साथ गुण भी रहेंगे। तत्ववेत्ता यही तो कहेंगे।
जानते हैं सभी मानते हैं सभी–
काम इनसे लिया जा रहा है ॥ २ ॥ दीखने में ॥

वस्तुएँ जो कि गुण के सहित है। किन्तु जड़ है व इच्छा रहित हैं
वे बनेगी सही पर बनेगी नहीं ॥
सत्य कहना हमारा रहा है ॥ ३ ॥ दीखने में ॥

वे बनेगी किसी के बनाए। आप इस बात को जान जाए।
शक्ति जो पूर्ण है–व्यक्ति जो पूर्ण है ॥
"मिश्र" कहता चला जा रहा है ॥ ४ ॥ दीखने में ॥

हम तुम ज्यों मिलते हैं ईश्वर ।
मिल जाने की वस्तु नहीं है ।।

अद्वितीय अनुपम सत्ता है उसको तो जाना जाता है ।
उसको तो विवेक के द्वारा केवल पहचाना जाता है ।।
उसके पास इन्द्रियों की तो पहुँच नहीं है सत्य जानिये ।
अपने ऊपर आप कृपा कर कुछ तो मेरी बात मानिये ।।
मनन कीजिये झट पट से तो समझाने की वस्तु नहीं है ।। १ ।।

आप प्रथम तो यही सोचिये इस जग का ईश्वर भी है क्या ?
होने का विश्वास हुए पर सोचे उसका घर भी है क्या ??
है गुण कर्म स्वभाव आदि क्या ? फिर वह किस प्रकार मिलता है ।
हो जाए विश्वास आपको हमको इस प्रकार मिलता है ।।
उस प्रकार का यत्न कीजिये भय खाने की वस्तु नहीं है ।। २ ।।

वेदों ने तो यह बतलाया उसका कोई पार नहीं है ।
है अखण्ड अविनाशी अविचल उसमें कहीं विकार नहीं है ।।
है चैतन्य स्वरूप इसी से पाता है चैतन्य जीव ही ।
कैसा है ? वह उसे समझ में लाता है चैतन्य जीव ही ।।
है सर्वज्ञ इसी से तो जाने आने की वस्तु नहीं है ।। ३ ।।

जिस प्रकार चैतन्य जीव यह नहीं आँख से देखा जाता । ।
केवल मात्र समझने से ही समझो "मिश्र" समझ में आता ।।
इसी भाँति ही ईश्वर केवल विवेक से देखा जाता है ।
उस महान सत्ता को मानव अपने अनुभव में लाता है ।।
आँखों के आगे वह आकर दिख पाने की वस्तु नहीं है ।।

कहो मान लं बात कैसे कि ईश्वर ।
निराकार भी और साकार भी है ।।

अजन्मा कहाता मगर जन्म लेता ।
करे प्राणियों संग संसार भी है ।। २ ।। कहो ।।

नसों नाड़ियों इन्द्रियों से परे है ।
तथा इन्द्रियों संग व्यापार भी है ।। ३ ।। कहो ।।

पिता पुत्र का है न नाता किसी से ।
दिखावे में नाते का व्यवहार भी है ।। ५ ।। कहो ।।

महालक्ष्मी औं कई पत्नियाँ हैं ।
बढ़ा अब तलक कुछ न परिवार भी है ।। ५ ।। कहो ।।

न होती कभी तब्दिली उसमें कोई ।
समय पर है ले लेता अवतार भी है ।। ६ ।। कहो ।।

लिपटता नहीं रोग उसको कभी भी ।
परन्तु वो पड़ जाता बीमार भी है ।। ७ ।।

समझ में न आती विरोधी ये बातें ।
कहो "मिश्र" इनमें कोई सार भी है ।। ८ ।। कहो ।।

समझा जाता है ईश्वर को,
और नहीं समझा जाता है।
नहीं समझ में आता उसका,
काम समझ में भी आता है।।

नाम अकर्ता भी है उसका कर्ता भी वह कहलाता है।
करुणा का सागर है फिर भी मानव उससे भय खाता है।।
रक्षक भी है भक्षक भी है, पालक भी संहारक भी हैं।
महाकाल है प्रलयंकर है जीवों का उद्धारक भी हैं।।
नहीं किसी को वह अपनाता और सभी को अपनाता है।। १ ।।

उसको नहीं चाहता कोई उसको सभी चाहते भी हैं।
भला बुरा कहते हैं एवं देखा सब सराहते भी है।।
है सूक्ष्माति सूक्ष्म वह तो औ विशाल से भी विशालतम है।
है प्रत्यक्ष साथ ही उसके होने में भी होता भ्रम है।।
पा लेता है उसको वह भी पार नहीं उसका पाता है।। २ ।।

वाणी वर्णन कर सकती है और नहीं भी कर पाती हैं।
उसकी वाणी समझी जाती, और नहीं समझी जाती हैं।।
करता है स्वीकार प्रार्थना और नहीं भी करता है वह।
दुख वह नहीं किसी का हरता और "मिश्र" दुख हरता है वह।।
सुख स्वरूप है सुखदाता है और साथ ही दुखदाता है।। ३ ।।

तर्क विवेक बुद्धि के द्वारा,
ईश्वर को पहचाना जिसने।
सच्चा लाभ उठाया उसने,
खोज सही कर पाया जिसने ।।

अन्ध भक्त बन आँख मींचकर माने से कुछ लाभ नहीं है।
है उससे उल्टा ही उसको जाने से कुछ लाभ नहीं है ।।
लाभ तभी है जैसा है वह ठीक ठीक वैसा ही जाने।
मनमानी कर व्यर्थ कल्पना खुद को नहीं लगें बहकाने ।।
ईश्वर की ले आड़ स्वयं को चाहा नहीं पुजाना जिसने ।। १ ।।

जैसा है वैसा न समझ लिया कुछ का कुछ जिसने।
भ्रम में पड़कर किसी बात का अर्थ किया कुछ का कुछ जिसने ।।
क्या उद्देश्य पूर्ण कर लेगा ? क्या वह ईश्वर को पा लेगा ?
भूल भुलैया में पड़ क्या वह उस विश्वंभर को पा लेगा ?
प्राप्त कर लिया कौन बताओ–मनमाना ज्यों माना जिसने ।। २ ।।

उस महान को तुच्छ समझना, उस अनन्त का अन्त बताना।
जो परिवर्तन रहित कहाता उसमें परिवर्तन ले आना ।।
है आश्चर्य शत्रु के द्वारा उसे हराना और भगाना।
जो सच्चिदानन्द कहलाता, उसके पीछे दुख लिपटाना ।।
लाभ उठाया क्या उसने यों चाहा मन समझाना जिसने ।। ३ ।।

अपने हाथों मूर्ति बनाकर उसको मन्दिर में बैठाया।
ला मिष्ठान्न चढ़ाकर उसको, उसने नहीं स्वयं ने खाया ।।
ईश्वर पूजा समझ इसी को यों संतोष कर लिया मन में।
देखा प्रतिमा को, ईश्वर का समझा ध्यान धर लिया मन में ।।
क्या पा लिया कहो ईश्वर को ढूंढा यही बहाना किसने ।। ४ ।।

९१

मात्र परमात्मा के उपासक बनो,
गुण उसी के सदा आप गाते चलो ।।
स्थान उसका किसी को न देते कभी ।
बात मन में सदा यह बसाते चलो ।।

अन्य है ना हुआ और होगा कभी मानते आप हैं मानते सभी
वह बदलता नहीं और चलता नहीं, सर्वव्यापक है वह जानते हैं सभी ।।
जन्मता वह नहीं और मरता नहीं आप इस बात को मत भुलाते चलो ।।

नहीं अन्त उसका न सीमा मिले, इसलिए ही है आता व जाता नहीं,
वह बनाता सभीको है बनता नहीं, वह खिलाता है सबको है खाता नहीं ।
लो भलीभाँति उसको समझ आपभी रूप उसका सभी को सुझाते चलो ।।

लक्ष जीवों के सुख का रखो सामने, शक्ति अनुसार सेवा किया भी करो,
पात्र दिख जाय जो आपकी दृष्टि में दान दातार बन कर दिया भी करो ।
साथ परमार्थ के स्वार्थ को साधते सात्विकी शुद्ध जीवन बिताते चलो ।।

जड़ जगत से उठालो सदा लाभ तुम आत्म उन्नति करो भोग भोगो सभी
काम जो भी करो धर्म अनुकूल हो पाप को मत करो भूलकर भी कभी ।
मान उनका करो सत्पुरुष जो दिखे सामने नम्र हो सिर झुकाते चलो ।।

आतताई कोई देश द्रोही कहीं जो दुराचार में लिप्त मानव मिले,
साधु के वेश में आचरण भ्रष्ट जो हों छिपे रूप में दुष्ट दानव मिले ।
"मिश्र" उन दानवों का खुले रूप में आप प्रतिकार करते कराते चलो ।।

उस ईश्वर का जो अंश जीव यह होता ।
कर अशुभ कर्म क्यों दुख पाता औ रोता ।।

जो शुद्ध बुद्ध आनंद स्वरूप कहाता ।
उसका अंशी क्या इस प्रकार दुख पाता ।।
वेदान्त तुम्हारा नहीं समझ में आता ।
ईश्वर में क्यों यों परिवर्तन हो जाता ।।
क्यों खाते फिरता अधर बीच में गोता ।। १ ।। उस ।।

अद्वैत वाद की बात लोग करते हैं ।
अपने विचार सम्मुख आकर धरते हैं ।।
ये जीव जगत में जीते क्यों मरते हैं ।
दे ही धारण कर क्यों जग में चरते हैं ।।
समझाने पर भी समझ सके क्या श्रोता ।। २ ।। उस ।।

सत्ता न सामने थी कोई ईश्वर के ।
क्या भला किया किसका यह रचना करके ।
अपने पीछे झगड़े ये दुनिया भर के ।
क्यों लिपटाया नाना स्वरूप को धरके ।।
ईश्वर होकर क्यों अपना पद है खोता ।। ३ ।। उस ।।

पापी बनकर क्यों जग में पाप कमाता ।
नाना प्रकार के क्यों उत्पात मचाता ।
क्यों घृणा ईर्षा द्वेश मनों में लाता ।
क्यों "मिश्र" कहो भयभीत हुआ घबराता ।।
क्यों अपने हाथों अपनी नाव डुबोता ।। ४ ।। उस ।।

केवल आध्यात्मिकता ने भी–
इस मानव का ह्रास किया है।
केवल भौतिक उन्नति ने भी,
मानवता का नाश किया है।।

दोनों का होता न समन्वय तब तक कभी न उन्नति होती।
इन दोनों को बिन अपनाए नहीं मनुज की शुभ गति होती।।
है सम्बन्ध निकट दोनों का दोनों को अपनाना चहिये।
यथा योग्य दे स्थान सदा ही आगे बढ़ते जाना चहिये।।
जिसने साथ रखा दोनों को उसने सदा विकास किया है।।१।।
ईश्वर और आत्म चिन्तन भी, रक्खे ध्यान जगत का पूरा।
इन तीनों के साथ बिनातो कहलाता है ज्ञान अधूरा।।
ईश्वर को जाना पर जिसने जान नहीं पाया माया को।
किसी किसी ने ईश्वर को तज, केवल अपनाया माया को।।
एक दूसरे को न समझकर मन को व्यर्थ निराश किया है।। २।।
धर्म अर्थ औ काम मोक्ष ये चारों सन्मुख रहना चहिये।
इन चारों के बिन न चलेगा काम सभी को कहना चहिये।।
मनन शील मनु ऋषि मुनियों ने हमें मार्ग यह दर्शाया है।
बिन शरीर बिन कर्म किये के कहो किसी ने क्या पाया है।।
इस पथ पर चलता वह ही जिसने इसका विश्वास किया है।। ३।।
बिन शरीर को स्वस्थ रखे के आत्मोन्नति कैसे होएगी।
उदाहरण देकर समझा दें हमें कि वह ऐसे होएगी।।
बिना जगत के उस जग पति को कैसा है कैसे जानोगे।
बिन आधार लिए इस जग का है वह यह कैसे मानोगे।।
"मिश्र" बिना समझे प्रतिवादी बनकर ही उपहास किया है।। ४।।

इस मनुज की है लीला निराली सुनो ।
झूठ को सत्य कहकर चलेगा ।
सत्य से तो नहीं काम लेगा ।।

जब कभी बात उल्टी कहेगा ।
घोटता ही उसे यह रहेगा ।।
कर समर्थन सदा—बात को सर्वदा ।
फिर निभाने नहीं यह टलेगा ।। १ ।।

सत्य की नित्य देगा दुहाई । झूठ पर डट रहेगा सदा ही ।
शक्ति पूरी लगा दे स्वयं को दगा ।
झूठ मे ही सदा यह ढलेगा ।। २ ।।

अन्य का झूठ देगा दिखाई । झूठ की तब करेगा बुराई ।
मार्ग दर्शायेगा और समझायेगा ।।
झूठ अपना न इसको खलेगा ।। ३ ।।

दोष यह मानवों में है पाया । जो कि जाना है मैंने बताया ।
छोड़ अपवाद को आप भी ध्यान दो ।
वाक्य रचना करेगा छलेगा ।। ४ ।।

सत्य को आप स्वीकार करलो । शुद्ध शुभ भावना आप भरलो ।
"मिश्र" झगड़े सभी, ये मिटेंगे तभी ।।
क्या मनुज बात यह मान लेगा ।। ५ ।।

सृष्टि नियम और तर्क और विज्ञान के–
बाट पर बात को तौलियेगा।
बुद्धिपूर्वक सदा बोलियेगा ॥

चाह मन में सदा सत्य की हो। खोज बस सत्य के तथ्य की हो।
सत्य जिसमें न हो–दूर उससे रहो ॥
झूठ को मत कभी रोलियेगा ॥ १ ॥ बुद्धि ॥

मात्र विश्वास पर ही न चलिये। सत्य से मत कभी भी बदलिये।
सत्य के सज्जनों, मत विरोधी बनो।
झूठ कहने न मुँह खोलियेगा ॥ २ ॥ बुद्धि ॥

व्यर्थ की बात पकड़ी निभाना। ढूंढना फिर हिला औ वहाना ॥
बात ऐसी कहीं आप करिये नहीं ॥
इस तरह से न विष घोलियेगा ॥ ३ ॥ बुद्धि ॥

यदि विरोधी कहे सत्य मानों। हार उसमें नहीं "मिश्र" जानों।
डट रहो सत्य पर सत्य पर तथ्य पर ॥
आप पानी नहीं ढोलियेगा ॥ ४ ॥ बुद्धि ॥

झूठ पकड़ी हुई छोड़ देना, सीख लो रस उसी में है लेना।
सत्य से मोह रख–झूठ से द्रोह रख ॥
सत्य पर मस्त हो, डोलियेगा ॥ ५ ॥ बुद्धि ॥

देवतावाद को हमने अब तक न समझने पाया ।
देकर आधार किसी ने हमको अब तक न सुझाया ॥

विश्वास मात्र पर इनका सिद्धान्त टिका रहता है ।
बस बात हमारी मानों, यों हर कोई कहता है ॥
विज्ञान तर्क पर भी यह सिद्धान्त नहीं टिकता है ।
जनमत का लिए सहारा, चलता है यों दिखता है ॥
अनुमान प्रमाण न इसको करके है सिद्ध दिखाया ॥ १ ॥

ग्रन्थों में लिखा हुआ है, आधार इसी को मानो ।
मत तर्क सामने रक्खो तुम सत्य इसी को जानो ॥
सन्तोष जनक उत्तर तो ये कभी न दे पाएँगे ।
अपने प्रभाव के द्वारा मुख बन्द किया चाहेंगे ॥
बहु तेरा सोचा फिर भी कुछ नहीं समझ में आया ॥ २ ॥

तैंतीस कोटि देवों को सर्वज्ञ समझ चलते हैं ।
साथ ही साथ ये उनको अल्पज्ञ समझ चलते हैं ॥
राक्षसों और असुरों से ये कई बार हारे हैं ।
ये एक दूसरे को भी आपस में ही मारे हैं ॥
कर शब्द जाल की रचना ऐसा कुछ चक्र चलाया ॥ ३ ॥

ये मृतक लोक में पहले आते भी जाते भी थे ।
व्यवहार सभी करते थे पीते भी खाते भी थे ॥
अब सूक्ष्म रूप में आते जाते पीते खाते हैं ।
कलियुग होने के कारण प्रत्यक्षन हो पाते हैं ॥
प्रति पक्षी को ऐसे यों जाता है गोल घुमाया ॥ ४ ॥

पति पत्नी के रहते भी होती सन्तान नहीं है।
यह बात हमारे मन में तो पाती स्थान नहीं है।।
तू मैं करके आपस में ये शाप दे लिए इससे।
ऐसा भी हो सकता है, यह जाकर पूछें किससे।।
देवता कहा कर भी यों क्यों है दैवत्व गँवाया।।

समझाने के बदले में रोष और जोश में आकर।
झेंपाते और चिढ़ाते आँखें अपनी दिखलाकर।।
"मिश्र" को नास्तिक कहकर ये अपनी विजय मनाते।
बुद्धि से नहीं समझाकर ये व्यर्थ मखौल उड़ाते।।
दिन रात बीतती है जो बातें कह आज सुनाया।।

देवता वाद को मानते आप हैं,
कोई आधार है तो बताओ।
तर्क पर बात लाकर टिकाओ ।।

मात्र लिखा हुआ मान लेना।
पूर्ण है सत्य यों जान लेना ।।
क्या कहो ठीक है सत्य यह लीक है।
सत्य है तो उसे फिर निभाओ ।। १ ।।

लोक ऊपर है तो है कहाँ पर।
और होता है क्या क्या वहाँ पर ।।
बात विस्तार से और अधिकार से।
आप दृष्टान्त देकर दिखाओ ।। २ ।।

चाँद सूरज शनि शुक्र सारे।
क्यों न आते है अब देह धारे ।।
बात क्या है कहो मौन हो मत रहो।
मात्र विश्वास पर मत चलाओ ।। ३ ।।

क्षीरसागर व वैकुण्ठ भी है।
"मिश्र" भी मान लेगा तभी है ।।
मान लेंगे सभी सिद्ध कर दें जभी।
बात ही बात में मत घुमाओ ।। ४ ।।

गिर जाने कहिये पुतला, मैल का बनाया कैसे ।
देही से मैल निकलकर इतना यह आया कैसे ।।

है बात सोंचने की यह क्या नित्य नहीं नहाती थी ।
पहरे पर कहिये प्रति दिन फिर किसको बैठाती थी ।।
सर्व व्यापक थे शंकर क्यों नहीं जानने पाए ।
कर्तव्य पारायण सुत की गर्दन क्यों काट गिराए ।।
अनुचित प्रकार का तामस शिवाजी में आया कैसे ।। १ ।।

उस कटी हुई मुण्डी का क्यों पता नहीं चल पाया ।
अन्तर्यामी शिवाजी ने क्यो अपना ज्ञान भुलाया ।।
हाथी के सिर को कैसे बालक के सिर पर जोड़ा ।
कर कृपा बुद्धिमानी से समझा दें कोई थोड़ा ।।
अन्तर दोनों का कहिये ठीक से मिलाया कैसे ।। २ ।।

साथ ही बताना होगा चूहे की भला सवारी ।
क्यों कर की जा सकती है कहती है बुद्धि तुम्हारी ।।
यह बात क्रिया में लाकर हमको समझाना होगा ।
इतिहास मानते हो तो आधार बताना होगा ।।
अनहोनी बातों को तो जाए समझाया कैसे ।। ३ ।।

यह अलंकार है तो फिर इतिहास मान मत चलिये ।
स्थिर रहिये वचनों को कह उनको फिर नहीं बदलिये ।।
तुम जो कह दो वह सच है यह बात मानलें कैसे ।
आती न समझ में उसको सच "मिश्र" जानलें कैसे ।।
है बात असंभव उसका अनुमान लगाया कैसे ।। ४ ।।

सत्य पीर बंगाल में यवन हुआ उत्पन्न ।
पूजा सब करने लगे होकर लोग प्रसन्न ।।

होकर लोग प्रसन्न चमत्कारों के आगे ।
ईश्वर का अवतार मानकर भागे भागे ।।

हिन्दू जाति की "मिश्र" देख है दशा निराली !
जिसने भी चाही अपनी पूजा करवाली ।।

सत्य पीर फिर बन गये सत्य देव भगवान ।
प्राप्त कर लिया आपने सर्वेश्वर का स्थान ।।

सर्वेश्वर का स्थान दे दिया विद्वानों ने ।
साधारण जनता ने एवं धनवानों ने ।।

देखा देखी लगे पूजने फिर तो सारे ।
बन बैठे भगवान "मिश्र" यह पीर हमारे ।।

मिला न स्कन्द पुराण में इसका कुछ उल्लेख ।
चाहे रेवा खण्ड में आप लीजिये देख ।।

आप लीजिये देख, कथा का नाम नहीं है ।
और पाँच अध्यायों का भी काम नहीं है ।।

सत्य पीर बन गये वही सत्य नारायण ।
"मिश्र" हो रहा घर घर में जिनका पारायण ।।

एक व्यक्ति ने कहा कि ईश्वर,
लेता क्यों अवतार नहीं है ।
अपने भक्तों से बतलाओ क्या,
वह रखता प्यार नहीं है ।।

मैंने कहा समझना हो तो पहले आप वचन यह दीजे ।
वचन विरोध न होने पाए ऐसी आप प्रतिज्ञा कीजे ।।
हमें मिले हैं व्यक्ति अनेकों पकड़ी बात निभाने वाले ।
शब्द जाल की रचना करके पीछे पाँव हटाने वाले ।।
सच कहता हूँ सच का चाहक आज रहा संसार नहीं है ।। १ ।।

वह अनन्त अविनाशी है एवं परिवर्तनशील नहीं है ।
कहा उन्होंने बात सत्य है होता वह तब्दील नहीं है ।।
लेने में अवतार बताओ क्या वह फिर तब्दील न होगा ।
क्या यह वचन विरोध न होगा, वह परिवर्तनशील न होगा ।।
जन्म मृत्यु से रहित बताने में करते इन्कार नहीं है ।। २ ।।

भक्तों की सहायता करने आना ही क्या आवश्यक है ।
शरीर द्वारा असुरों पर जय पाना ही क्या आवश्यक है ।।
कहा उन्होंने आने जाने में क्या कुछ उसका जाता है ।
मैंने कहा अजन्मा वाला वचन नहीं रहने पाता है ।।
जन्म लिए बिन आज कर रहा क्या वह कारोबार नहीं है ।। ३ ।।

कहा उन्होंने ईश्वर है वह जो भी चाहे कर सकता है ।
मैंने पूछा क्या बतलाओ ? विष खाकर वह मर सकता है ?
कहा उन्होंने उसे न होती मरने की आवश्यकता है ।
मैंने कहा देह धारण क्यों करने की आवश्यकता है ।।
खींच तान कर बात निभाना "मिश्र" ठीक व्यवहार नहीं है ।। ४ ।।

राम कृष्ण यदि मानव थे तो,
पात्र प्रशंसा के हैं निश्चय ।
यदि ईश्वर माना जाए तो,
मानूँगा हो गए पराजय ।।

रावण हो या दुर्योधन हो जितना चाहे उनका बल हो ।
कितना कोई दुष्ट व्यक्ति हो कपट धूर्तता करता छल हो ।।
उस ईश्वर के आगे उसकी गणना हो ही क्या सकती है ?
सकल विश्व की सभी शक्तियाँ कुछ भी कर क्या पा सकती है ।।
मानव होकर सफल हुए वे तब तो यश उनका है अक्षय ।। १ ।।

कार्य करे अल्पज्ञ जीव ज्यों कहते दिखलाई माया है ।
ईश्वर को क्यों इस प्रकार की माया दिखलाना भाया है ।।
सकल विश्व की रचना पालन करना यह क्या माया कम है ।
क्रमशः प्रलय निरन्तर कब से चलता ही जो आया क्रम है ।।
मानव थे तो किया बहुत कुछ इसमें तनिक नहीं है संशय ।। २ ।।

सर्व शक्ति सम्पन्न और जो सर्वेश्वर भी कहलाता है ।
साधारण दुष्ठों को करने वध जो, धरती पर आता है ।।
बिन आए जो मार न सकता वह भी कपट और छल के बिन ।
विविध भाँति के शस्त्र अस्त्र, साथ ही और सैनिक दल के बिन ।
हमने देखा है ऐसे तो मानव भी करता है कतिपय ।। ३ ।।

मानव, पशुओं का तन धारण कर उसको लड़ना पड़ता है ।
सर्वेश्वर को अपने स्तर से ऐसे गिर पड़ना पड़ता है ।।
क्षमा कीजिये बात समझ में नहीं हमारे आ सकती है ।
सार्वभौम्य है बात सत्य यह नहीं बताई जा सकती है ।।
रखें ध्यान में आप "मिश्र" का जो भी कहने का है आशय ।। ४ ।।

ईश्वर ने सृष्टि रची कैसे,
जो वेदों ने वतलाया है ॥
यदि आप समझना चाहो,
तो समझो जैसे समझाया है ॥

क्रमपूर्वक जब जगदीश्वर ने धरती को रचने की धारा।
वह सर्व प्रथम आकाश तत्व गति में आया उसके द्वारा ॥
फिर वायु तत्व को गति देकर उत्पन्न अग्नि को कर डाला।
जल को उत्पन्न किया उसने मृतिका से धरती को ढाला ॥
उसके पश्चात् वनस्पति को करके उत्पन्न दिखाया है ॥ १ ॥

उत्पन्न शाकाहारी पशु को पश्चात् पक्षियों को भी फिर।
फिर मांसाहारियों को करके नियमों पर सब को रक्खा स्थिर ॥
सब के पश्चात् मनुष्यों को धरती में से उत्पन्न किया।
थे युवा वाल वालिका सभी नैमेतिक उनको ज्ञान दिया ॥
बिन मात पिता के सृष्टि हुई यह बात स्पष्ट दर्शाया है ॥ २ ॥

आदित्य अग्नि अंगिरा और इन वायु नाम के ऋषियों में।
वेदों का ज्ञान दिया उनको कर पारंगत सब विषयों में ॥
उनके द्वारा अन्यों को भी आवश्यक पूरा ज्ञान मिला।
जितना मिलना आवश्यक था व्यवहारिक पूरा ज्ञान मिला ॥
आरंभ मैथुनि सृष्टि हुई यह ही उस प्रभु की माया है ॥ ३ ॥

आरंभ किया जब से अब तक पशुओं में ज्ञान समान रहा।
मानव में उन्नति और पतन करने में अपना स्थान रहा ॥
परतंत्र सदा पशु आदि रहे पर मानव तो स्वाधीन रहा।
फल के पाने में "मिश्र" सदा यह ईश्वर के आधीन रहा ॥
पा विविध योनियाँ जीवों ने निज कर्मों का फल पाया है ॥ ४ ॥

यह सृष्टि बनी किस भाँति,
बनी यह तो विज्ञान बताएगा ।
किस लिए बनी इसका उत्तर,
विज्ञान नहीं दे पाएगा ॥

धरती के छिपे रहस्यों का निश्चय विज्ञान पता देगा ।
है किस पदार्थ में गुण क्याक्या हमको यह बात बता देगा ॥
परमाणु अमिट मिल जाते हैं तब बन जाती है धरती यह ।
लय कहलाता है बनी हुई धरती जब कभी बिखरती यह ॥
होएगा महा प्रलय कैसे यह भी निश्चय बतलाएगा ॥ १ ॥

दो तत्व काम कर रहे एक चैतन्य दूसरा तो जड़ है ।
है कार्य पृथक ही दोनों के क्रमशः हो रही न गड़बड़ है ॥
वैज्ञानिक रखते पता सदा इन भौतिकता की बातों में ।
क्या बातें होती है दिन में क्या बातें होती रातों में ॥
हैं और सृष्टियाँ भी कइयों खोजेगा पता लगाएगा ॥ २ ॥

देही का ढाँचा कैसा क्या वस्तुएँ कहाँ पर कैसी है ।
कर छान बीन शस्त्रों द्वारा बतला देगा जो जैसी है ॥
कठिनाई से ही सही किन्तु बतला देगा सब रोगों को ।
बन सके जहाँ तक लाभ सदा पहुँचा देगा सब लोगों को ॥
जितनी है उसकी पहुँच सुनो वह उतना ही समझाएगा ॥ ३ ॥

आध्यात्म जगत की बातों का अध्ययन बिना पूरी बातें ।
आएगी नहीं समझ में तो चाहे काटें कितनी रातें ॥
भौतिक आध्यात्मिक दोनों का हो जाता जहाँ समन्वय है ।
हो जाती वहाँ पूर्णता है दोनों जब होते तन्मय है ॥
अतिमानी बन कर "मिश्र" नहीं आध्यात्मिकता अपनाएगा ॥ ४ ॥

आध्यात्मिकता के साथ बिना,
भौतिक संसार अधूरा है।
आत्मिक उन्नति बिन शारीरिक,
उन्नति का प्यार अधूरा है॥

सम्बन्ध घनिष्ठ है दोनों का दोनों पर ध्यान रखा जाए।
दोनों के प्रति अपनी श्रद्धा एवं सम्मान रखा जाए॥
अध्यात्मिक अधि भौतिक विद्या का हो अध्ययन सदा।
साथ ही आधि दैविक विद्या का होना चहिये मनन सदा॥
दोनों को बिन समझे समझो जग का व्यवहार अधूरा है॥ १॥

संसार बना। किसलिए बना ? फिर इसे बनाया है किसने ?
किससे कैसा विस्तार हुआ, ? फिर इसे सजाया है किसने ?
जो अब है क्या पहले भी था क्या यही रहेगा आगे भी।
क्या मिटकर बना मिटेगा फिर क्या सही रहेगा आगे भी॥
बिन इन सब बातों को समझे जीवन का सार अधूरा है॥ २॥

कुछ काम हमारे चाहे पर होते हैं कई नहीं होते।
कुछ बिन चाहे क्यों हो जाते ? चाहे पर क्यों न कहीं होते।
समझा जाना आवश्यक है इसमें भी छिपा सत्य है क्या ?
क्या है रहस्य जाना जाए ? सारांश है और तथ्य है क्या ?
दोनों के बिना समन्वय कें समझो आधार अधूरा है॥ ३॥

कारण एवं उद्देश्य बिना कोई भी कार्य नहीं होता।
छोटा हो चाहे बड़ा किन्तु करना अनिवार्य नहीं होता॥
चैतन्य और जड़ भिन्न भिन्न अस्तित्व बताते हैं हमको।
हममें अन्तर है क्यों है यह लो समझ जताते हैं हमको॥
कारण उद्देश्य "मिश्र" ढूंढो अन्यथा विचार अधूरा है॥ ४॥

भाषण देना बहुत सरल है,
किन्तु आचरण अति दुष्कर है।
कहा हुआ करके दिखलाता,
योग्य पूजने के वह नर है ।।

कहने में कम कौन करेगा ? कहने में लगता ही क्या है ?
सस्ता है उपदेश सुनाना पर करना महँगा पड़ता है ।।
कहा इसी से विद्वानों ने मुख से कम ही कहना चहिये ।
अपनी कही हुई बातों पर दृढ रहना सब सहना चहिये ।।
उत्तम आचरणों के कारण उठता मानवता का स्तर है ।। १ ।।

मानव पूर्ण नहीं हो सकता, किन्तु रहे कमियाँ कम से कम ।
उन कमियों का न कर समर्थन, पश्चाताप रहें करते हम ।।
अपने को परखा जाए यों कहलाता वह आत्म निरीक्षण ।
अपनी कमियों को पहचानें करें परीक्षण पल पल क्षण क्षण ।।
भय न किसी से खाए पर हाँ रहे हमें अपना ही डर है ।। १ ।।

बड़ी बात है क्या ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करें हम ।
बड़ी बात है आस्तिकता का आस्तिक बन व्यवहार करें हम ।।
सर्वान्तर्यामी कह उसको क्या ऐसा ही समझ रहे हम ?
आस्तिक बन कर उससे डर कर क्या कुछ पाप कर रहे है कम ?
ईश्वर को मनवाने की तो प्रतिभा हममें बड़ी प्रखर है ।। ३ ।।

सत्य दया औ न्याय अहिंसा, धर्म कर्म का ज्ञान हमें है ।
मानवता नैतिकता का भी ध्यान हमें पहचान हमें है ।।
पाप पुण्य की बातों को भी जान रहे पहचान रहे हैं ।
किन्तु उन्हीं सारी बातों को "मिश्र" क्रिया में ला न रहे हैं ।।
अपनी भूलें निरय निभाने करते रहते अगर मगर है ।। ४ ।।

विद्वत्ता हो अधिक न चाहे,
आ जाना व्यवहार चाहिये ।
सूझ बूझ की बुद्धि साथ ही,
वाणी पर अधिकार चाहिये ॥

करें कार्य किस समय कौनसा जो यह जान लिया करता है ।
जो जैसा है उससे वैसा ही व्यवहार किया करता है ॥
प्रश्नों को सुनते ही जो उत्तर अनुकूल दिया करता है ।
ऐसा मानव सम्मानित हो जग में सदा जिया करता है ॥
बुद्धिमता के साथ साथ फिर सज्जनता सुविचार चाहिये ॥ १ ॥

जितनी होवे आय सदा व्यय उससे कम ही करना चहिये ।
व्यर्थ दिखावा आडम्बर करने से प्रतिदिन डरना चहिये ।
झूठी निन्दा के भय से भी नहीं शान में भरना चहिये ।
ऋण सिर पर ले उसे चुकाने आहे कभी न भरना चहिये ॥
अपने हाथों से अपनी थामी रखनी पतवार चाहिये ॥ २ ॥

अव्यवहारिकता के कारण प्रति दिन पछताना पड़ता है ।
जन जन के आगे नीचा सिर करके शर्माना पड़ता है ।
हंसी उड़ाते लोग है जिससे मन में पछताना पड़ता है ।
सकुचाना भयखाना कर्मों का फिर फल पाना पड़ता है ॥
जग में रहकर जग का सारा आना कारोबार चाहिये ॥ ३ ॥

है सँभालना कठिन द्रव्य को द्रव्य कमाना कठिन नहीं है ।
है निर्वाह कठिन, नारी से व्याह रचाना कठिन नहीं है ॥
कठिन बनाना है बच्चों को पिता कहाना कठिन नहीं है ।
है आचरण कठिन "मिश्र" उपदेश सुनाना कठिन नहीं है ॥
आयु रहे थोड़ी चाहे शुभ कर्मों का विस्तार चाहिये ॥ ४ ॥

शब्दों में जीवन होता है।
शब्दों को सुन कर मानव का,
दुःखित हर्षित मन होता है ॥

शब्द अक्षरों से बनते हैं और वाक्य शब्दों से बनते।
अक्षर शब्द वाक्य बनकर ही भाषण और लेख बन छपते ॥
इन सब को पढ़ सुनकर ही तो मानव को जीवन मिलता है।
विद्या विद्वता मिलती है यश मिलता है धन मिलता है ॥
होता है विकास मानव का उत्तम परिवर्तन होता है ॥ १ ॥

शब्दों से बातें होती हैं काम सभी बातों से होते।
रोते बच्चे सुन बातों को बातों को सुन कर सोते हैं ॥
वीर पुरुष बातों को सुन सुन युद्ध भूमि में लड़ मरते हैं।
मोह प्राण का भी तज देते आगे आगे बढ़ मरते हैं ॥
ऐसों से रक्षा होती है जीवन भी धन धन होता है ॥ २ ॥

उत्तम शब्दों के भाषण को कानों द्वारा प्रति दिन सुनिये।
उत्तम पढ़ पुस्तकें सदा हो पढ पढ़ कर फिर धुन से गुणिये ॥
जीवन तुम्हें बनाना हो तो सुनने में पीछे मत रहिये।
सुने हुए उत्तम भाषण को अन्यों को भी हर दम कहिये ॥
बन जाते हैं सुन सुनकर सुनने का जिन्हें व्यसन होता है ॥ ३ ॥

कैकेई के शब्दों को सुन राजा राम गये थे वन को।
इसी कैकई के शब्दों से दशरथ ने त्यागा जीवन को ॥
श्री कृष्ण ने शब्दों द्वारा गीता का उपदेश सुनाया।
गीता के शब्दों को सुनकर अर्जुन ने गाण्डीव उठाया ॥
"मिश्र" सत्य जानो शब्दों में अनुपम आकर्षण होता है ॥ ४ ॥

तू घमण्ड करता जिस पर है।
रक्त मांस मल मूत्र आदि का,
यह शरीर रोगों का घर है।।

दर्पण में मुख देख देख कर तू है फूला नहीं समाता।
अपनी सुन्दरता के ऊपर इठलाता मन में इतराता।।
चार दिनों की रात चाँदनी होती है यह तुझे पता है।
इस पर तू अतिमान कर रहा क्या यह तेरी बुद्धिमता है।।
तेरा यह शरीर कुछ दिन में क्या न बता होगा जर जर है।। १ ।।

तेरी दसों इन्द्रियाँ अब जो नचा रही तू नाच रहा है।
हो मदान्ध सुधबुध खो तेरा मन मृग आज कुलाँच रहा है।।
सावधान रहकर तू इन का कभी बुरा उपयोग न करना।
पीछे पड़े तुझे पछताना ऐसा तू उद्योग न करना।।
रख यह ध्यान आज भी तुझको पद पद पर गिरने का डर है।। २ ।।

जो भविष्य की बात न सोंचे ऐसा नर पशु कहलाता है।
वर्तमान में चले सम्हल कर कभी नहीं वह पछताता है।।
हीन समझना भी न चाहिये किन्तु गर्व भी व्यर्थ न करना।
मानव के चोले को पाकर हाथों कभी अनर्थ न करना।।
अमर आत्मा की चिन्ता कर देही किसकी रही अमर है।। ३ ।।

यह शरीर प्रभु का मंदिर है और नर्क भी बन जाता है।
चाहे जैसा इसे बनाले जो तेरे मन को भाता है।।
यदि हो चाह उसे पाने की तो फिर इस शरीर के द्वारा।
जन सेवा में अर्पण कर दे "मिश्र" मिलेगा तुझे किनारा।।
अनुचित कार्य किया इससे तो गिर जाएगा तेरा स्तर है।। ४ ।।

जब जग में भ्रष्टाचार हुआ करता है।
तब ही अशान्त संसार हुआ करता है।।

जब अधिक मनुज फँसता है भौतिकता में।
जब अधिक लोभ छा जाता है जनता में।।
मरता है जब नर विषयों की ममता में।
जब नहीं समझता समता में क्षमता में।।
पशुओं जैसा व्यवहार हुआ करता है।। तब।।

मानव जब दानवता को अपनाता है।
कर्तव्य आदि शुभ कर्म भूल जाता है।।
अत्यन्त स्वार्थ सबके मन पर छा जाता है।
छोटे पर निशिदिन बड़ा जुल्म ढाता है।।
सच्चाई का प्रतिकार हुआ करता है।। तब।।

मानव होकर जब न्याय नीति खोता है।।
जब जान बूझकर पाप बीज बोता है।।
करके कुकर्म पहले प्रसन्न होता है।
करनी का फल पाता है तब रोता है।।
जग का उल्टा व्यापार हुआ करता है।। तब।।

फिर अनावृष्टि अति वृष्टि हुआ करती है।
आपत्ति नहीं फिर टारे से टरती है।।
होते रहते हैं युद्ध प्रजा मरती है।
इस पर भी जनता नहीं ध्यान धरती है।।
यों "मिश्र" पाप का भार हुआ करता है।। तब।।

कहने ही कहने वालों से करने वाला श्रेष्ठ सदा है ।।

कहकर के करता न कभी कुछ उससे होता लाभ नहीं है।
अकर्मण्य आलसी जनों से हुआ कभी क्या लाभ कहीं है ।।
चले मंद गति से कोई नर तो भी स्थान प्राप्त कर लेगा।
क्यों कर कहो बढ़ेगा आगे जो केवल भाषण ही देगा ।।
राम भरोसे रहता उससे चलने वाला श्रेष्ठ सदा है ।।

चलता जो विपरीत मार्ग पर उचित कार्य करता न कभी भी।
कार्य कुशलता पूर्वक कर दिखलाता तत्परता न कभी भी ।।
साथ क्रियात्मक कभी न देता देता है सम्मति केवल जो।
वाक् शूर वनकर रहता है बतलाओ क्या बोले उसको ।।
बने जहाँ तक दुख दुखियों का हरने वाला श्रेष्ठ सदा है ।।

वाणी द्वारा दुख दुखियों के हरने वाले वहुत मिलेंगे।
सिंह गर्जना रंगमंच पर करने वाले बहुत मिलेंगे ।।
देश भक्ति की डींगमार कर देंगे सदुपदेश सदा ही।
समाचार पत्रों में अपने भेजेंगे संदेश सदा ही ।।
समय पड़े पर लिए देश के मरने वाला श्रेष्ठ सदा है ।।

आगे आगे बढ़कर आस्तिक अपने को सब ही कहते हैं।
नास्तिक जन को सदा दुर्वचन वाणी से कहते रहते हैं ।।
नास्तिकता के लक्षण क्या है और कहाँ तक मेरे में है।
इसकी जाँच न कोई करते रहते सदा अँधेरे में हैं ।।
"मिश्र" समझ प्रत्यक्ष ईश से डरने वाला श्रेष्ठ सदा है ।।

१११

हमें शत्रु के भय से बढ़कर अपनी निर्बलता का भय है ।
अपनी निर्बलताओं से ही हो जाती वैरी की जय है ।।

बुद्धिहीनता अपनी से ही धोखा खाना बहुत सरल है ।
विन पहचाने वैरी के झाँसे में आना वहुत सरल है ।।
राजनीति के पंडित जो है भलीभाँति यह वात जानते ।
नहीं किसी को शत्रु समझते नहीं किसी को मित्र मानते ।।
उपर से तो नहीं दिखाते पर मन में रखते संशय है ।। हमें ।।

मित्र आज का काम पड़ेपर तुरत शत्रु कल वन जाता है ।
जिसे आज हम शत्रु समझते कल को काम वही आता है ।।
कौन मित्र कव शत्रु बनेगा ? कौन शत्रु कव मित्र बनेगा ? ।
पता नहीं लगने पाता है कव क्या कार्य विचित्र बनेगा ।।
है इतिहास साक्षी इसका ऐसे यों होता कतिपय है ।। हमें ।।

अपने को परिपूर्ण समझ हम कहाँ मूर्खता क्या कर बैठें ? ।
समझ शत्रु को मित्र व्यर्थ ही घर में हानि उठाकर बैठें ?।।
सब बातों में चतुराई से काम सदा लेना पड़ता है ।
धोखा देनेवाले को तो धोखाही देना पड़ता है ।।
कृष्ण, शिवा, चाणक्य बने से होती विजय नित्य निश्चय है ।। हमें ।।

राजनीति में "मिश्र" सत्य से कोई काम नहीं चलता है ।
काम नही कुछ देने पाती मन की केवल निश्छलता है ।।
राजनीति के सब हथकण्डे नेताओं को आना चहिये ।
मूर्ख न बनकर सदा शत्रु को पक्का मूर्ख बनाना चहिये ।।
बड़े बड़े चक्कर खा जाते ऐसा यह गंभीर विषय है ।। हमें ।।

वह उन्नति उन्नति है क्या ?
केवल भौतिक निर्माण जहाँ हो ।
नहीं आत्मा की चिन्ता केवल,
शरीर पर ध्यान जहाँ हो ॥

भव्य भवन अति उत्तम अनुपम मानो बना लिया मानव ने ।
विविध भाँति की दिव्य वस्तुएँ लाकर जमा किया मानव ने ॥
सुन्दर रंग ढंग भी सुन्दर खूब सजाया है साजों से ।
शोभा भी पा रहा भवन है नाना प्रकार के बाजों से ॥
किन्तु भवन में रहने वाला व्यक्ति नहीं विद्वान जहाँ हो ॥ १ ॥

अति उत्तम विद्यालय खोला जमा किये सारे साधन हैं ।
फर्नीचर बिजली के पंखे खर्च किया मनमाना धन है ॥
सत्पुरुषों के चित्र लगे हैं टेवल और कुर्सियाँ भी है ।
खूब कलाकृतियों से संचित बिछी हुई हाँ दरियाँ भी हैं ॥
इनसे लाभ उठाने वाले यदि न वहाँ धीमान वहाँ हो ? ॥ २ ॥

राष्ट्र बना पर राष्ट्रीयता से वंचित है लोग जहाँ के ।
नैतिकता से शून्य किन्तु सज धज कर फिरते व्यक्ति वहाँ के ॥
क्या इसको निर्माण कहेंगे ? क्या इसको उत्थान कहेंगे ।
स्वाभिमान के साथ कहो क्या ? बन हम गये महान कहेंगे ॥
संस्कृति खोकर मिले सभ्यता को ही केवल स्थान जहाँ हो ॥ ३ ॥

सदाचार सच्चरित्रता औ जहाँ नागरिकता रोती हो ? ।
देश भक्ति की शुद्ध भावना जहाँ नहीं विकसित होती हों ॥
देश भक्त दबकर रहते हों देश द्रोहियों की बन आती ।
द्वेष देश से रखने वाले चलते सदा फुलाकर छाती ॥
"मिश्र" देश के नेता ही इन बातों से अन्जान जहाँ हो ॥ ४ ॥

११३

जहाँ मान्यता रहे सत्य की,
वहाँ न झगड़ा रह सकता है ।।

ईश्वर को ईश्वर समझा जाए तो फिर मतभेद न होगा ।
हो यथार्थ वर्णन यदि उसका तभी किसी को खेद न होगा ।।
अपने मन की बातों को ही मानव यदि जोड़ा न करे तो ।
और सत्य से सदा स्नेह रख अपना मुख मोड़ा न करे तो ।।
ऐसी स्थिति में क्या कोई भी भला बुरा कुछ कह सकता है ? ।। १ ।।

सूरज को सूरज कहने में कभी कहीं दो राय नहीं है ।
पानी को पानी कह दें तो कहलाता अन्याय नहीं है ।।
किन्तु इन्हें कुछ और कहें तो कैसे फिर मतभेद न होगा ?
जो यथार्थवादी है उसको कैसे कहिये खेद न होगा ।।
भला विरोधी इस असत्य को किस प्रकार से सह सकता है ।। २ ।।

जितने मतावलंबी जन हैं उनमें यह विचित्रता देखी ।
अपने मन की अनहोनी बातों में उनकी श्रद्धा देखी ।।
किन्तु विपक्षी की ऐसी ही बातों पर है तर्क उठाते ।
उनकी बातें नहीं मानते पर अपनी मनवाने जाते ।।
भला विरोधी इस प्रकार कब ? भावुकता में बह सकता है ।। ३ ।।

जो नैसर्गिक नियम अटल है उनको ही यदि माना जाए ।
जो जैसा है उसको वैसा माना जाए जाना जाए ।।
व्यर्थ भावनाओं से हट कर अतिशयोक्तियों को छिटका दे ।
बुद्धिवाद को सम्मुख रखकर असत्यता से मोह हटा दे ।।
"मिश्र" बुराई का गढ निश्चय मानव द्वारा ढह सकता है ।। ४ ।।

संसार की हर वस्तु है अभिशाप भी वरदान भी ।
हर बात में होता सदा है लाभ भी नुकसान भी ।।

मानते सौंदर्य को ईश्वर की अनुपम देन है
किन्तु है करना पड़ा इसके लिए विष पान भी ।। २ ।।

सब सुखों को प्राप्त करने धन है साधन किन्तु यह ।
ले लिया करता कभी तो इस मनुज के प्राण भी ।। ३ ।।

शक्ति शाली व्यक्ति का सम्मान करते हैं सभी ।
किन्तु बनकर शत्रु है करते कई अपमान भी ।। ४ ।।

सुख मिला करता समझते लोग है परिवार से ।
किन्तु इस परिवार से मिलता है कष्ट महान भी ।। ५ ।।

लोग लम्बी आयु है परमात्मा से चाहते
पर अधिक जीकर कई तो लौग है हैरान भी ।। ६ ।।

लोग लिख पढ़ कर सुखी हैं बात यह भी सत्य है ।
किन्तु पाते कष्ट देखे हैं कई विद्वान भी ।। ७ ।।

शीघ्र करना कठिन है निर्णय किसी भी बात का ।
हानियाँ पहुँचा रहा है आज का विज्ञान भी ।। ८ ।।

"मिश्र" कहता है कि अपने भाग्य में सुख चाहिये ।
कर्म फल को तो बदल सकता नहीं भगवान भी ।। ९ ।।

११५

सुत चाहे तू आज्ञाकारी तो,
तू पितु आज्ञाकारी बन ॥
अन्यों से प्रेम कराना है,
तो तू भी प्रेम पुजारी बन ॥

सुत से आशा सेवा की हो, तो मात पिता की सेवा कर ।
पतिव्रता चाहता हो पत्नी तो तू पत्नी व्रतधारी बन ॥

अपनी बहु बहन बेटियों का सम्मान कराना हो तुझको ।
कर पर नारी का मान सदा, फिर तू भी मत व्यभिचारी बन ॥

अपनी भी पीड़ पराई भी दोनों समान है समझ सदा ।
अन्यों में धर्म देखना हो तो स्वयं धर्म का धारी बन ॥

औरों से मान चाहता हो तो औरों का कर मान सदा ।
गाली तुझको देना हो तो, सुनने का भी अधिकारी बन ॥

औरों से घृणा करेगा तू तो लोग करेंगे तेरे से ।
संसार दुखी हो तेरे से तू ऐसा मत संसारी बन ॥

तुझसे कोई न कृतघ्न बने हो चाह न तू भी बन कृतघ्न ।
अपना आभार चाहता है तो तू जग का आभारी बन ॥

है "मिश्र" यही बस मानवता है भी मानव का धर्म यही ।
मानव जो तुझे कहाना हो तो सत्य धर्म अवतारी बन ॥

भूत भविष्य समय का बन्धन,
लिए जीव के यह विधान है।
ईश्वर के तो लिए समझ लो,
केवल रहता वर्तमान है॥

लगा हुआ है लिए हमारे झगड़ा टंटा जब अब तब का।
ईश्वर सदा दूर है इससे ऐसा ही विचार है सब का॥
हम अपने ही दृष्टिकोण से बात सभी सोचा करते हैं।
हुआ और होगा की बातें, सम्मुख लोगों के धरते हैं॥
उस सर्वज्ञ स्वयंभू प्रभु का रखते पूरा नहीं ध्यान है॥ १॥

जीव अमर है फिर भी तो यह है अल्पज्ञ देहधारी है।
आवागमन चक्र में फिर फिर आते हम सब नर नारी हैं॥
भूत भविष्यत वर्तमान के बन्धन में हम बँधे हुए हैं॥
नहीं छूटने पाते इससे जन्म मृत्यु से सँधे हुए हैं॥
रहे ध्यान में बात सदा यह जीव तुच्छ है प्रभु महान हैं॥ २॥

रचना किया करेगा आगे इस प्रकार जो हम कहते हैं।
दृष्टि हमारी से ही प्रतिदिन कर विचार कहते रहते हैं॥
ईश्वर तो रह वर्तमान में किया जा रहा जो करना है।
जीवों के ही लिए जगत में लगा हुआ जीना मरना है॥
व्यापक है सर्वत्र इसी से निश्चित कोई नहीं स्थान है॥ ३॥

है आरंभ नहीं उस प्रभु का और कभी भी अंत न होगा।
अन्त मान लेंगे यदि उसका, तो फिर नाम अनंत न होगा॥
आस्तिक हो तो इन बातों को, समझो अन्यों को समझाओ।
उसका स्थान अन्य को देकर कार्य विरुद्ध न करने जाओ॥
"मिश्र" कहो ईश्वर को ईश्वर प्राप्त करो जो सत्य ज्ञान है॥ ५॥

दावा यह सब ही करते हैं,
सच है जो हमने जाना है।।
जो विरोध करते हैं, उनको,
झूठा सब ने ही माना है ।।

हम भी एक उन्हीं में से यह ही दावा हम करते हैं ।
जो भी कुछ कहते हैं वह ही सच है कहकर दम भरते हैं ।।
झूठा लोग समझते हमको उनको हम ऐसे कहते हैं ।
आओ करी परीक्षा कोई, कहकर समझाते रहते हैं ।।
हमने सच समझा उसको ही सदा चाहते समझाना है ।। १ ।।

छान सत्य की करने में तो ये कसौटियाँ रखते हम हैं ।
दूर हटा दो उन बातों को जिन जिन में कुछ होता भ्रम है ।।
हो निर्भ्रान्त सत्य ही सम्मुख, पक्ष मात्र लो उसी सत्य का ।
करो तथ्य का संग्रह केवल और साथ दो उसी सत्य का ।।
पकड़ी बात असत्य निकल जाए तो उसको छिटकाना है ।।

जो जैसा हो उसको वैसा समझें एवं मन से मानें ।
रहें न तत्पर खींच तान कर कही हुई बात को निभाने ।।
सृष्टि नियम अनुकूल और आधार लिए निर्भ्रान्त बात हो ।
वचन विरोध न होने पाए उदाहरण भी साथ साथ हो ।।
वही सत्य को प्राप्त करेगा जिसने यह मन में ठाना है ।। ३ ।।

आओ आज आप हम मिलकर उस ईश्वर को सम्मुख रखकर ।
करें प्रतिज्ञा "मिश्र" अडिग हो रहकर सदा सत्य पर निर्भर ।।
उस ईश्वर की खोज करेंगे जैसा है वैसा मानेंगे ।
और करेंगे उसका खण्डन जिसको है असत्य जानेंगे ।।
जो कुछ हमने मान रखा है मोह न उससे दर्शाना है ।। ४ ।।

११८

करके पूर्ण विकास प्रकृति का,
रचता यह संसार कौन है ?
इस जड़ जग में परिवर्तन,
लाने वाला कर्तार कौन है ?

प्रकृति स्वयं अज्ञानपूर्ण है विकसित होना यह क्या जाने ।
है चेतना शून्य फिर कैसे मैं भी कुछ हूँ क्या पहचाने ॥
उसके गुण का ही जब उसको हो सकता आभास नहीं है ।
शक्ति स्वयं की परिवर्तित करने की उसके पास नहीं है ॥
इन सारी बातों का फिर बतलाओ तो आधार कौन है ॥ १ ॥

विकसित होने का गुण इसमें है पर स्वयं नहीं हो सकती ।
बिना बनाने वाले के यह बनने की ना क्षमता रखती ॥
अन्य बनाने वाला होगा तो ही समझो बन पाएगी ।
है दृष्टान्त अनेकों सम्मुख बात समझ में आ जाएगी ॥
समझो बात समझने की है इसका सर्जनहार कौन है ॥ ३ ॥

सामग्री सब धरी हुई है पर है नहीं बनाने वाला ।
जिसके लिये बनाना है है, नहीं काम में लाने वाला ॥
किसके लिये कौन रच डाला प्रश्न सामने खड़ा रहेगा ।
निर उत्तर कर देने वाला प्रश्न सामने खड़ा रहेगा ॥
बन चैतन्य जगत का बोलो करता सब संचार कौन है ॥ ३ ॥

पंच तत्व जड़ हैं ये मिलकर चेतनता ला सकते हैं क्या ?
किसका गुण है यह चेतनता यह भी समझा सकते है क्या ?
चेतनता रखने वाली क्या स्वतंत्र सत्ता नहीं रहेगी ।
बुद्धि आपकी सत्य बात को मानो ऐसे नहीं कहेगी ॥
नियमबद्ध है "मिश्र" व्यवस्था इन सब का आधार कौन है ॥ ४ ॥

नैसर्गिक जो अटल नियम है,
नहीं चाहिये उन्हें भुलाना ।
जो असत्य है बात व्यर्थ की,
उन्हें चाहिये नहीं निभाना ॥

जब कि ऋचाएँ जगदीश्वर को निर्विकार ही है कहती हैं ।
प्रकृति विकारों वाली जीवों के पीछे लिपटी रहती है ॥
हो उत्पन्न फैलना बढ़ना और फूलना फिर रुक जाना ।
स्थिर होकर घटना व बिखरना पूर्व रूप में फिर से आना ॥
छ.विकार ये कहलाते हैं इन्हें ध्यान से नहीं हटाना ॥ १ ॥

प्राण अपान समान व्यान एवं उदान ये प्राण कहाते ।
दस इन्द्रियाँ एक मन ये सब गिनती में सौलह बन जाते ॥
इन सौलहों कलाओं को जो धारण करता जीव कहाता ।
जिसके द्वारा धारण होते वह ईश्वर है माना जाता ॥
ईश्वर को ही ईश्वर कहना जीवों को ईश्वर न बताना ॥ २ ॥

आ जाकर मिलना व बिखरना प्रकट और ओझल हो जाना ।
इस प्रकार परिवर्तन होकर फिर अपने स्वरूप में आना ॥
जन्म मृत्यु है ताम इसी का ईश्वर इनसे परे रहा है ।
इसीलिए वेदों ने उसको अपरिवर्तनशील कहा है ॥
सत्य ग्रहण करना यदि हो तो नहीं ढूँढना हिला बहाना ॥ ३ ॥

इन नियमों से ही हो जाता हैं साकारवाद का खण्डन ।
प्रतिमा पूजन का भी एवं उस अवतारवाद का खण्डन ।
ये गुण रखने वाला वह ईश्वर साकार बनेगा कैसे ?
बिन विकार के "मिश्र" कहो उसका आकार बनेगा कैसे ?
दागजाल की रचना करके नहीं किसी को भी बहकाना ॥ ४ ॥

आधार शून्य बातों को,
सम्मान दिया करते हैं ।
निर्भ्रान्त सत्य पर अपने,
ना कान दिया करते हैं ।।

जितने भी मतावलंबी जो दिखने में आए हैं ।
उनकी लीला को अब तक हम नहीं समझ पाए हैं ।।
मानते सदा रहते हैं विज्ञान शून्य बातों को ।
दिन समझ लिया करते हैं सर्वथा निरी रातों को ।।
क्या जाने इन बातों को क्यों स्थान दिया करते हैं ।। १ ।।

रूपक व अलंकारों को इतिहास समझ चलते हैं ।
ये स्वयं छले जाते हैं अन्यों को भी छलते हैं ।।
अनहोनी घटनाओं को ये सत्य समझ लेते हैं ।
कितना भी समझाओ पर ये ध्यान नहीं देते हैं ।।
अपनी पकड़ी बातों पर ही ध्यान दिया करते हैं ।। २ ।।

सिद्धान्त हीन बातों से कर लेते समझौता है ।
सुनकर इनकी बातों को आश्चर्य हमें होता है ।।
किंचित न सोचते हैं क्या ऐसा भी हो सकता है ।
कोई लिख दे जो चाहे जैसा भी हो सकता है ।।
क्यों स्थान निरी गप्पों को विद्वान दिया करते हैं ।। ३ ।।

हर समय तर्क करते हैं हर एक बात पर डट कर ।
अपनी असत्य बातों को देखेंगे नहीं पलट कर ।।
अपनी पकड़ी बातों का ऐसा कुछ मोह प्रबल है ।
विद्रोह न करता इनका अपना जो अन्तः स्थल है ।।
"मिश्र" को सत्य पर चलिये कह ज्ञान दिया करते हैं ।। ४ ।।

मैं ईश्वर हूँ मेरी तुलना,
तुम अपने से क्यों करते हो।
अपने जैसा समझ मुझे भी,
निज श्रेणी में ला धरते हो।

मैं ईश्वर हूँ मैं अखण्ड हूँ मैं अनन्त हूँ मैं महान हूँ।
इच्छा रहित स्वयंभू मैं हूँ सर्व शक्तिमय गुण निधान हूँ॥
मैं ईश्वर हूँ अपने मन में क्यों अल्पज्ञ समझ चलते हो।
अपना स्थान मुझे देकर तुम क्यों जनता को तुम छलते हो।
मैं ईश्वर हूँ क्या मरता हूँ जैसे तुम जीते मरते हो॥ १॥

मैं ईश्वर हूँ मेरा आना जाना कैसे हो सकता है।
रोना धोना सोना पीना खाना कैसे हो सकता है।
मैं ईश्वर हूँ परे प्रकृति से और समय से दूर सदा हूँ
मैं सच्चिदानन्द कहलाता एवं भय से दूर सदा हूँ॥
मैं ईश्वर हूँ मेरा दुख क्या सेवा करके तुम हरते हो॥ २॥

मैं ईश्वर हूँ मुझ में देखो परिवर्तन का नाम नहीं है।
मैं परिपूर्ण सर्व व्यापक हूँ मेरा कहीं विराम नहीं है॥
मैं ईश्वर हूँ अखिल कोटि ब्रह्माण्ड रचयिता कहलाता हूँ।
पालक भी संहारक भी हूँ सब कुछ करके दिखलाता हूँ॥
मैं ईश्वर हूँ क्या डरता हूँ ? जैसे तुम हरदम डरते हो॥ ३॥

मैं ईश्वर हूँ तुम्हें कर्म का निश्चित जो है फल देता हूँ।
क्षमा नहीं करता तुमको मैं और नहीं रिश्वत लेता हूँ॥
मैं ईश्वर हूँ कहीं किसी की सहायता लेता न कभी हूँ।
कर्म किये बिन कभी "मिश्र" मैं फल कुछ भी देता न कभी हूँ॥
मैं ईश्वर हूं आह न भरता जैसे तुम आहें भरते हो॥ ४॥

मैं प्रतिमा हूँ जड़ हूँ मुझको,
सर्वेश्वर का स्थान न दीजे ॥

मैं प्रतिमा हूँ मुझको चेतन कह देने की भूल न करिये ।
यथार्थता से हटकर कोई बात कभी प्रतिकूल न करिये ॥
मैं प्रतिमा हूँ कलाकार के द्वारा आकृति में आती हूँ ।
क्या मेरा अस्तित्व है जिसको मैं न समझने ही पाती हूँ ॥
मैं प्रतिमा हूँ मुझे अगोचर कहकर के सम्मान न दीजे ॥ १ ॥

मैं प्रतिमा हूँ मेरे आगे तुम मिष्ठान्न चढ़ाते क्यों हो ।
मैं खाती हूँ समझ व्यर्थ ही यह अनुमान लगाते क्यों हो ॥
मैं प्रतिमा हूँ मुझ में भी ईश्वर व्यापक है, बात सत्य है ।
सब में ही व्यापक है वह तो सर्व मान्य निर्भ्रान्त तथ्य है ॥
मैं प्रतिमा हूँ इससे बढ़कर किसी बात पर कान न दीजे ॥ २ ॥

मैं प्रतिमा हूँ, अपनी रक्षा कभी नहीं मैं कर सकती हूँ ।
मैं परिपूर्ण अचेतन हूं—दुख नहीं तुम्हारा हर सकती हूँ ॥
मैं प्रतिमा हूँ साधन कहकर मुझको साध्य समझ चलते हो ।
शब्द जाल की रचना करके अपने को सबको छलते हो ॥
मैं प्रतिमा हूँ कर विपरीत भावना पर यों ध्यान न दीजे ॥ ३ ॥

मैं प्रतिमा हूँ जिन महान पुरुषों की उनका ध्यान कीजिये ।
उनके सच्चरित्र पर अपना देकर ध्यान बखान कीजिये ॥
मैं प्रतिमा हूँ मेरी सीमा में ही मुझको रहने दीजे ।
बातें सुन "मिश्र" की आप उन बातों पर विचार कुछ कीजे ॥
मैं प्रतिमा हूँ मुझको तो पद इतना उच्च महान न दीजे ॥ ४ ॥

१२३

मैं हूँ जीव अल्प अविनाशी,
ईश्वर समझ मुझे मत चलिये ।
ईश्वर को भी जीव समझकर,
उस ईश्वर को भी न बदलिये ॥

मैं हूँ जीव जन्मना मरना सुख दुख पाना गुण है मेरा ।
कर शरीर धारण घट बढ़ना आना जाना गुण है मेरा ॥
मैं हूँ जीव कर्म करने मैं अपनी सीमा में स्वतंत्र हूँ ।
किन्तु भोगने फल कर्मों का ईश्वर के आधीन यंत्र हूँ ॥
मैं हूँ जीव जगत के लोगों को ईश्वर कहकर मत छलिये ॥ १ ॥

मैं हूँ जीव भूलकर के प्रतिकूल काम करते रहता हूँ ।
इच्छा और विवशता से भी कर कुकर्म डरते रहता हूँ ॥
विषयों और वासनाओं में फँसकर हानि उठाता भी हूँ ॥
रोता भी चिल्लाता भी हूँ फिर उसका फल पाता भी हूँ ॥
मैं हूँ जीव विषय में मेरे कहने कुछ भी बात सँभलिये ॥ २ ॥

मैं हूँ जीव तनिक सुख पाकर ऐसा अजी फूल जाता हूँ ।
गत कर्मों के फल स्वरूप दुख पाया उसे भूल जाता हूँ ॥
थोड़ी सी सम्पत्ति प्राप्त कर कुबेर का भाई बनता हूँ ।
आया हुआ चला जाता तब अति ही दुख दाई बनता हूँ ॥
मैं हूँ जीव व्यर्थ में मेरी बातों में आकर मत ढलिये ॥ ३ ॥

मैं हूँ जीव प्रशंसा सुनकर आ जाता अतिमान मुझे है ॥
और स्वयं की निन्दा सुनकर आता क्रोध महान मुझे है ॥
सत्य समझिये सहनशीलता का तो मुझमें नाम नहीं है ।
आवश्यकताओ इच्छाओं को मिलता "मिश्र" विराम नहीं है ॥
मैं हूँ जीव बड़ाई मेरी करने में हरदम ही टलिये ॥ ४ ॥

मैं हूँ धर्म मुझे खोकर तुम,
उन्नति कभी न कर पाओगे ।
धारण मुझे करोगे तो ही,
सुख पाओगे हर्षाओगे ।।

मैं हूँ धर्म मुझे बिन धारण किये तुम्हें तो सुख न मिलेगा ।
मुझे समझ शुभ कर्म करोगे तो ही निश्चय दुख न मिलेगा ।।
मैं हूँ धर्म अनेकों मेरे नाम और हैं रूप समझ लो ।
मेरे दस लक्षण है उनको अपने सदा ध्यान में रख लो ।।
मैं हूँ धर्म त्याग कर मुझको सत्य समझ लो दुख पाओगे ।। १ ।।

मैं हूँ धर्म सत्य भी मुझको कहते सदाचार भी मुझको ।
नैतिकता शुद्धता शिष्टता कहते प्रेम प्यार भी मुझको ।।
मैं हूँ धर्म धैर्य का प्रतिनिधि न्याय नीति भी कहलाता हूँ ।
दम अस्तेय और विद्या से तुम्हें सुशोभित करवाता हूँ ।।
मैं हूँ धर्म प्राप्त करलोगे तो जीवन को चमकाओगे ।। ३ ।।

मैं हूँ धर्म इन्द्रियों पर भी मैं अधिकार जमा सकता हूँ ।
साधारण जन से लेकर के ईश्वर तक पहुँचा सकता हूँ ।।
मैं हूँ धर्म तुम्हें संयम में रहने का अभ्यास करा कर ।
आस्तिक तुम्हें बना सकता हूँ ईश्वर में विश्वास करा कर ।।
मैं हूँ धर्म मुझे अपना कर व्यसनों से तुम बच जाओगे ।।

मैं हूँ धर्म ध्यान में रखलो मेरा दुर उपयोग न करना ।
यदि मेरा उपयोग करोगे शुद्ध है दुष्कर नहीं उभरना ।।
मैं हूँ धर्म सदा झगड़ों मे सब को दूर रखा करता हूँ ।
कष्ट पड़े पर सदा "मिश्र" के साहस को परखा करता हूँ ।।
मैं हूँ धर्म स्थान पर मेरे यदि मुझको ही बिठलाओगे ।। ४ ।।

मैं हूँ बुद्धि सदा ही मुझसे जो,
जन काम लिया करते हैं।
स्वाभिमान पूर्वक इस जग में,
वे ही व्यक्ति जिया करते हैं ।।

मैं हूँ बुद्धि! शून्य जो मुझसे रहते पशु ही कहलाते हैं।
मानव तन पाकर भी वे तो लाभ न अपना कर पाते हैं ।।
मैं हूँ बुद्धि उपासक मेरे मानव जन्म सफल कर लेते।
महापुरुष बन जाते हैं वे संग्रह कर मुझको धर लेते ।।
मैं हूँ बुद्धि सदा ही सज्जन सद उपयोग किया करते हैं ।। १ ।।

मैं हूँ बुद्धि! बिना मेरे तो शक्ति भक्ति सब अर्थ व्यर्थ है।
मुझ से काम नहीं लेने पर हो जाता जग में अनर्थ है ।।
मैं हूँ बुद्धि धूर्त जन मेरा करते दुर उपयोग सदा ही।
हानि सदा पहुँचाते जग को दुख पाते हैं लोग सदा ही।
मैं हूँ बुद्धि सदा ही सज्जन सद उपयोग किया करते हैं ।। २ ।।

मैं हूं बुद्धि प्रकाश दिखाकर दूर हटाती अंधकार को।
क्या है सत्य असत्य जगत में समझा देती समझदार को ।।
मैं हूँ बुद्धि न्यायमय निर्णय का भी ज्ञान करा देती हूँ।
स्वार्थ रहित होकर साँचें पर सब कुछ भान करा देती हूँ ।।
मैं हूँ बुद्धि प्राप्त जो करते मुझको अमृत पिया करते हैं ।। ३ ।।

मैं हूँ बुद्धि जगत का अपना–ध्यान करा देती ईश्वर का।
धार्मिकता का नैतिकता का ज्ञान सभी भीतर बाहर का ।।
मैं हूँ बुद्धि वितर्क तर्क भी करना "मिश्र" सिखाती सबको।
और कुमार्ग सुमार्ग कौन सा है यह सदा दिखाती सबको ।।
मैं हूं बुद्धि मुझे रखते वे काम सदा बढ़िया करते हैं ।। ४ ।।

मैं अक्षर हूँ मैं अक्षय हूँ,
निश्चय ही मैं अजर अमर हूँ ।
मैं चैतन्य नहीं हूँ सत्ता,
और न मैं समझो ईश्वर हूँ ।।

मैं अक्षर हूँ मुझे जोड़कर शब्द बनाते आये हो तुम ।
शब्दों से फिर वाक्य बना कर काम चलाते आये हो तुम ।।
मैं अक्षर हूँ मेरे द्वारा लेख लिखे जाते हैं कइयों ।
लोग अजी साहित्यकार बन आदर नित पाते हैं कइयों ।।
मैं अक्षर हूँ हर मानव के रहता आया जिव्हा पर हूँ ।। १ ।।

मैं अक्षर हूँ मेरे द्वारा नाम अनन्त बने ईश्वर के ।
और नाम रक्खे जाते है पशु पक्षी नारियों व नर के ।।
मैं अक्षर हूँ सभी वस्तुएँ मुझसे पहचानी जाती हैं ।
मेरे द्वारा वर्ग जातियाँ जग भर की जानी जाती है ।।
मैं अक्षर हूँ इस खगोल में फिरते रहता सदा अधर हूँ ।। २ ।।

मैं अक्षर हूँ मेरे द्वारा भाषाएँ बोली जाती हैं ।
मेरा ले आधार भावनाएँ मन की खोली जाती है ।
मैं अक्षर हूँ मेरे बिन तो मानव गूंगा रह जाएगा ।
अगर बोलने भी जाएगा मगर बोलने कब पाएगा ?
मैं अक्षर हूँ कहीं न कोई रखता मैं तो कभी कसर हूँ ।। ३ ।।

मैं अक्षर हूँ कोई भी उपयोग करें चाहे जैसा भी ।
साथ सभी का देता हूँ मैं कोई व्यक्ति रहे कैसा भी ।।
मैं अक्षर हूँ मेरे द्वारा लाभ उठाया जा सकता है ।
हानि उठाई जा सकती है काम बनाया जा सकता है ।।
मैं अक्षर हूँ "मिश्र" काम लो न लो रहा तुम पर निर्भर हूँ ।। ४ ।।

मैं हूँ अनुशासन जो मुझको,
पा लेगा यश को पाएगा ।
उन्नत होगा जीवन उसका,
सभ्य नागरिक कहलाएगा ।।

मैं हूँ अनुशासन ईश्वर भी मुझको साथ रखा करता है ।
मुझको छोड़ नहीं रह सकता यह मत समझो की डरता है ।।
सूर्य चन्द्र नक्षत्र सभी ये मेरे ऊपर टिके हुए हैं ।
झाड़ पहाड़ समुद्र आदि हो मुझ पर निर्भर टिके हुए हैं ।।
मैं हूँ अनुशासन तुम मुझको साथ रखो जग गुण गाएगा ।। १ ।।

मैं हूँ अनुशासन नैतिकता साथ रहा करती है मेरे ।
सत्य न्याय औ सदाचार भी रहते हैं नित मुझको घेरे ।।
मैं हूँ अनुशासन मुझको तज शान्ति कभी भी पा न सकोगे ।
जो भी लाभ उठाना हो वह समझो लाभ उठा न सकोगे ।।
मैं हूँ अनुशासन जो भी जन साथ रखेगा हर्षाएगा ।। २ ।।

मैं हूँ अनुशासन जो मेरा शासक बन सम्मान करेंगे ।
शासन में रहने वाले उस शासक का गुणगान करेंगे ।।
मेरे द्वारा सत्ताधारी का होगा विश्वास सभी को ।
स्थिरता आकर सदा मिलेगा उन्नति का अवकाश सभी को ।।
मैं हूँ अनुशासन मेरे जो अंकुश में रह दिखलाएगा ।। ३ ।।

मैं हूँ अनुशासन मुझको तो अपना रहे न हिन्दुस्थानी ।
होकर भी स्वाधीन देश के "मिश्र" कर रहे हैं मनमानी ।।
काम समय पर करने का डाला अब तक अभ्यास नहीं है ।
नैतिकता अनुशासन का इनसे हो सका विकास नहीं है ।।
मैं हूँ अनुशासन मेरी जो महिमा मनुज समझ जाएगा ।। ४ ।।

मैं धरती हूँ मेरे द्वारा सब,
कोई सब कुछ पाते हैं।
मैं सबकी आधार भूत हूँ,
सब मेरे आश्रृत आते है ॥

मैं धरती हूँ ईश्वर का अस्तित्व टिका है मेरे द्वारा।
मेरे रहने पर ही उसकी सत्ता को नित मिले सहारा॥
मैं धरती हूँ मेरी रचना करने पर ईश्वर ईश्वर है !
मेरा यदि अस्तित्व न हो तो ईश्वर रहता कहाँ किधर है॥
मैं धरती हूँ मेरे द्वारा ईश्वर को सब समझाते हैं॥ १ ॥

मैं धरती हूँ जीवों की भी हूँ मैं जन्मदात्री माता।
मेरे द्वारा ही जीवों का भी अस्तित्व दृष्टि में आता॥
मैं धरती हूँ मैं न रहूँ तो इनका स्थान कहाँ पर होगा।
कैसे इनको देह मिलेगी इनको ज्ञान कहाँ पर होगा॥
मैं धरती हूँ मेरे द्वारा जीव ब्रह्म समझे जाते हैं॥ २॥

मैं धरती हूँ सब बातों का अपने में रखती प्रमाण हूँ।
उदाहरण हूँ सब बातों की सच्चाई का रही प्राण हूँ॥
मैं धरती हूँ मुझको झूठी कहते हैं वे ही झूठे है।
होकर मेरे पुत्र व्यर्थ ही में वे तो मुझसे रूठे हैं॥
मैं धरती हूँ मुझपर रहकर लोग सुखी हो हर्षाते हैं॥ ३॥

मैं धरती हूँ अन्न वस्त्र इत्यादि सभी कुछ देने वाली।
पालन पोषण सब का करती, करती हूँ सब की रखवाली॥
मैं धरती हूँ मुझे छोड़कर "मिश्र" कहाँ पर जा सकता हैं॥
मुझे छोड़ क्या मानव कोई ईश्वर के गुण गा सकता है॥
मैं धरती हूँ मुझ पर रहकर ही हर कोई इतराते हैं॥ ४॥

१२९

मैं हूँ मन मेरी चंचलता मेरी,
गति अद्‌भुत अनुपम है।
रखिये सदा ध्यान में अपने,
जो भी मेरे कार्य नियम है ।।

मैं हूँ मन चैतन्य नहीं हूँ बात सत्य यह है मैं जड़ हूं।
जीव मात्र को गोल फिराकर करता रहता मैं बड़बड़ हूँ ।।
मैं हूँ मन यह दशों इन्द्रियाँ मेरे वश में हो चलती है।
यदि मैं दूँ न साथ इनका तो बैठे हुए हाथ मलती है ।।
मैं हूँ मन मेरे द्वारा ही होते काम अधम उत्तम है ।। १ ।।

मैं हूँ मन जो मुझको वश में कर लेते वे सुख पाते है।
जो हो जाते मेरे वश में निश्चय ही वे दुख पाते हैं ।।
मैं हूँ मन चुप नहीं बैठता सन्मुख काम चाहिये मुझको।
भला बुरा कुछ भी करवा लो पर न विराम चाहिये मुझको ।।
मैं हूँ मन संकल्प विकल्पों का चलता नित मेरा क्रम है ।। २ ।।

मैं हूँ मन योगी जन मुझको कर एकाग्र शांति पाते हैं।
तनिक चूक हो जाने पर भी वे गिर जाते पछताते हैं ।।
मैं हूँ मन एक ही समय में काम नहीं दो कर सकता हूँ।
क्षण में काम अनेकों फिर भी करके मैं तो धर सकता हूँ ।।
मैं हूँ मन में कभी न थकता करवा लो कितना भी श्रम है ।। ३ ।।

मैं हूँ मन अभ्यास किये पर रुक सकता हूँ थम सकता हूँ।
दृढ़तापूर्वक यत्न किये पर एक जगह पर जम सकता हूँ ।।
मैं हूँ मन हरदम का साथी मेरा जो है धर्म समझ लो।
"मिश्र" रहा जैसा स्वभाव है जो, जो भी गुण कर्म समझ लो।
मैं हूँ मन यह समझ लीजिये हटा लीजिये जो भी भ्रम है ।। ४ ।।

मैं मानव हूँ मानवता के मैं,
विरुद्ध भी चल सकता हूँ।
सज्जनता के दुर्जनता के,
ढाँचे में मैं ढल सकता हूँ।।

मैं मानव हूँ दानवता भी रख कर मानव रह सकता हूँ।
क्योंकि--मिली आकृति मानव की इससे मानव कह सकता हूँ।।
मैं मानव हूँ मैं स्वतंत्र हूँ जो भी चाहे कर सकता हूँ।
मैं चाहूँ तो जी सकता हूँ आत्मघात कर मर सकता हूँ।।
मैं मानव हूँ कभी किसी को जब भी चाहे छल सकता हूँ।। १।।

मैं मानव हूँ नैतिकता में अनुशासव में रह सकता हूँ।
और न चाहूँ तो ना रहकर इधर उधर भी वह सकता हूँ।।
मैं मानव हूँ अपनी इच्छा से सब नियम बदल लेता हूँ।
मैं जो चाहूँ वही न्याय है सच है जो मैं कह देता हूँ।।
मैं मानव हूँ अपने वचनों को कहकर मैं टल सकता हूँ।। २।।

मैं मानव हूँ अन्यों पर तो अत्याचार किया करता हूँ।
मुझ पर अत्याचार हुए पर हाहाकार किया करता हूँ।।
मैं मानव हूँ घर नारी के चरित्र की रक्षा चाहूँगा।
शील हरण कर पर नारी का अपने मन में हर्षाऊँगा।।
मैं मानव हूँ विषय वासनाओं में खुद तो पल सकता हूँ।। ३।।

मैं मानव हूँ ऋण को देकर उसको फिर लेना चाहूँगा।
पर ऋण लेकर उस ऋण को फिर कभी नहीं देना चाहूँगा।।
जो उपदेश अन्यों को दूंगा, अपने पर लागू न करूँगा।
अन्यों को दुख पहुँचाऊँगा खुद दुख पाकर आह भरूँगा।।
मैं मानव हूँ जो भी चाहूँ बातें "मिश्र" उगल सकता हूँ।। ४।।

१३१

मैं आस्तिक हूँ जब देखो तब,
आस्तिकता का दम भरता हूँ।

मैं आस्तिक हूँ आस्तिकता में मैं विश्वास किया करता हूँ।
किन्तु आचरण में नास्तिकता सच है धार लिया करता हूँ॥
मैं आस्तिक हूँ अन्य आस्तिकों से मैं सदा लड़ा करता हूँ।
मेरी बात न माने उससे मैं प्रति दिन झगड़ा करता हूँ॥
मैं आस्तिक हूँ पापों को करता हूँ पापी से डरता हूँ॥ १॥

मैं आस्तिक हूँ ईश्वर की तो उपासना करता न कभी भी।
ईश्वर से अपनी उपासना करवाने डरता न कभी भी॥
मैं आस्तिक हूँ क्षमा माँग ईश्वर को गोल फिरा देता हूँ।
वह क्या गोल फिरेगा पर मैं अपने को समझा लेता हूँ॥
मैं आस्तिक हूँ हिन्सक बन कर जब चाहे सब कुछ चरता हूँ॥ २॥

मैं आस्तिक हूँ सदा नास्तिकों से मैं द्वेश किया करता हूँ।
अपने उल्टे कामों पर तो तनिक न ध्यान दिया करता हूं॥
मैं आस्तिक हूँ भ्रष्टाचार किये पर होता क्लेश नहीं है।
तिल भर भी तो आस्तिकता का रह पाता लवलेश नहीं है॥
मैं आस्तिक हूँ जीवों के मैं कभी न कष्टों को हरता हूं॥ ३॥

मैं आस्तिक हूँ स्वार्थ पारायण बना भक्त सब को ठगता हूँ।
वेश भाव बाहर से दिखने में मैं अति उत्तम रखता हूँ॥
मैं आस्तिक हूँ सब जग भर के व्यसन मुझे घेरे रहते हैं।
और दुर्गुणों के चहुँ दिशि में लगे हुए डेरे रहते हैं॥
मैं आस्तिक हूं "मिश्र" सदा ही कामकाज उल्टे करता हूं॥ ४॥

मैं हूँ झूठ लोग ऊपर से,
मुझसे सभी घृणा करते हैं।
काम सदा लेते हैं मुझ से,
मेरे द्वारा घर भरते हैं ॥

मैं हूँ झूठ धर्म धारी जो कहलाते हैं वे भी मुझसे।
काम चलाते समय पड़े पर अपमानित करके भी मुझसे ॥
मैं हूँ झूठ सभी व्यापारी मुझसे ही व्यापार चलाते।
आड़ सत्य की रखते केवल मुझसे कारोबार चलाते ॥
मैं हूं झूठ दुखी जन मेरे द्वारा अपना दुख हरते है ॥ १ ॥

मैं हूँ झूठ कई अपराधी मेरे द्वारा बच जाते हैं।
ईश्वर की सौगन्ध सदा ही खाकर मुझको अपनाते हैं।
मैं हूँ झूठ कई शासकगण रहते सदा सहारे मेरे।
मैं हूँ उनका प्यारा साथी वे हैं सब ही प्यारे मेरे ॥
मैं हूं झूठ सहायक उनका जो न मुझे कहते डरते हैं ॥ २ ॥

मैं हूँ झूठ राम ने मुझको रखकर साथ बालि को मारा।
युद्ध क्षेत्र में कृष्ण चन्द्र ने कई बार है लिया सहारा ॥
मैं हूँ झूठ सर्व व्यापक हूँ बचा न कोई स्थान है मुझसे ॥
अब बतलाओ कभी सत्य क्या हो सकता महान है मुझसे ॥
मैं हूं झूठ लोग आदर कर मेरा ध्यान सदा धरते हैं ॥ ३ ॥

मैं हूँ झूठ सत्य का भी तो है अस्तित्व टिका मुझ पर ही।
बिन मेरे क्या मूल्य सत्य का सत्य रहा मुझ पर निर्भर ही।
मैं हूँ झूठ, झूठ मत समझो बातें मैंने कही सत्य है।
"मिश्र" नहीं झुठला सकता है जो बतलाया सही तथ्य है ॥
मैं हूं झूठ लोग मुझ पर ही हो आसक्त सदा मरते हैं ॥ ४ ॥

मैं सत्ता हूँ मुझे प्राप्त कर,
मत घमण्ड में तुम आ जाना ।
कभी भूलकर मेरे द्वारा,
कभी न अनुचित लाभ उठाना ॥

पहले पहले लोग त्याग तप सेवाएँ कर दिखलाते हैं ।
सदा सन्तुलन में रहकर के सब से ही आदर पाते हैं ॥
न्याय नीति को अपना कर के बुरे काम से डरते भी हैं ॥
सच्चे अर्थों में दुखियों के दुख से आहें भरते भी है ।
मैं सत्ता हूँ मुझे प्राप्त कर मत इनमें परिवर्तन लाना ॥ १ ॥

काम क्रोध मद लोभ समझिये रहते मेरे साथ सदा है ।
सत्ता पाने पर उचकाते करवाते उत्पात सदा है ॥
इनके वश में जो हो जाते वे फिर निश्चय पछताते हैं ।
कितनी भी फिर शक्ति लगालें उनके आसन डिग जाते हैं ॥
मैं सत्ता हूँ मुझे प्राप्त कर इन बातों से मन न लगाना ॥ २ ॥

कभी कहीं विपरीत ढंग से मेरा मत उपयोग कीजिये ।
बने जहाँ तक सद विवेक से मेरा सदउपयोग कीजिये ॥
न्याय नियंता निर्णायक को कभी भूल कर भूल न करिये ।
यदि अपयश न कमाना हो तो कार्य कोई प्रतिकूल न करिये ॥
मैं सत्ता हूँ मुझे प्राप्त कर नादानी कर नहीं दिखाना ॥ ३ ॥

मैं चंचल हूँ मैं अस्थिर हूँ कभी न टिक कर मैं रहती हूँ ।
मुझको अधिक टिकाना हो तो सँभले रहो तुम्हें कहती हूँ ॥
मैं वश में उसके रहती हूँ जिसको पात्र समझती हूँ मैं ।
जो त्यागी है वह अधिकारी मेरा मात्र समझती हूँ मैं ॥
मैं सत्ता हूँ मुझे प्राप्त कर अनुचित "मिश्र" न पाँव बढ़ाना ॥ ४ ॥

मैं पैसा हूँ सुनो सज्जनों,
मेरा तुम सत्कार करोगे ।
तो ही सुख पाओगे जग में,
यथा योग्य व्यवहार करोगे ।।

मेरा सद उपयोग करोगे तभी तुम्हारा आदर होगा ।
घर के सब ही सुख पाओगे हरा भरा सब का घर होगा ।।
व्यय मत करो व्यर्थ का सब मिल मेरा संग्रह करना सीखो ।
काम पड़े पर मुझे काम में ला अपना दुख हरना सीखो ।।
मैं पैसा हूँ मुझे बढ़ाकर मुझसे कारोबार करोगे ।। १ ।।

मैं पैसा हूँ मेरे बिन तो काम नहीं करने पाओगे ।
मेरे बिना पिछड़ जाओगे नाम नहीं करने पाओगे ।।
मेरा करते नित्य अनादर, करते जो सन्मान नहीं है ।
उनसे बढ़कर सत्य समझिये कोई नर नादान नहीं है ।।
मैं पैसा हूँ मुझे प्राप्त कर कभी न अत्याचार करोगे ।। २ ।।

मैं पैसा हूँ कई तरह के लोगों को सुख देता हूँ मैं ।
करे लोभ की पराकाष्ठा तो उनको दुख देता हूँ मैं ।।
पाँव नहीं है निश्चय फिर भी सच समझो चल देता हूँ मैं ।
जो रखते दातृत्व है उनका अति उत्तम फल देता हूँ मैं ।।
मैं पैसा हूँ सद्विवेक के द्वारा यदि विस्तार करोगे ।। ३ ।।

मैं पैसा हूँ मुझे कमाओ और रहो तुम दाता बनकर ।
खर्च नहीं करने दूंगा मैं रहा अगर जामाता बनकर ।।
सदा रखो आधीन मुझे तुम ! पर मेरे आधीन न बनिये ।
लोग कृपण कह हँसी उड़ाएँ ऐसे भी तुम दीन न बनिये ।।
मैं पैसा हूँ मेरे द्वारा "मिश्र" सही व्यापार करोगे ।। ४ ।।

मैं पत्नी हूँ मुझको दासी,
समझ न दुर्व्यवहार कीजिये ।
मुझे संगिनी समझ सदा ही,
पालन शिष्टाचार कीजिये ।।

मैं पत्नी हूँ आयु आदि में सच है यह मैं बड़ी नहीं हूँ ।
बल में और कई बातों में रह सकती मैं खड़ी नहीं हूँ ।
मैं पत्नी हूँ मेरे बिन भी चल सकता संसार नहीं है ।।
किसी दृष्टि से भी सोचो तो बनता कारोबार नहीं है ।।
मैं पत्नी हूँ तिरस्कार कर मत मेरा प्रतिकार कीजिये ।। १ ।।

मैं पत्नी हूँ औ नारी हूँ एक दृष्टि से मैं अबला हूँ ।
किन्तु कई ऐसी बातें हैं जिनके कारण एक बला हूँ ।।
मैं पत्नी हूँ साथ दिये पर है सुखमय संसार समझिये ।।
मैं विरुद्ध हो गई अगर तो है सब बंटा ढार समझिये ।।
मैं पत्नी हूँ सम्मति लेकर जग के सब व्यापार कीजिये ।। २ ।।

मैं पत्नी हूँ मेरे बिन भी कोई कार्य नहीं बन पाता ।
सर्वेश्वर भी सदा प्रकृति के द्वारा है संसार चलाता ।।
मैं पत्नी हूँ मेरे बिन सब रह जाता है काम अधूरा ।
मेरे साथ रहे पर ही तो होता काम सभी है पूरा ।।
मैं पत्नी हूँ समरस रहकर सब कुछ करोबार कीजिये ।। ३ ।।

मैं पत्नी हूँ मेरा स्थान अन्य को देना पाप समझिये ।
मेरे ही संगी बन रहने में गौरव है आप समझिये ।
मैं पत्नी हूँ आप पुरुष हो जो आशा मुझसे रखते हो ।
स्वयं चलो उस पथ पर जो भी अभिलाषा मुझ पर रखते हो ।।
मैं पत्नी हूँ पर विवेक रखती हूँ "मिश्र" विचार कीजिये ।। ४ ।।

मैं नारी हूँ मेरा आकर्षण है,
वहुत भयंकर समझो ।।
बचना नहीं असंभव फिर भी,
है अत्यंत कठिन तर समझो ।।

मैं नारी हूँ बात सत्य है कहने को तो अबला हूँ मैं ।
पर पुरुषों की दुर्बलता से बन जाती फिर सबला हूँ मैं ।।
मात्र एक संकेत प्राप्त कर मानव विचलित हो जाता है ।
अपना आपा भूल भुलाकर लोलुप होकर खो जाता है ।।
कर देता सर्वस्व समर्पण पछताता जीवन भर समझो ।। १ ।।

मैं नारी हूँ ऋषि मुनि जन भी मुझसे हार मान बैठे हैं ।
है इसका इतिहास साक्षी ! शक्ति महान जान बैठे हैं ।।
बच जाते हैं वे ही जिन पर रहती दया दयामय की है ।
बनी हुई रहती मरने तक बात सदा ही संशय की है ।।
दृढता रखने पर भी रहता हर दम बना हुआ डर समझो ।। २ ।।

बचा वही नर बचा न बचना चाहा वह तो फँसा समझिये ।
काम वासना के कीचड़ में बुरी तरह से धँसा समझिये ।।
मैं अबला हूँ किन्तु बला भी हूँ यह आप समझकर चलिये ।
बचो सदा हो सके जहाँ तक मेरे आकर्षण से टलिये ।।
बड़ा क्रूर औ महा भयानक मुझे वासना का ज्वर समझो ।। ३ ।।

राम वाण सम काम बाण का होता प्राणों पर प्रहार है ।
बचना हो जाता है दुष्कर पड़ती ऐसी प्रबल मार है ।।
किन्तु "मिश्र" साहस मत त्यागो ईश्वर से वह शक्ति माँगिये ।।
जिससे बचें काम वाणों से ऐसी उस से भक्ति माँगिये ।।
दृढता रखो और अपने को नहीं एकदम कायर समझो ।।

मैं गुलाम हूँ मेरा अपना,
निश्चित कोई धर्म नहीं है।
किसी व्यक्ति के द्वारा मेरा,
जाना जाता मर्म नहीं है ॥

मैं गुलाम हूँ तन से मन से, जीवन भर का धन के कारण।
कुछ भी काम करालो मुझसे, बात अजी यह है साधारण ॥
मैं गुलाम हूँ नैतिकता का मुझमें सदा अभाव रहा है।
स्वार्थ पूर्ति करना बस यह ही मेरा सदा स्वभाव रहा है ॥
मैं गुलाम हूँ स्वतंत्र मेरा अपना कोई कर्म नहीं है ॥ १ ॥

मैं गुलाम हूँ अन्तरात्मा मरी हुई हरदम रहती है ॥
जो कहता है स्वामी मेरा वाणी भी वह ही कहती है ॥
मैं गुलाम हूँ मुझ पर मेरा किंचित भी अधिकार नहीं है।
स्वतंत्रतापूर्वक कोई भी हो पाता व्यवहार नहीं है ॥
मैं गुलाम हूँ किसी बात में आती मुझको शर्म नहीं है ॥ २ ॥

मैं गुलाम हूँ बिना किये श्रम घर बैठे धन मिल जाता है।
देने वाला प्रसन्नता से देने मेरे घर आता है ॥
मैं गुलाम हूँ लोग चिढ़ाते पर मैं ढीठ बना रहता हूँ
मेरे साथी बहुत मिलेंगे ऐसा समझ तना रहता हूँ ॥
मैं गुलाम हूँ कभी कहीं भी होने पाता गर्म नहीं हूँ ॥ ३ ॥

मैं गुलाम हूँ अपने में परिवर्तन लाना सहज बात है।
हाँ जी हाँ जी ठकुर सुहाती बात बनाना सहज बात है ॥
मैं गुलाम हूँ पर मुझसे भी बढ़कर "मिश्र" मिलेंगे ऐसे।
हो निष्काम साथ देवेंगे दोणाचार्य भीष्म के जैसे
मैं गुलाम हूँ चुरका मुझको लग जाए वह चर्म नहीं है ॥ ४ ॥

मैं इंग्लिश भाषा हूँ मेरे, तुम–
गुलाम हो भारत वालो ।
दब कर चलो शीष नीचे कर,
मेरी ओर न आँख निकालो ॥

मैं इंग्लिश भाषा हूँ मेरा शासन रहा तुम्हारे पर है ।
मेरे दास कई बैठे हैं मुझे बताओ किसका डर है ॥
दुस्साहस कर मुझे दबाया तो मैं तुम्हें दबा डालूँगी ।
अकड़ दिखाई मेरे आगे तो मैं तुम्हें चबा डालूँगी ॥
मैं इंग्लिश भाषा हूँ मुझको पढ अपने को सबल बनालो ॥ १ ॥

मैं इंग्लिश भाषा हूँ मुझको मेकाले ने स्थान दिया है ।
मेकाले के पटु शिष्यों ने भारत में सम्मान दिया है ।
जितनी भी देशी भाषाएँ हैं हूँ मैं तो उनकी रानी ।
हिन्दी बनी राष्ट्र भाषा पर मेरे आगे भरती पानी ॥
मैं इंग्लिश भाषा हूँ मुझको ग्रहण करो मन में हर्षालो ॥ २ ॥

मैं इंग्लिश भाषा हूँ मेरा जो भी जन अपमान करेगा ॥
भारत में रहकर भी वह तो भूखा रह बिन मौत मरेगा ॥
मत घमण्ड में मरो मुझे तुम अपने मस्तक पर बैठाओ ।
मेरे द्वारा द्रव्य कमाओ पी खाकर नित मौज उड़ाओ ॥
मैं इंग्लिश भाषा हूँ मेरा मत विरोध कर, गले लगालो ॥ ३ ॥

मैं इंग्लिश भाषा हूं इन भारत के नेताओं की प्यारी ।
मुझे चाहते हैं तन मन से शासन के पूरे अधिकारी ॥
सच समझो तुम मेरा तो इस भारत से जाना दुष्कर है ।
मेरा स्थान मिले हिन्दी को यह कर दिखलाना दुष्कर है ॥
मैं इंग्लिश भाषा हूँ मुझको जीवन में तुम "मिश्र" पचालो ॥ ४ ॥

मैं हिन्दी हूँ स्थान स्थान पर,
बुरी तरह धक्के खाती हूँ ।
देश वासियों के द्वारा ही,
प्रति दिन दुतकारे जाती हूँ ।।

मैं हिन्दी हूँ सत्य समझिये विधवा जैसी मेरी स्थिति हैं ।
या यों कहिये परित्यक्ता सी हुई जा रही मेरी इति है ।।
मैं हिन्दी हूँ मेरा कोई नहीं समर्थक और न रक्षक ।
सत्ता है जिनके हाथों में बन बैठे हैं वे ही भक्षक ।।
मैं हिन्दी हूँ सदा अनादर होता मान नहीं पाती हूँ ।। १ ।।

मैं हिन्दी हूँ मुझे चाहने वाले सभी विवश हो बैठे ।
हार चुके मुझको पद के मद में आकर सब कुछ खो बैठे ।।
मैं हिन्दी हूँ दशा द्रोपदी जैसी मेरी आज हो रही ।
चीर हरण हो रहा निरन्तर मैं हूँ अपनी लाज खो रही ।।
मैं हिन्दी हूँ दोष यही है नहीं किसी के मन भाती हूँ ।। २ ।।

मैं हिन्दी हूँ इंग्लिश भाषा की दासी सा काम है मेरा ।
मुझ में नहीं योग्यता कुछ भी, नाम आज बदनाम है मेरा ।।
मैं हिन्दी हूँ लोग देश के पोंछ रहे हैं बिन्दी मेरी ।
अपने हाथों स्वयं कर रहे देखो चिन्दी चिन्दी मेरी ।।
मैं हिन्दी हूँ ऊपर अपना शीश उठाने घबराती हूँ ।। ३ ।।

मैं हिन्दी हूँ विधान में तो सब से ऊँचा पद पाया है ।
पद पाकर भी "मिश्र" देखलो किस प्रकार का दिन आया है ।।
मैं हिन्दी हूँ इसीलिए तो मुझको कारावास मिला हैं ।
सीता की ही भाँति मुझे भी पति द्वारा वनवास मिला है ।।
मैं हिन्दी हूँ विदेशियों के आगे हरदम शर्माती हूँ ।। ४ ।।

मैं हूँ गाय श्रेष्ठतम प्राणी,
कह ऋषियों ने गान किया है।
तन से मन से और वचन से,
सदा मुझे सम्मान दिया है ॥

आदिसृष्टि से आज तलक के, महापुरुष जितने आए हैं।
गौ की रक्षा गौ की सेवा करो बोल यों दर्शाए हैं ॥
दुग्ध दही घृत चर्म मूत्र गोबर ये सभी लाभकारी है।
मुझसे बढ़कर कोई प्राणी नहीं मनुज का हितकारी है ॥
मैं हूँ गाय बुद्धिमानों ने सबसे ऊँचा स्थान दिया है ॥ १ ॥

भारत तो स्वाधीन हुआ, पर वध मेरा न बन्द हो पाया।
नेताओं ने और शासकों ने न इधर कुछ ध्यान लगाया ॥
साधारण जनता ने भी तो मेरी ओर न रुचि दिखलाई।
मेरे संरक्षण की घड़ियाँ नहीं आज तक भी आ पाईं ॥
मैं हूँ गाय कभी उन्नति पर नहीं किसी ने कान दिया है ॥ २ ॥

धार्मिक जनता भाव भक्ति का, मेरे प्रति नित दिखलाती है।
किन्तु कभी भी संवर्धन की ओर नहीं बढ़ने पाती है ॥
मात्र एक पूजा करना ही अपना धर्म समझ बैठी है।
जय का घोष लगाना ही अपना शुभ कर्म समझ बैठी है ॥
मैं हूँ गाय बचाने मुझको कुछ लोगों ने प्राण दिया है ॥ ३ ॥

मेरे द्वारा अर्थोपार्जन करना नहीं आप चाहेंगे।
मात्र नाम लेकर के मेरा—करना आप जाप चाहेंगे ॥
तो निश्चय फिर "मिश्र" समझ लो कोई शासक झुक न सकेगा ॥
मेरी उन्नति हो न सकेगी मेरा कटना रुक न सकेगा ॥
मैं हूँ गाय दिया है जिसने तो पद मुझे महान दिया है ॥ ४ ॥

मै हूँ गधा आपकी सेवा,
करने में तत्पर रहता हूँ ।
फिर कर भरता पेट बँधा मैं,
निज स्वामी के घर रहता हूँ ।।

मैं हूँ गधा–उठाता बोझा अपना मुख न खोलता हूँ मैं ।
खाने को कुछ भी दो मत दो कुछ भी नहीं बोलता हूँ मैं ।।
मैं हूँ गधा शत्रुता मेरी कभी किसी से रही नहीं है ।
गिरा रखा लोगों ने मुझको बात सुनो यह सही नहीं हैं ।।
मैं हूँ गधा सदा श्रम करके खाता, कसे कमर रहता हूँ ।। १ ।।

मैं हूँ गधा सताया जाता, पर न किसी को कभी सताता ।
अधिक तंग करते उनको मैं अधिक नहीं दो लात लगाता ।।
मैं हूँ गधा शान्ति का चाहक हिन्सा से नित दूर रहा हूँ ।
शील स्वभाव रहा है मेरा, कभी न बनकर क्रूर रहा हूँ ।।
मैं हूँ गधा सभी से प्रति दिन मन में मैं डर डर रहता हूँ ।। २ ।।

मैं हूँ गधा नाम मेरा ही मूर्खजनों को दे देते हैं ।
क्या मैं इतना गिरा हुआ हूँ जो कि नाम मेरा लेते हैं ।।
मैं हूँ गधा भला बनकर ही रहना यह अपराध है मेरा ।
बुद्धिमान कोई तो कह दें समझाकर यह दोष है तेरा ।।

मैं हूँ गधा सदा ही देखो अपने पर निर्भर रहता हूँ ।। ३ ।।
सुन्दरता आकृति है जो भी, मिला "मिश्र" यह जो स्वर है ।
ईश्वर की है देन व्यर्थ ही दोष लगाते मेरे पर है ।।
क्या मुझ जैसे अन्य नहीं है क्यों यों मुझे प्रमुखता देते ।
अनुचित करे काम कोई भी–झट से उसे गधा कह लेते ।।
मैं हूँ गधा सर्वदा जग में मैं विनम्र होकर रहता हूँ ।। ४ ।।

मैं हूँ सिंह क्रूर क्रोधी भी
जीव सभी मुझसे डरते हैं।
मानव भी डरते हैं सारे,
किन्तु गर्व मुझ पर करते हैं।।

मैं हूँ सिंह नाम के आगे मेरा नाम लगा रखते हैं।
हो वीरत्व जगाना तो फिर अपने भाव जगा रखते हैं।।
मैं हूँ सिंह किन्तु सच समझो मिन्टों तक ही लड़ सकता हूँ।
दौड़ लगाने में भी अन्यों से आगे ना बढ़ सकता हूँ।।
मैं हूँ सिंह पडे जो मेरे पाले वे आहे भरते हैं।। १ ।।

मैं हूँ सिंह स्वयं के बच्चों पत्नी के संग में रहता हूँ।
अन्य सभी समकक्ष जातियों का भी संग नहीं सहता हूँ।।
मैं हूँ सिंह किसी के वश में रहना मेरा कर्म नहीं है।।
दया करूँ मैं सब जीवों पर यह तो मेरा धर्म नहीं है।।
मैं हूं सिंह झपट्टे में आने वाले सब ही मरते हैं।। २ ।।

मैं हूँ सिंह रूप आकृति भी रंग मिला वह भी सुन्दर है।
किन्तु भला करता न किसी का दोष यही आता मुझ पर है।।
मैं हूँ सिंह मिले हैं जो भी शस्त्र दिये मुझको ईश्वर ने।
जीवों का वध करके निशि दिन अपनी क्षुधा पूर्ति को करने।।
मैं हूँ सिंह वीर कहलाते जो मेरा जीवन हरते है।। ३ ।।

मैं हूँ सिंह अधिक गुण मुझमें नहीं दीखने में आते हैं।
व्यर्थ भावना रखते जो भी वे ही जन धोखा खाते है।।
मैं हूँ सिंह अनुकरण मेरा करने की यह भूल न करिये।
तुम हो "मिश्र" इसी से बातें पशुता के अनुकूल न करिये।।
मैं हूँ सिंह चित्र भी मेरा ले जाकर घर में धरते हैं।। ४ ।।

१४३

मैं शासक हूँ मेरे वचनों को,
आदेश मान कर चलिये ।
सब कुछ मुझे समझकर,
मेरी कही हुई बातों में ढलिये ।।

मैं शासक हूँ बात किसी की नहीं रहा सुनने का आदी ।
इसकी चिंता नहीं मुझे चाहे कोई बोले उन्मादी ।।
मैं शासक हूँ जो कुछ भी कह देता हूं बस न्याय वही है ।
उसे मान लेना प्रसन्न रखने का मात्र उपाय वही है ।।
मैं शासक हूँ मेरी बातों को सुन कर मन में मत जलिये ।। १ ।।

मैं शासक हूँ मेरी बातें सुन कर कभी विरोध न करना ।
कभी क्रोध करने पर मेरे बदले में फिर क्रोध न करना ।।
मैं शासक हूँ मेरे सम्मुख सहनशील बनकर तुम रहना ।
देकर के सुझाव शिक्षा की बातें मुझको कभी न कहना ।।
मैं शासक हूँ मेरी झिड़की खाकर भी मत कभी मचलिये ।। २ ।।

में शासक हूँ मेरी सन्तानों को नित सम्मान दीजिये ।
मुझ सा दे सम्मान उन्हें भी कभी नही अपमान कीजिये ।।
मैं शासक हूँ विधान को भी अपने लिये बदल सकता हूँ ।
मनमाने ढंग से जैसी इच्छा मेरी ! पर—चल सकता हूँ ।
मैं शासक हूँ मेरे आगे बढ़ कर के मत कभी निकलिये ।। ३ ।।

मैं शासक हूँ प्रजातंत्र में मैं डिक्टेटरी चला सकता हूँ ।
कौन पूछने वाला मुझको जैसे चाहे छा सकता हूँ ।
मैं शासक हूँ राजनीति का पण्डित मुझे जान कर चलिये ।
सर्वोपरि शासक मुझको ही केवल "मिश्र" मान कर चलिये ।।
मैं शासक हूँ बदल जाइये सब ही पर मुझको न बदलिये ।। ४ ।।

मैं दुर्जन हूँ इसीलिए तो,
आता नहीं भलाई करना ।
काम है मेरा अवसर पाकर,
झगड़ा और लड़ाई करना ॥

मैं दुर्जन हूँ छेड़ छाड़ करना यह मेरा काम रहा है ।
शान्ति भंग करते रहना ही काम सुबह औ शाम रहा है ॥
मैं दुर्जन हूँ शान्ति मुझे मिलती हैं किसी की हानि किये पर ।
होता है सन्तोष मुझे तो सदा किसी को कष्ट दिये पर ॥
मैं दुर्जन हूँ है स्वभाव में मेरे हाथा पाई कराना ॥ १ ॥

मैं दुर्जन हूँ लोगों की पगड़ियाँ उछाला करता हूँ मैं ।
धोखा देकर झूठ बोलकर काम निकाला करता हूँ मैं ॥
मैं दुर्जन हूँ सज्जनता से दूर रहा करता हूँ प्रति दिन ।
चैन नहीं पड़ता है मुझको सच समझो दुर्वचन कहे बिन ।
मैं दुर्जन हूँ सीख लिया है मैंने मात्र बुराई करना ॥ २ ॥

मैं दुर्जन हूँ सदा ढूंढता रहता हूँ मैं अपना साथी ।
मूर्ख बताने की लोगों को मुझको सभी कलाएँ आतीं ॥
मैं दुर्जन हूँ सूरत मेरी दिखने में हैं भोली भाली ।
करते रहता हूँ करतूतें काली घर में बैठा खाली ॥
मैं दुर्जन हूँ भली भाँति से सीख लिया हूँ करना धाई ॥ ३ ॥

मैं दुर्जन हूँ सब को मेरी हो सकती पहचान नहीं है ।
कुछ ही लोग जानते मुझको सब को मेरा ज्ञान नहीं है ॥
मैं दुर्जन हूँ प्राय: मुझसे सब ही लोग डरा करते हैं ।
इसीलिए मेरी चर्चाएँ खुल कर नहीं करा करते है ॥
मैं दुर्जन हूँ "मिश्र" है मेरा काम बात मनचाही करना ॥ ४ ॥

मैं हूँ पाप आपका वैरी,
पर मेरी है चाह सभी को ।
बुरा कहो पर मेरे द्वारा,
करना है निर्वाह सभी को ।।

मैं हूँ पाप अजी मेरे में रहता अद्‌भुत आकर्षण हैं ।
मेरे आगे धीर वीर दृढ़ मानव का डिग जाता प्रण है ।।
मैं हूँ पाप बचा है मुझसे कौन व्यक्ति यह तो बतलाओ ।
मेरे बिना कौन जीता है मुझको जीता कौन दिखाओ ।।
मैं हूँ पाप प्रलोभन द्वारा करता हूँ गुमराह सभी को ।। १ ।।

मैं हूँ पाप बुलाए बिन ही सबके पास पहुँच जाता हूँ ।
धर्मचन्द हो कर्मचन्द हो सब को चक्कर में लाता हूँ ।।
मैं हूँ पाप छाप सब पर ही मेरी लगी हुई पाओगे ।
मैं सबका जीवन साथी हूँ मुझको छोड़ कहाँ जाओगे ।।
मैं हूँ पाप साथ रखने में होता है उत्साह सभी को ।। २ ।।

मैं हूँ पाप, पाप करके ही पुण्य लोग करने जाते हैं ।
मेरे भय से कई कृपण जन दानी बन कर दिखलाते हैं ।
मैं हूँ पाप सदा मेरे ही द्वारा लोग धनी बनते हैं ।।
मेरे द्वारा ही सत्ता पा कुरसी पर बैठे तनते हैं ।।
मैं हूँ पाप आप सच समझो मेरी है परवाह सभी को ।। ३ ।।

मैं हूँ पाप मुझे करके ही मुझसे लोग घृणा करते हैं ।
आचरणों में मुझे स्थान दे धर्मवान बन दम् भरते हैं ।।
मैं हूँ पाप "मिश्र" सबको ही मेरे द्वारा सुख मिलता है ।
मेरे द्वारा स्वार्थ सिद्धि होने से सबका मुख खिलता है ।।
मैं हूँ पाप अन्त में निश्चय भरना पड़ता आह सभी को ।। ४ ।।

मैं हूँ कृपण नाम देने का,
सुनते ही ज्वर चढ़ जाता है।
क्या जाने क्या बात है,
मेरा सारा अंग सिकुड़ जाता है ॥

मैं हूँ कृपण सदा धन संग्रह करना ही मन भाता मुझको।
हो ऐसा अभ्यास गया है देना नहीं सुहाता मुझको ॥
देने की इच्छा होती है फिर भी नहीं दिया जाता है।
केवल वाणी द्वारा ही मुझसे उपकार किया जाता है ॥
मैं हूँ कृपण खर्च करने में मेरा टट्टू अड़ जाता है ॥ १ ॥

मैं हूँ कृपण समझता हूँ मैं लोग सदा निन्दा करते हैं।
ताने देते झेंपाते हैं—मुझको शर्मिन्दा करते हैं ॥
ढीठ बना रहता हूं इसकी मुझको कुछ परवाह नहीं है।
याचक करें प्रशंसा चाहे पर होता उत्साह नहीं है ॥
मैं हूं कृपण धनी होने से याचक पीछे पड़ जाता है ॥ २ ॥

मैं हूँ कृपण दास लक्ष्मी का लक्ष्मी पति से प्यार नहीं है ॥
लक्ष्मी का अधिकार है मुझ पर, लक्ष्मी पर अधिकार नहीं है ॥
लेने का अभ्यास है मुझको देने का अभ्यास नहीं है।
क्या है छिपा रहस्य, बात का उत्तर मेरे पास नहीं है ॥
मैं हूँ कृपण मन चला कोई आता और झगड़ जाता है ॥ ३ ॥

मैं हूँ कृपण किसी को भी ना कहने में संकोच नहीं है।
समझेगा क्या व्यक्ति सामने वाला इसका सोच नहीं है ॥
भजन प्रार्थना सब कुछ मैं तो धन के लिये किया करता हूँ।
सहनशील हूँ "मिश्र" कहे कुछ उसकी मान लिया करता हूँ ॥
मैं हूँ कृपण झगड़ने पर तो झगड़ा आगे बढ़ जाता है ॥ ४ ॥

सुख पाए कैसे ! मात पिता सुत,
जहाँ न आज्ञाकारी हो ।
वे पुत्र सुखी होंगे कैसे,
जिनके जब पिता जुआरी हो ! ।।

हो सास बहू में जब खट खट परिवार सुखी होंगे कैसे ?
पति देव सुखी होंगे कैसे कर्कश स्वभाव की नारी हो ??

मानव जब स्तर से गिर जाए घर होता हैं फिर नर्क तुल्य ।
पत्नियाँ सुखी होंगी कैसे पति देव जहाँ व्यभिचारी हो ??

शासक हो कहो सुखी कैसे हो प्रजा जहाँ पर उच्छृंखल ।
वह प्रजा सुखी होगी कैसे राजा जब अत्याचारी हो ??

जनता का काम सरलता से जब नहीं निकलने पाता है ।
हो जाता न्याय बहुत महँगा जब घूँसखोर अधिकारी हो ??

मन में न जहाँ हो राष्ट्र प्रेम फिर देश भक्ति क्यों व्यापेगी ।
वस्तु में मेल करने वाले सब भ्रष्ट जहाँ व्यापारी हो ??

आस्तिकता कहो "मिश्र" कैसे फिर वहाँ पनपने पाएगी ।
पापों का भय न रहे मन में धन के ही जहाँ पुजारी हों ??

मैं मदिरा हूँ नहीं पिये तक,
मुझ से लोग घृणा करते हैं।
गले लगाया जहाँ मुझे,
आसक्त हुए मुझ पर मरते हैं ॥

मैं मदिरा हूँ सकल विश्व में, निसंकोच शासन करती हूँ।
जो करते विरोध है मेरा कभी न मैं उनसे डरती हूँ ॥
मैं मदिरा हूँ मतावलंवी निन्दा करते हैं सब मेरी।
किन्तु अधिक उनके अनुयायी पीने में करते कब देरी ॥
मैं मदिरा हूँ पहले पहले पीते तब सब ही डरते हैं ॥ १ ॥

मैं मदिरा हूँ मेरे द्वारा अर्थोपार्जन जब होता है।
सभी राष्ट्रों का सच समझो कार्य पूर्ण ही तब होता है ॥
मैं मदिरा हूँ सभी विरोधी हार गये हैं मेरे आगे ॥
शस्त्र डाल मैदान छोड़ कर भाग गये हैं कई अभागे ॥
मैं मदिरा हूँ मेरे द्वारा द्रव्य कमा कर घर भरते हैं ॥ २ ॥

मैं मदिरा हूँ पूर्वकाल से सब जन अपनाते आए हैं।
कुछ विरोध अपवाद रूप में कुछ जन दिखलाते आए हैं ॥
मैं मदिरा हूँ काली माई भैरों आदि देवताओं ने।
अपनाया है और साथ ही सभी राष्ट्र के नेताओं ने ॥
मैं मदिरा हूँ मुझको पीकर सुख पाकर सब ही चरते हैं ॥ ३ ॥

मैं मदिरा हूँ गाँधी जी ने मेरा कर अपमान दिखाया।
पर उनके शिष्यों ने सत्ता पाकर फिर मुझको अपनाया।
मैं मदिरा हूँ मुरारजी ने फिर से मुझ पर शस्त्र सम्हाला।
"मिश्र" देखना है यह अब तो आगे क्या है होने वाला ॥
मैं मदिरा हूँ भारतवासी अब किस ओर पाँव धरते हैं ॥ ४ ॥

मैं हूँ मूर्ख मूर्खता में ही मैं,
तो सब कुछ पा लेता हूँ ।
बीत जाय जैसा भी जीवन,
उसमें ही हर्षा लेता हूँ ।।

मैं हूँ मूर्ख—नहीं है कोई मुझसे बढ़कर सुखी जगत में ।
बुद्धिमान कहलाने वाले रहते प्रायः दुखी जगत में ।।
मैं हूँ मूर्ख अनादर आदर का करता कुछ ध्यान नहीं मैं ।
होता है अपमान मान क्या इसका रखता ज्ञान नहीं मैं ।।
मैं हूँ मूर्ख सुखी इस ही से सब कुछ बात पचा लेता हूँ ।।

मैं हूँ मूर्ख सदा ही मैं तो बस निश्चिंत रहा करता हूँ ।
कुछ भी कहदे चाहे कोई सब कुछ सदा सहा करता हूँ ।।
मैं हूँ मूर्ख काम जो चाहे सबने सदा कराया मुझ से ।
सत्य जानिये झूठ नहीं है सबने लाभ उठाया मुझ से ।।
मैं हूँ मूर्ख सभी स्थितियों में अपना मन बहला लेता हूँ ।।

मैं हूँ मूर्ख गालियाँ सुन कर भी मैं तो लड़ता न किसी से ।
रखता हूँ सम दृष्टि सभी पर, है प्रसन्न सब लोग इसी से ।।
मैं हूँ मूर्ख किसी की कुछ भी बाते सुनकर हँस देता हूँ ।
किसी काम को भी करने में कमर तुरत ही कस लेता हूँ ।।
मैं हूँ मूर्ख जहाँ जो कुछ भी मिल जाने पर खा लेता हूँ ।।

बात सत्य है कहीं कहीं अभिशाप मूर्खता बन जाती है ।
किन्तु नहीं यह भी असत्य है लाभ "मिश्र" को पहुँचाती है ।।
मूर्ख और तत्वज्ञानी जन सुख से नित रहते आए हैं ।
अधर बीच में रहने वाले दुख सुख दोनों भी पाए हैं ।।
मैं हूँ मूर्ख सदा ही मैं अपने मन को समझा लेता हूँ ।।

मैं नास्तिक हूँ ईश्वर की तो,
सत्ता अस्वीकार मुझे है।
मानवता से नैतिकता से,
रहता आया प्यार मुझे है ॥

मैं नास्तिक हूँ तुम आस्तिक हो समाधान कुछ कर दिखला दो।
आस्तिक बनकर लाभ उठाया क्या क्या यह मुझको समझा दो ॥
मैं नास्तिक हूँ और आस्तिक जब तुम अपने को कहते हो।
ईश्वर को प्रत्यक्ष जान क्या पापों से बच कर रहते हो ॥
मैं नास्तिक हूं निश्चय समझो पर पसंद सुविचार मुझे है ॥ १ ॥

मैं नास्तिक हूँ भाँति तुम्हारी, ईश्वर का ले नाम जगत में।
धोखा नहीं दिया करता हूँ बुरे न करता काम जगत में ॥
मैं नास्तिक हूँ भोग चढ़ाने जीवों का बलिदान न करता।
ईश्वर का ले नाम पाप से अपना पापी पेट न भरता ॥
मैं नास्तिक हूं पर सबसे ही करना सद्व्यवहार मुझे है ॥ २ ॥

मैं नास्तिक हूँ किसी बात पर मैं न कभी झगड़ा करता हूँ।
आस्तिक आस्तिक तुम लड़ते ज्यों मैं तो नहीं लड़ा करता हूँ।
मैं नास्तिक हूँ बात बुद्धि में आए उसे मान चलता हूँ।
जो जैसा है उसको वैसा कह कर सत्य जान चलता हूँ ॥
मैं नास्तिक हूं सच्चाई से कभी न रहता खार मुझे है ॥ ३ ॥

मैं नास्तिक हूँ आस्तिक जन मुझ को अपशब्द कहा करते हैं।
अपने दुर्गुण दूर न कर के आस्तिक बने रहा करते हैं ॥
मैं नास्तिक हूँ तो क्या मुझको जीने का अधिकार नहीं है।
आस्तिक होकर "मिश्र" करे ऐसा क्या दुर्व्यवहार नहीं है ॥
मैं नास्तिक हूं किंतु तुम्हारे से न मिला कुछ सार मुझे है ॥ ४ ॥

१५१

मैं हूँ व्यसन बने जो आदी
फिर वे छोड़ नहीं सकते हैं।
फँसते जो मेरे पंजे में
फिर वे दौड़ नहीं सकते है ॥

मैं हूँ व्यसन जीतना मुझको नहीं असम्भव किंतु कठिन है।
अपनाने के बाद किसी को चैन न मिलता मेरे बिन है ॥
मैं हूँ व्यसन दूर जो रहते पहले से न मुझे अपनाते ।
वे ही बच रह सकते केवल, केवल वे ही हैं सुख पाते ॥
मैं हूँ व्यसन फँसे पर बन्धन कोई तोड़ नहीं सकते हैं ॥ १ ॥

मैं हूँ व्यसन मुझे दुर्बल भी और न मुझको छोटा समझो ।
मेरा व्यर्थ न करो समर्थन मुझे बहुत ही खोटा समझो ॥
मैं हूँ व्यसन शत्रु मानव का हानि सदा पहुँचाता हूँ मैं ।
करवाता हूँ सदा व्यर्थ व्यय दुर्बलता ले आता हूँ मैं ॥
मैं हूँ व्यसन मुझे अपनाकर धन को जोड़ नहीं सकते हैं ॥ २ ॥

मैं हूँ व्यसन निरसता में भी रस का भान करा देता हूँ ।
टेव लगे पर विष में भी मैं रस का पान करा देता हूँ ॥
मैं हूँ व्यसन समर्थन मेरा व्यसनी फिर करने लगता है ।
बुरा भला अपना न सोंच कर मुझ पर ही मरने लगता है ॥
मैं हूँ व्यसन लिपटने पर मुख मुझ से मोड़ नहीं सकते हैं ॥ ३ ॥

मैं हूँ व्यसन साधु सन्तों के रहकर पास बना लेता हूँ ।
सच समझो अपने प्रभाव से सब को दास बना लेता हूँ ॥
मैं हूँ व्यसन समझ लो मेरे द्वारा वह अन्धेर मचा है ।
सच समझो अपवाद रूप में ही बस केवल "मिश्र" बचा है ॥
मैं हूँ व्यसन बने जो मेरा भण्डा फोड़ नहीं सकते हैं ॥ ४ ॥

किसी व्यक्ति को पशु कह दें तो,
वह सम्मान समझ लेगा क्या ?
जो अपने से नीचा स्तर है,
ऊँचा स्थान समझ लेगा क्या ??

गौ जैसे उत्तम पशु को यदि दे कुतिया का स्थान बिठा दें।
स्थान स्यार का एक सिंह को दे उल्टा सीधा समझा दें॥
दिग्विजयी योद्धा का मानो मान करे पर खटमल कहकर।
तनिक तर्क से सोंचो बोलो सह लेगा क्या वह चुप रहकर॥
जो वास्तविक पतन हैं उसको वह उत्थान समझ लेगा क्या॥ १ ॥

गंगा के पवित्र जल को, ला गन्दे नाले में भर देना।
मधुर कंठ वाली कोयल को कर्कश कौवे का स्वर देना।
कव्वे का दे स्थान हंस को फिर कहना सम्मान है तेरा।
बुरा न मानो हंस आप यह शुद्ध हृदय का भाव है मेरा॥
इस प्रकार कहने से वह व्यक्तित्व महान समझ लेगा क्या॥ २ ॥

रे मानव तुझको यदि बंदर कहा जाय तो अच्छा है क्या ?
तुझे मूर्ख कहता हो उसका भाव हृदय का सच्चा है क्या ??
सूरज को जुगनू कहने से क्या सूरज का मान बढ़ेगा ?
सूरज की अपेक्षा क्या ? जुगनू ही ऊपर नहीं चढ़ेगा॥
विद्या सागर कहे मूर्ख को तो विद्वान समझ लेगा क्या॥ ३ ॥

तुच्छ और अल्पज्ञ "मिश्र" को सर्वेश्वर का स्थान दिया है।
शूकर सिंह बनाकर वानर तू ने यह सम्मान दिया है॥
जड़ प्रतिमा को ईश्वर कह कर तूने उसकी पूजा की है।
रख विपरीत भावना, उसको—ईश्वर की संज्ञा दे दी है॥
जो चैतन्य नहीं है अपने को भगवान समझ लेगा क्या॥ ४ ॥

१५३

कोई हमें बता दे जग में,
बिना वृक्ष के होता फल है।
होता है कह दें कोई तो ?
समझो उसका कोरा छल है ।।

फल लगता है सदा वृक्ष को ईश्वर का यह अटल नियम है।
सभी जानते बात सत्य है, इसमें भी क्या कोई भ्रम है ।।
कार्य किये पर ही निश्चित है उसका फिर परिणाम निकलता।
मानव के आधीन कर्म है, किन्तु नहीं आधीन सफलता ।।
फल आधीन सदा ईश्वर के रहता है यह बात अटल है ।। १ ।।

निश्चित निर्णय पाया हमने बिना वृक्ष फल कभी न होता।
इसी बात को रखकर आगे कहना है कुछ सुनिये श्रोता !
मातृ उदर से बालक प्रकटा लेकर भाग्य साथ में आया।
कर्म किया किस समय कहाँ पर किन कर्मों का यह फल पाया ।।
वृक्ष बिना फल लगा कहाँ यह ? पक्ष यहाँ पड़ता निर्बल है ।। २ ।।

पुनर्जन्म को नहीं मानते उनसे यह है प्रश्न हमारा।
कहो ? कहीं देखा है तुमने ? समुद्र का एक ही किनारा ।।
आज किये उन कर्मों का जब फल ईश्वर निश्चित ही देगा।
बिन फल जन्म मिला बालक को न्याय हुआ यह कौन कहेगा ।।
पूर्व जन्म को पुनर्जन्म को मान चले तो होता हल है ।। ३ ।।

वर्तमान का जन्म कह रहा पहले था होगा आगे भी।
होगा सो तो होगा ही हम चाहे कितने ही भागें भी ।।
यह अनादि है अमर आत्मा बार बार आता जाता है।
करता जो जो कर्म निरन्तर उसका फल निश्चित पाता है ।।
यह धरती ही "मिश्र" समझ लो जीवों के रहने का घर है ।। ४ ।।

ईश्वर देता दण्ड उसी में,
छिपी दया भी छिपा न्याय है।

दण्ड दिये पर मनुज दुबारा पाप कर्म करते डरता है।
भय न दण्ड का हो तो फिर वह निर्भय बना पाप करता है।
यह ही उसकी दयालुता है देकर दण्ड सुधार कर रहा ॥
पाप कर्म से हमें बचा कर सत्यार्थों में प्यार कर रहा।
न्याय दया के साथ दण्ड दे करता जीवों की सहाय है ॥ १ ॥

दण्ड रूप आकृतियाँ पाकर जो मन में दुख पा न रहा है।
पशु पक्षी दुर्बल व असुन्दर होकर भी पछता न रहा है ॥
जीने की है चाह सभी को—न्याय दया यह साथ साथ है।
देख रहे प्रत्यक्ष आप यह क्या बतलाओ झूठ बात है ?
करता है सन्तोष क्योंकि यह जीव विवश है निर उपाय है ॥ २ ॥

धनी लोग धन की मस्ती में, मस्त रहा करते जैसे ही।
निर्धन भी धन के अभाव में, मस्त रहा करते वैसे ही ॥
शासक नेता सत्ता पाकर मस्ती में घूमा करते हैं।
श्रमिक सदा श्रम करके वे भी मस्त हुए झूमा करते हैं ॥
काम चलाते है सब अपना जिस का जितनी रहो आय है ॥ ३ ॥

ईश्वर द्वारा दण्ड मिले पर बैठे आप विलाप न कीजे।
यह ही पश्चाताप है सच्चा पुनः पुनः वह पाप न कीजे ॥
क्षमा नहीं करने में ही है जीवों का कल्याण समझिये।
दण्ड मिले पर ही जीवों का होता नवनिर्माण समझिये ॥
इसीलिए यह "मिश्र" आपको देता अच्छी सही राय है ॥ ४ ॥

प्रभु की रचना और नियम,
जीवों के लिए लाभकारी है ।
सभी बुद्धि संगत है एवं,
सब में छिपी समझदारी है ।।

सद उपयोग करे यदि मानव, सब बातों का सब प्रकार से ।
हानि कभी भी हो न सकेगी, काम करे यदि सद् विचार से ।।
स्वार्थ सिद्ध अपनी करने में, अन्यों का अनहित न करे तो ।
लाभ सभी को मिल सकता है यदि कुविचार नहीं उभरे तो ।।
संयम में रहने लग जाए जितने जग के नर नारी हैं ।। १ ।।

इन बातों को सुन श्रद्धा से, हाँ तो भरता है यह मानव
किन्तु क्रिया में कार्य सभी कुछ उल्टा करता है यह मानव ।।
पाता है तब करणी का फल, कष्ट उठाना पड़ता इसको ।।
कष्ट उठाते हुए बताओ अब यह कहने जाए किसको ।।
जग को दुख सागर कहता है करता भूल स्वयं भारी है ।। ३ ।।

दुख सागर कहने वाले क्यों, जीने की इच्छा रखते हैं ।
हर्षित होकर क्यों वे खाने पीने की इच्छा रखते हैं ।
सुख सागर इस जग को कहिये, यह तो स्पष्ट हमारा मत है '
मरना नहीं चाहते क्यों वे जब दुख का भंडार जगत है ।।
दुख सागर से क्यों ना करते मर जाने की तैयारी है ।। ३ ।।

और कहो ! मर जाने पर फिर स्थान कौन सा कहाँ मिलेगा ।
जहाँ मिलेगा स्थान, यहाँ के जैसा दुःख न वहाँ मिलेगा ।।
क्या विश्वास दिला सकते हो, तुम जैसा चाहे कर लोगे ?
यदि न कर सके तो बतलाओ क्या फिर दोष "मिश्र" को दो गे ।।
ईश्वर की महिमा महान है मानव की लीला न्यारी है ।। ४ ।।

भाव हृदय के वाणी द्वारा;
समझाना भी एक कला है।
भाव दबा कर कृत्रिम अभिनय,
दिखलाना भी एक कला है ।।

शब्द शब्द से वाक्य बनाना वाक्य वाक्य से कड़ी जोड़ना।
अर्ध विराम विराम कहाँ पर लेना रुकना कहाँ तोड़ना ।।
तार टूटने पर भाषण का भावों को किस भाँति मोड़ना ।।
जितना समय मिले उतने में विषय अधूरा नहीं छोड़ना ।।
रोना कहाँ ? कहाँ पर हँसना ? यह आना भी एक कला है ।। १ ।।

ओज पूर्ण शब्दों में कहना वाक्य ठीक रखना चुन चुन कर।
जनता सब गद् गद् हो जाएँ धुआँधार भाषण को सुन कर ।।
ऐसा वातावरण बनाना सुनने वाले ऊब न जाए।
अपितु और उत्साहित होकर मन भाषण सुनने लग जाए ।।
आकर्षित कर के जनता को बहकाना भी एक कला है ।। २ ।।

मूड़ बदलकर झट जनता का ले जाना कल्पना लोक में।
हो जाए तल्लीन सभी जन कभी हर्ष में कभी शोक में ।।
ऐसा समां बाँधना जिससे सब आश्चर्य चकित रह जाए।
वाणी के प्रभाव में जनता बेसुध होकर के बह जाए ।।
इस प्रकार से श्रोताओं पर छा जाना भी एक कला है ।। ३ ।।

विद्वत्ता कितनी भी हो पर जिसे न कुछ कहना आता है।
विद्वत्ता के रहने पर भी काम अधूरा रह जाता है ।।
साधारण सा पढा लिखा हो किन्तु बोलना जिसको आता।
पूछ सदा ही होती उसकी जनता का नेता बन जाता ।।
चतुराई से व्यवहारिकता दर्शाना भी एक कला है ।। ४ ।।

बार बार सुनने में आती वे,
वातें घर कर जाती है ।।
अनुचित हो या उचित भावना,
वही मनो में भर जाती है ।।

एक बार जो बात पकड़ता उसे छोड़ना नहीं चाहता ।
झूठी हो या सत्य किन्तु सम्बन्ध तोड़ना नहीं चाहता ।।
इस दुर्बलता ने मानव को सत्य समझिये घेर रखा है ।
फँस कर नहीं निकलने पाता ऐसा कर अँधेर रखा है ।
मानव की चैतन्य शक्तियाँ धीरे-धीरे मर जाती हैं ।। १ ।।

आत्म निरिक्षण कौन करेगा, नहीं सत्य की चाह जहाँ हो ।।
करूँ सत्य को ग्रहण, सदा ही रहा न यह उत्साह जहाँ हो ।
जो जैसे संस्कार पड़ गये उनका करता सदा समर्थन ।
वही सत्य है वही तथ्य है समझ विताता अपना जीवन ।।
छान बीन करना न चाहता जनता कहाँ किधर जाती है ।। २ ।।

आज सहस्त्रों ही मत जग में अपना अपना राग सुनाते ।
खींच तान कर वाग्जाल के द्वारा ज्यों त्यों कर समझाते ।।
लोग बहुत से तो ऐसे हैं झगड़े में पड़ना न चाहते ?
सत्य बात को भी पाकर वे झूठों से लड़ना न चाहते ।
वहुत मत के आगे साधारण जनता प्रायः डर जाती है ।। ३ ।।

सत्यकंट का कीर्ण मार्ग है इस पर चलना महा कठिन है ।
वलशाली भी चलने पाते कभी नहीं दृढता के बिन है ।।
इतनी कौन ? तपस्या कर कर सत्य मार्ग को अपनाएगा ।
एक ओर रह निरा अकेला जीवन कहाँ बिता पाएगा ।।
इसीलिए तो "मिश्र" सचाई लौट स्वयं के घर जाती है ।। ४ ।।

विश्व विजेता समझो उसको,
जीत लिया जिसने है मन को।
मन पर अंकुश रखने वाला,
धन्य बना लेता जीवन को ॥

बड़े बड़े योद्धा इस जग में विजयी बन झण्डे लहराते।
बड़े अकड़ कर शिर ऊँचा कर नहीं किसी से झुकने पाते ॥
वही विजेता अपने मन पर तनिक नहीं अधिकार कर पाते ॥
मन की इन कुभावनों का कभी नहीं प्रतिकार कर सके ॥
सदा मृत्यु से लड़ने वाले छोड़ न पाए रे व्यसन पको ॥

सरल नहीं है इस जग में हाँ धन वैभव सत्ता का पाना।
इन सबसे भी अधिक कठिन है इस मन पर अधिकार जमाना ॥
बड़े बड़े पंडित ज्ञानी भी इसके आगे हार गये हैं ॥
धाक जमाने वाले जग पर वे भी हो लाचार गये हैं ॥
वे भी नर सत्कार योग्य हैं शुद्ध रखें जो अपने तन को ॥

मन को जीत लिया तो मानव फाँसी पर चढ़ जा सकता है।
जग भर के संकट सहकर वह आगे को बढ़ जा सकता है ॥
मानो ! यदि गिर गया मनोबल ? विष्फल है फिर जीवन उसका ॥
आशा कौन बँधा सकता है जब प्रतिकूल हुआ मन उसका ॥
मन जब हार मान लेता है कौन उठा सकता गर्दन को ॥

बँधन और मोक्ष का कारण इस मन को ही बतलाया है।
इस मन को ही इस शरीर का संचालक भी दर्शाया है ॥
मन के हारे हार सदा है मन के जीते जीत सदा है।
मन से ही निर्भय रहता है मन से ही भयभीत सदा है ॥
"मिश्र" समस्या यह विचित्र है रोको इसके पागल पन को ॥

मानव सब हो जाते समान तो,
चल सकता संसार नहीं ॥

बल में विद्या में वैभव में मानो समान सब हो जाते ।
ये विविध भाँति के कार्य सभी जो भी हो रहे न हो पाते ।
फिर बात किसी की कोई भी सुनता न सुनाने को आते ।
मानव सब हो जाते समान कर काम कौन फिर दिखलाते ॥
अनुमान लगाकर देखो क्या ? रुक जाते कारोबार नहीं ॥ १ ॥

तू भी राजा मैं भी राजा रहता फिर कौन दीन दानी ?
मिलता फिर कहाँ ? कर्मचारी हो जाती बड़ी परेशानी ।
तू भी रानी मैं भी रानी यह भी रानी वह भी रानी ।
फिर झाड़ू कहो कौन देती ? क्या भरती ये घर का पानी ॥
आपस में एक दूसरे का करता कोई सत्कार नहीं ॥ २ ॥

धनवान हीन विद्वान अपढ़ रहना है यह अभिशाप नहीं ।
छोटे धन्धों का करना भी कहलाता है कुछ पाप नहीं ॥
हो जाएँ मानव सब समान उन्नति का है यह माप नहीं ।
हाँ ऐसा काम अवश्य करें हो जिससे पश्चाताप नहीं ॥
हो यथा योग्य व्यवहार किसी से करना दुर्व्यवहार नहीं ॥ ३ ॥

बन एक दूसरे के साथी सब कामों को प्रोत्साहन दो ।
जो काम किसी से लेना हो—लो—बदले में उसको धन दो ॥
जो दीन अपाहिज हैं उनका सहयोग करो औ जीवन दो ।
मानवता से मत दूर रहो शुभ कामों में अपना मन दो ॥
मानव की आकृति पाए हो तुम तजो "मिश्र" सुविचार नहीं ॥ ४ ॥

१६०

नैतिकता का हो अभाव तो,
सारे ही निर्माण व्यर्थ है ॥

सारी उन्नतियाँ शरीर है नैतिकता को प्राण समझिये ।
नैतिकता के बिना न होता है दुःखों का त्राण समझिये ॥
आत्मोन्नति बिन ज्यों शरीर का होना ही उत्थान व्यर्थ है ॥ १ ॥

बाँधे सड़कें भव्य भवन सब बन जाना भी बुरा नहीं है ।
विद्या पढ़ विद्वान कहाना द्रव्य कमाना बुरा नहीं है ॥
किन्तु मनुज में मानवता बिन सारा ही अभिमान व्यर्थ है ॥ २ ॥

नैतिकता जिनमें रहती है पाप नहीं कर पाते हैं वे ।
धोखा देकर झूठ बोलकर रिश्वत कभी न खाते हैं वे ॥
नैतिकता खो कर ईश्वर का सुनो ! लगाना ध्यान व्यर्थ है ॥ ३ ॥

यदि निर्धन है फिर भी उसमें नैतिकता का ध्यान रहा हो ।
अपने शुभ कर्तव्यों को जो ठीक ठीक पहचान रहा हो ॥
उसके सम्मुख शूर वीर बलवान व्यर्थ, धनवान व्यर्थ है ॥ ४ ॥

नैतिकता का जिन लोगों में महत्वपूर्ण आधार रहा हो ।
जीव मात्र से जिनके मन में स्नेह रहा हो प्यार रहा हो ॥
ऐसों के अतिरिक्त "मिश्र" का गाना ही गुणगान व्यर्थ है ॥ ५ ॥

बुरे व्यक्ति सम्मानित होंगे,
वहाँ बुराई क्यों जाएगी ।
सज्जन दुतकारे जाएँगे,
तब सज्जनता क्यों आएगी ।।

विद्वानों का मान जहाँ पर धूर्त लोग पाया करते हैं ।
मनु ने कहा वहाँ संकट के बादल ही छाया करते हैं ।।
क्योंकि धूर्त जो होंगे वे तो सदा धूर्तता फैलाएँगे ।
इनका बहुमत हो जाने पर सज्जन स्थान कहाँ पाएँगे ।।
सज्जनता रोएगी फिर तो दुर्जनता ही हर्षाएगी ।। १ ।।

आज देश की स्थिति ऐसी है दुर्जनता को स्थान मिल रहा ।
गुणवानों की परख नहीं है—गुण्डों को सम्मान मिल रहा ।।
गुरुड़म बढ़ा जा रहा ऐसा जिसका रुकना कठिन हो गया ।
धूर्तजनों का सज्जनता के आगे झुकना कठिन हो गया ।।
ऐसी स्थिति में सत्य न्याय की बात किसी को क्यों भाएगी ।। २ ।।

सज्जनता को प्रथम परखिये सत्पुरुषों की छान कीजिये ।
तस्कर धूर्त कौन है इसकी ठीक ठीक पहचान कीजिये ।।
फिर इसके पश्चात सभी से यथा योग्य व्यवहार कीजिये ।
दुर्जन को दुत्कार दीजिये सज्जन का सत्कार कीजिये ।।
ऐसा करने से सज्जनता धीरे-धीरे आ पाएगी ।। ३ ।।

बुरा बुरे को समझेंगे तो, कुछ भी नहीं बुराई होगी ।
अपितु समझ लो "मिश्र" देश की अपनी सदा भलाई होगी ।।
जो जैसा है उसको वैसा ही सच है समझा जाएगा ।
मानवता पनपेगी तब ही मानव मन में हर्षाएगा ।।
ऐसा होगा कब ? जब जनता इसी नीति को अपनाएगी ।। ४ ।।

सामान्य अवस्था में जो पाप कहाता ।
स्थिति के बदले पर वही धर्म बन जाता ।।

साधारण समय न हिंसा करना चहिमे ।
पर युद्ध काल में कभी न डरना चहिये ।।
जो आत्मघात करते है वहुत वुरा है ।
पर रण में तो निर्भय हो मरना चहिये ।।
अपने सुत को बलिदान कराती माता ।। १ ।।

मानव से मानव घृणा न करना चहिये ।
नित प्रेम भाव जनता में भरना चहियें ।।
बन आतताई जव देशद्रोहि आता हो ।
उसके प्रति मन में घृणा उभरना चहिये ।।
मानव न जिसे हैं एक समय अपनाता ।। २ ।।

व्यवहार झूठ का कभी न करना चहिये ।
सद् भाव सदा अपने में भरना चहिये ।।
लेना प्रतिशोध जहाँ हो दुष्टजनों से ।
ऐसे अवसर पर कभी न डरना चहिये ।।
है बुरा व्यक्ति वह जो कि सत्य छिटकाता ।। ३ ।।

कव करें कौन सा कार्य समझता जो है ।
सच्चे अर्थों में बुद्धिमान ही वो है ।।
जो "मिश्र" धर्म रक्षार्थ नीति पर चलता ।
अधिकार जगत में जीने का उसको है ।।
जो एक समय है कार्य न मन को भाता ।। ४ ।।

१६३

ऐसा कभी समय आएगा ?

एक मनुष्य दूसरे से वह मित्र समझ कर प्यार करेगा।
झूठ कपट औ द्वेष त्याग सबसे उत्तम व्यवहार करेगा ।।
मेल मिलावट से हटकर वह सच्चा ही व्यापार करेगा।
धर्म अर्थ औ काम मोक्ष का लक्ष बना संसार करेगा।
सात्विकता के साथ परिश्रम करके सदा कमा खाएगा ।।

वस्तु किसी की मिल जाने पर जिसकी उसको पहुँचाएगा।
लोभ लाभ का हो जाने पर अपने मन को समझाएगा ।।
सत्य सत्य निर्णय करने में कभी न मन में भय खाएगा।
अपने वालों को अपना कर पक्षपात न दर्शाएगा ।।
ईश्वर का भय मन में रखकर नहीं पाप करने जाएगा ।।

प्रसन्नता के साथ राष्ट्र को "कर" देंगे सारे व्यापारी।
राष्ट्रीयता मन में रख कर नहीं करेंगे वे गद्दारी ।।
छोटे बड़े कर्मचारी गण को ना होगी रिश्वत प्यारी।
नैतिकता पर अनुशासन पर जाएँगे सहृदय बलिहारी ।।
मेरा राष्ट्र राष्ट्र का मैं हूँ ऐसा कभी समझ पाएगा ।।

सदाचार सद्भाव सादगी, को ही देगा स्थान सदा ही।
महिलाओं के लिए मनों में रक्खेगा सम्मान सदा ही ।।
पाप करे पर दण्ड मिलेगा, सिर पर है भगवान सदा ही।
प्राणीमात्र सभी अपने हैं होगा ऐसा ध्यान सदा ही ।।
"मिश्र" त्याग करके आडम्बर शुद्ध भाव मन में लाएगा ।।

व्यक्ति कोई हो चाहे बुरे से बुरा।
पर रहेगी तनिक तो भलाई ।।
औ भलों में रहेगी बुराई ।

पूर्ण रूपेण अच्छा बुरा तो । यदि मिले आपको तो बता दो ।
बात संभव कहीं, मिल सकेगी नहीं ।।
पूर्णता तो न देगी दिखाई ।। १ ।।

जिस किसी में भलाई अधिक हो । जिस किसी में बुराई अधिक हो ।
वह बुरा वह भला यों कहाता चला ।।
वास्तविकता है हमने बताई ।। २ ।।

यदि भलापन बढ़ाते रहोगे । तो भले तुम कहाते रहोगे ।
यश मिलेगा तुम्हें, जग कहेगा तुम्हें ।।
तुम भले हो करो यह भलाई ।। ३ ।।

काम कर जायगा इस जगत में । नाम कर जायगा इस जगत में ।
'मिश्र" मर कर अमर छायगा विश्व पर ।।
कीर्ति उसकी रहेगी सदा ही ।। ४ ।।

मानव जीवन पाने पर भी,
तू जीवन ज्योति जगा न सका।
उस जीवन से क्या लाभ रहा,
जब आत्मौन्नति कर पा न सका ।।

आयु को बिता डाला यों ही इस जग के झूठे झगड़ों में।
सम्मार्ग दिखाई देने पर भी उस पर से तू जान न सका।
मानव जीवन पाने पर भी ।।

दिखलायें दोष सभी के पर अपने ना दोष निकाल सका।
अन्यों को समझाने वाले तू अपने को समझा न सका ।।
मानव जीवन पाने पर भी।

यह ही जो दशा रही तेरी, कैसे होगा उत्थान बता।
अवनति का मार्ग बदलने में, तू सफल अरे हो जा न सका ।।
मानव जीवन पाने पर भी।

सच्चरित्र बिना मानव में क्या देवत्व कभी आ सकता है।
कैसे होगा उद्धार बता मन के कुविचार दबा न सका ।।
मानव जीवन पाने पर भी।

दृढ़ रहकर सत्पथ पर चल कर दिखला न सका तू जीवन में।
क्या मूल्य रहेगा फिर तेरा देकर के वचन निभा न सका ।।
मानव जीवन पाने पर भी।

तू शब्द जाल की रचनाएँ करता, देता है भाषण पर।
होगी न प्रशंसा तेरी यदि अपने को आप बना न सका ।।
मानव जीवन पाने पर भी।

पर्दा अपनी निर्बलता पर कब तक के डाल रक्खेगा तू।
कुछ लाभ न होगा अपने को दोषों से "मिश्र" बचा न सका ।।
मानव जीवन पाने पर भी।

राजदण्ड की दुर्बलता से
भ्रष्टाचार बढ़ा करता हैं।
बन आती है दुष्ट जनों की
हा हा कार बढ़ा करता है ।।

दुष्ट दुराचारी शासन में फिरते हैं स्वछन्द जहाँ पर।
घूंस आदि खाते निर्भय हो चलते है निर्द्वन्द जहाँ पर ।।
गप शप में सब समय विताते काम नहीं करते हैं पूरा।
कौन पूछनेवाला इनको रह जाए यदि काम अधूरा ।।
अकर्मण्यता बढ़ती ऐसे जग पर भार बढ़ा करता है ।। १ ।।

व्यापारी भी मेल मिलावट करने में न कभी डरते हैं।
अनुचित उचित बने जैसे ही वे तो बस संग्रह करते हैं ।।
चोरी करना झूठ बोलना धोखा देना द्रव्य कमाना।
कर्मचारियों को दे रिश्वत बने जहाँ तक टेक्स बचाना ।।
नर्म नीति हो जब शासन की दुर्व्यवहार बढ़ा करता है ।। २ ।।

नैतिकता का अनुशासन का हो जाता जब ह्रास समझिये ।
उच्छृंखलता का प्रतिदिन जब होता खूब विकास समझिये ।।
ऐसी स्थिति में मानवता का रह पाता अभ्यास नहीं है।
एक दूसरे का आपस में रहता फिर विश्वास नहीं है ।।
ऐसे वातावरणों में काला बाजार बढ़ा करता है ।। ३ ।।

यही शासकों की निर्बलता अवनति का कारण बनती है ।
ठीक समझिये "मिश्र" देश की दुर्गति का कारण बनती है ।।
होता फिर महान परिवर्तन परमेश्वर का नियम यही है।
रख लीजे यह आप ध्यान में सत्य बात थी वही कही है ।।
इति होती पापों की अति से जग पर भार बढ़ा करता है ।। ४ ।।

महापुरुष जो रहते वे तो
उत्तम वातावरण बनाते ।
साधारण जन जैसा वातावरण
रहा वैसे बन जाते ।।

अपने जीवन में जैसा भी अनुभव किया बताते हैं हम ।
कई बार विपरीत दिशा की ओर चले क्यों जाते हैं हम ।।
नेता स्वयं बहक जब जाते तब सब चक्कर खाते हैं हम ।
भला बुरा कुछ भी न सोचते गीत उन्हीं के गाते हैं हम ।।
किधर और किसलिये जा रहे नहीं समझ में हम कुछ लाते ।। १ ।।

पराधीनता में थे तब तक नेताओं ने हमें सँभाला ।
भारतीय संस्कृति में एवं सदाचार में हमको ढाला ।।
स्वतन्त्रता के बाद पश्चिमी किया सभ्यता ने घोटाला ।
भूल गये सब अपने पन को लगा दिया वाणी को ताला ।।
नेता कहलाने वाले ही उल्टा ही हमको समझाते ।। २ ।।

भाषा बदली भूषा बदली बदल गये मस्तिष्क हमारे ।
वातावरण देश का बदला अब तो हमको कौन सुधारे ।।
सत्य अहिंसा हवा हो गई फिरते केवल खद्दर धारे ।
गाय कट रही आज देश में किसके आगे कौन पुकारे ।।
गो वध के होने पर कोई आज नहीं है बुरा बताते ।। ३ ।।

अत्याचार मिटा भारत से भ्रष्टाचार घुसा घर घर में ।
बचना कठिन हो गया इससे दुर्व्यवहार घुसा घर घर में ।।
मदिरा पीकर मस्त बन रहें माँसाहार घुसा घर घर में ।
दुर्व्यसनों की हाड़ लग गई हा हा कार घुसा घर घर में ।।
"मिश्र" करो कुछ भी धन जोड़ो दृष्य देखने में ये आते ।। ४ ।।

जब जग में भ्रष्टाचार हुआ करता है।
समझो अशान्त संसार हुआ करता है।।

जब अधिक मनुज फँसता है भौतिकता में।
जब अधिक लोभ छा जाता है जनता में।।
मरता है जब नर विषयों की ममता में।
जब नहीं समझता क्षमता में समता में।।
पशुओं जैसा व्यवहार हुआ करता है।। १ ।।

मानव जब दानवता को अपनाता है।
कर्तव्य आदि कर्म को भूल जाता है।।
अत्यन्त स्वार्थ सबके मन पर छाता है।
छोटे पर प्रति दिन सदा जुल्म ढाता है।।
सद्भावों का प्रतिकार हुआ करता है।। २ ।।

मानव होकर जब न्याय नीति खोता है।
फिर पापों के बीजों को वो बोता है।।
कर के कुकर्म पहले प्रसन्न होता है।
पापों का फल मिलने पर फिर रोता है।।
जग का उल्टा व्यापार हुआ करता है।। ३ ।।

फिर अनावृष्टि अति हुआ करती है।
आपत्ति नहीं फिर टाले से टलती है।।
होते रहते हैं युद्ध प्रजा मरती है।
इस पर भी जनता ध्यान नहीं धरती है।।
यों "मिश्र" पाप का भार हुआ करता है।। ४ ।।

१६५

या तो भ्रष्टाचार मिटाकर,
परिवर्तन लाना होगा ॥
या इस अत्याचारी जग को,
जग से मिट जाना होगा ॥

एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से करे स्नेह पूर्वक व्यवहार ।
झूठ कपट धोखे बाजी का करे न कोई कारोबार ॥
घी मे तेल तेल में करके मेल न हो ऐसा व्यपार ।
न्याय नीति से सदा काम लें बन्द हो यह काला बाजार ॥
संयम रख कर अपने मन पर विजय तुम्हें पाना होगा ॥ १ ॥

धन की तृष्णा पद लोलुपता हुई आज सीमा से पार ।
त्यागवाद का नाम नहीं है संग्रह में समझा है सार ॥
हुआ वायु मंडल ही उल्टा बने सभी धरती पर भार ।
एक-एक का शत्रु बन गया, सुखी रहे कैसे संसार ॥
दानवता तज कर या तो मानवता में आना होगा ॥ २ ॥

धर्म हीन भौतिकता जग में सर्वनाश का कारण है ।
और धर्म का ढोंग नहीं कर सकता कष्ट निवारण है ॥
जो वास्तविक धर्म है उसको करना पड़ता धारण है ।
और धर्म को ठीक समझना बात नहीं साधारण है ॥
स्वार्थ परायणता का यह सिद्धान्त न अपनाना होगा ॥ ३ ॥

आवश्यकताएँ न बढाकर रखो सदा ही सादापन ।
मानवता के ढाँचे में ढल उच्चकोटि का हो जीवन ॥
औरों के हित जीना सीखो करो देश हित अर्पण तन ।
रहो समझते मन में, है यह मेरा नहीं देश का धन ॥
'मिश्र" यही आदर्श बनाकर मन को समझाना होगा ॥ ४ ॥

अत्याचारीका अन्तिम दिन आता है
तब चार गुणा वह जग पर छा जाता है ।

है यह नैसर्गिक नियम अटल यह जानो ।
है छिपा हुआ जो भी रहस्य पहचानो ॥
बुझने वाला दीपक है खूब भड़कता ।
क्रम चला आ रहा सत्य इसे है मानो ।
दुर्बल पर अत्याचार प्रबल ढाता है ॥ १ ॥

वह न्याय नीति को नहीं स्थान देता है ।
सत्पुरुषों को भी नहीं मान देता है ॥
उल्टी ही सुझा करती है उस नर को ।
समझाने पर भी नहीं ध्यान देता है ॥
दुर्जन दुष्टों की बातें अपनाता है ॥ २ ॥

उसको विनाश की ओर क्योंकि जाना है ।
पापों का फल पाना है पछताना है ॥
हैं पुण्य पूर्व के सफल हो रहा उनसे ।
इन पापों का फल भविष्य में पाना है ॥
उसकी सुनता जो इसको बहकाता है ॥ ३ ॥

है अटल नियम निश्चित ईश्वर का मानो ।
ऐसों का होता सर्वनाश है जानो ॥
यह "मिश्र" जानता है अत्याचारी भी ।
फिर भी करता क्यों जुल्म इसे पहचानो ॥
चाहता सँभलना पर न सँभल पाता है ॥ ४ ॥

निर्भय रहे निरन्तर निशि दिन
है, वह व्यक्ति महान समझिये ।।
रहे प्रसन्न सदा ही उसको,
ईश्वर का वरदान समझिये ।

संकट का नित करे सामना, नहीं भीरुता को आने दें ।
स्वाभिमान की रक्षा में यदि सब कुछ जाता हो जाने दें ।।
सब कुछ खोकर भी है जिसने निभा लिया यदि आन समझिये ।

ईश्वर का है भक्त वही नर हर्ष शोक जिसको समान हो ।
विष समान स्तुति को समझें औ, निन्दा से जिसको न म्लान हो ।।
बस कर्तव्य कर्म पर जिसका, लगा हुआ हो ध्यान समझिये ।।

धन परिवार और सत्ता में रखा नहीं सुख का निवास है ।
दुख को सुख जो समझ रहा है तो सुख उसके सदा पास है ।।
न्याय नीति पर रहा सदा तो है प्रसन्न भगवान समझिये ।

देखा है हमने ऐसों को सुख में भी रोया करते हैं ।
हाय हाय कर परेशान हो व्यर्थ समय खोया करते हैं ।।
कहो कौन सा पद उनको दें ? है पूरे नादान समझिये ।

सब कुछ प्राप्त जिन्हें है फिर भी, कभी नहीं वे पाते सुख है ।
जो मलीन मन रहते उनके रहता दुःख सदा सन्मुख है ।।
"मिश्र" इसे अभिशाप समझ कर पापी की पहचान समझिये ।

धर्म के मर्म को जान शुभ कर्म को–
आचरण शुद्ध कर जब चलोगे।
पाप से तभी तुम टलोगे ॥

सत्य को भी स्वयं मान लोगे। न्याय क्या है उसे जान लोगे।
साधकर स्वार्थ को और परमार्थ को
तुम किसी को कभी ना छलोगे ॥ १ ॥ पाप से ॥

भक्ति के ढोंग से दूर रहकर। तप करोगे सदा कष्ट सहकर।
दूर कर दुर्व्यसन, शुद्ध तन और मन
रख सदा सत्य को जान लोगे ॥ २ ॥ पाप से ॥

आत्मा का महानात्मा का। साथ ही साथ परमात्मा का।
जान कर भेद को पढ़ सदा वेद को
तो है निश्चय कि फूलों फलोगे ॥ ३ ॥ पाप से ॥

जब की समझोगे ससार क्या है ? और आचार व्यवहार क्या है।
ठीक क्रम से सदा यम नियम से सदा।
धर्म से सर्वदा काम लोगे ॥ ४ ॥ पाप से ॥

जीव क्यों इस जगत में है आया ? क्यों विविध योनियों को है पाया।
है छिपा भेद क्या ? कह रहा वेद क्या ?
ज्ञान के चक्षु से देख लोगे ॥ ५ ॥ पाप से ॥

सत्य की खोज करते रहोगे। तो जगत में उभरते रहोगे।
तर्क और ज्ञान को और विज्ञान को।
इन सभी को सदा साथ लोगे ॥ ६ ॥ पाप से ॥

सच है बात बहुत दुष्कर है
मित्र जनों के दोष दिखाना।
बहुत सरल है विरोधियों से
लड़ने को भी झट भिड़ जाना ।।

है अनुभव की बात सभी के सदा देखने में आती है।
दोष मित्र के दिखलाने में वाणी सबकी रुक जाती है ।।
कितना भी निस्वार्थ व्यक्ति हो कितना भी साहसी व्यक्ति हो।
कितना भी महान हो चाहे चाहे जितनी पास शक्ति हो ।।
बहुत कठिन है बहुत कठिन है मित्रों के आगे डट जाना ।।

अन्तरात्मा के विरुद्ध भी दब कर चुप रहना पड़ता है।
और न इच्छा होने पर भी साथ-साथ बहना पड़ता है ।।
विष की घूंटें पी पीकर भी हाँ में हाँ कहना पड़ता है।
अच्छे अच्छों को देखा है यह सब कुछ सहना पड़ता है ।।
हो मन के विरुद्ध भी चाहे पड़े मित्र की बात निभाना ।।

कुछ साधारण दोषों को तो झट दिखलाया जा सकता है।
कुछ दोषों को आड़ किसी की ले समझाया जा सकता है।।
कुछ दोषों को दोष बताकर दोष लगाया जा सकता है।
कुछ होते हैं दोष उन्हें तो नहीं बताया जा सकता हैं ।।
यदि साहस कर बता दिया तो पड़ता उसका मूल्य चुकाना ।।

दोष दिखाना कई समय पर कहलाती अव्यवहारिकता।
बुद्धि निधानों के आग समझी जाती अव्यवहारिकता ।।
अव्यवहारिकता करना भी तो दर्शाती अव्यवहारिकता।
"मिश्र" स्वयं के मन को भी तो कब भाती अव्यवहारिकता ।।
व्यवहारिकता की रक्षा कर, पड़ता है बातें समझाना ।।

काम न होता तो जीवों की
जगमें सृष्टि नहीं हो पाती ।
क्रोध न होता तो जनता भी ?
कभी किसी से क्यों भय खाती ?

मोह न होता तो प्राणी के द्वारा फिर परिवार न पलता ।
लोभ न होता तो संग्रह विन इस मानव का काम न चलता ॥
नहीं ईर्षा होती मन में तो न मनुष्य कभी बढ़ पाता ।
द्वेष न होता तो दुर्जन से वदला कभी लिया ना जाता ॥
घृणा न होती तो बुराइयाँ सारे जग भर में छा जाती ॥ १ ॥

हिंसक के प्रति यदि हिंसा का भाव नहीं मन में ही आता ।
हिंसा फिर इतनी बढ़ जाती कहीं न कोई भी रह पाता ॥
झूठों के सम्मुख सच कह कर कठिनाई में फँस जाना है ।
धोखा देना पाप है पर हाँ महा पाप धोखा खाना है ॥
सन्यासी बन सब का रहना बात नहीं है मन को भाती ॥ २ ॥

नीतिमान इन बातों पर नित प्रतिदिन ध्यान दिया करते है ।
सोच विचार सभी बातों का सद्उपयोग किया करते है ॥
करें कर्म किस समय कौनसा क्या है तथ्य समझ लेते हैं ।
धर्मा धर्म मर्म की बातों पर वे ध्यान सदा देते हैं ॥
अल्प बुद्धि मानव के तो यह नहीं समझ में झट आती है ॥ ३ ॥

कोई कार्य जगत में देखा बुरा नहीं है भला नहीं है ।
किसी कार्य के लिये विना तो काम किसी का चला नहीं है ॥
जिन कामों पर अंकुश रहता 'मिश्र' उन्हें वरदान समझिये ।
अंकुश रहित कार्य हो उनसे होती हानि महान समझिये ॥
अवसर पर है मूल्य सभी का अवसर बिन ना बात सुहाती ॥ ४ ॥

मानव जिसे चाहता उसके दोष नहीं देखा करता है।
उसे प्राप्त करने की केवल रखता मन में तत्परता है॥

भली वस्तु या बुरी वस्तु हो, भली बात या बुरी बात हो।
भला किसी का हो चाहे फिर, या करना विश्वासघात हो॥
इसकी चिन्ता कभी न करता करता अपने हठ को पूरा।
चाहे काम बिगड़ ही जाए चाहे वह रह जाय अधूरा॥
निभे जहाँ पर बने जहाँ तक वह तो उस पर ही मरता है॥

यह भी देखा है हमने तो मन से चाहे मानें फिर भी।
सच यह है ओ मिथ्या यह है, ठीक-ठीक पहचाने फिर भी॥
करने के तो समय करेगा वह ही जो अभ्यास बना है।
अपनी लगी कुटेवों का यह इस प्रकार का दास बना है॥
सदा कुटेवों में रहकर के नित लम्बी आहें भरता है॥

बात बुरी से बुरी ग्रहण जीवन में इसने कर डाला है।
उसके तो विरुद्ध में कुछ भी बात नहीं सुनने वाला है॥
अपितु समर्थन कर उसका फिर सब पर ही छाना चाहेगा।
स्वयं निभाएगा एवं अन्यों को बहकाना चाहेगा॥
कुछ दिन झिझक रखेगा पर फिर निर्भय हो फिर फिर चरता है॥

इसीलिए उत्कर्ष नहीं करने पाता अपने जीवन का।
इसीलिए आचरण नहीं करने पाता है सत्य वचन का॥
इसीलिए है छोड़ न पाता आदी है जिस किसी व्यसन का।
इसीलिए उपदेशों द्वारा नाम न लेता परिवर्तन का॥
औरों का भी औ अपना भी "मिश्र" नहीं संकट हरता है॥

स्वाभिमान रखनेवाले नर–
नहीं दीनता दिखलाएँगे।
कष्ट उठाकर हर्षाएँगे–
हँसते हँसते मर जाएँगे॥

मूल्य नहीं है जीवन का भी स्वाभिमान से बढ़कर जग में।
स्वाभिमान खो देने वाला गिर जाता है चढ़कर जग में॥
स्वाभिमान से जीना जाना उस नर को ही जीता समझो।
स्वाभिमान जब रहा न बाकी पशु सम जीवन बीता समझो॥
स्वाभिमान के रक्षक जो हैं कभी नहीं वे दब पाएँगे॥ १॥

जनता भला बुरा कुछ बोलें उसकी वे परवाह न करते।
करें प्रशंसा लोग जगत के इसकी भी वे चाह न करते॥
चिन्ता रहती उनके मन में स्वाभिमान जाने ना पाए।
मिले मिले, न मिले, न मिले कुछ किन्तु आन जाने ना पाए॥
अपने स्तर से नहीं गिरेंगे अत्याचार नहीं ढाएँगे॥ २॥

सत्पुरुषों के आगे झुकने निशिदिन ही तैयार रहेंगे।
अतिमानी बनकर घमण्ड से कभी न कुछ भी बात कहेंगे॥
दोष किसी के दिखलाने पर संयम पूर्वक सहन करेंगे।
और साथ ही निज सुधार करने को वे–अध्ययन करेंगे॥
जो करनी है बात समय पर वे करके ही दिखलाएँगे॥ ३॥

जैसी स्थिति में भी रहना हो बड़ी शान के साथ रहेंगे।
उस प्रभु की इस वसुन्धरा पर स्वाभिमान के साथ रहेंगे॥
आत्म शान्ति को प्राप्त करेंगे ईश्वर का गुण गान करेंगे।
"मिश्र" ईर्षा रखकर झूठे सुख का कभी न ध्यान करेंगे॥
फटे वस्त्र तन पर पहनेंगे जो मिल जाएगा खाएँगे॥ ४॥

मानव को अपने भविष्य का
पूर्ण ज्ञान यदि हो जाता ।
निश्चय समझें आप न सुख की
नींद कभी सोने पाता ।।

सुख की मधुर स्मृतियों से तो मानव हर्षाता मन में ।
किन्तु ध्यान कष्टों का कर अति ही दुख पाता जीवन में ।।
होता चित्त अशान्त, शान्ति जीवन में मिल पाती न कभी ।
जीवन की दुखमय घटनाओं का हो जाता ध्यान जभी ।।
दु:खों की कर सदा कल्पना रह-रह कर नित घबराता ।। १ ।।

माता पिता पुत्र पत्नी के दु:खों का होता जब ज्ञान ।
किस पर क्या विपदा आएगी जब होता इसका अनुमान ।।
कब कब कौन मरेगा इसका आता मन में जभी विचार ।
घटना घटने से पहले ही घर में मचता हा हा कार ।।
एक दूसरे को आपस में कौन कहो फिर समझाता ।। २ ।।

नहीं जानना हो भविष्य को ईश्वर का समझो वरदान ।
सुखमय जीवन बीत रहा है ईश्वर की है कृपा महान ।।
अनायास आती विपत्तियाँ पहले होता ज्ञान नहीं ।
तब तक तो रहते हैं सुख से होता जब तक भान नहीं ।।
होता इनका ज्ञान पूर्व ही तो रह रहकर भय खाता ।। ३ ।।

यदि न भूलने का स्वभाव भी होता यदि हममें मानो ।
मन अशान्त सागर में गोते सदा लगाता सच जानो ।।
नर्क तुल्य जीवन बन जाता प्रतिदिन मानव पाता क्लेश ।
अपनी भूलों को न भूलता मन से कभी न जाता क्लेश ।।
"मिश्र" सत्य समझो यह मानव जीवन भर ही पछताता ।। ४ ।।

स्वार्थ साधना करिये प्रतिदिन
स्वार्थ विना परमार्थ न होगा ।

हम खा पीकर स्वस्थ रहेंगे, सेवा तव ही कर पाएँगे ।
जीवन देंगे अन्यो को हम यदि हम जी कर दिखलाएँगे ।।
भूखे रहकर दुर्बल बन कर क्या दुखियों का दुःख हरेंगे ?
जीवन क्या देंगे अन्यों को, जीवन बिन जव स्वयं मरेंगे ।
क्या परमार्थ करेंगे जब तक सिद्ध स्वयं से स्वार्थ न होगा ।। १ ।।

वर्षा के जल से तड़ाग जव जल का संग्रह कर लेता है ।
तृषा बुझाता अन्यों की वह प्रथम स्वयं को भर लेता है ।।
तृषा बुझायेगा वह कैसे ? अपना पेट न भर पाया तो ।
अपने को भरकर रखने का स्वार्थं न पूरा कर पाया तो ।।
अर्थ न होगा पास हमारे, तो फिर कभी परार्थ न होगा ।। २ ।।

हम न वनेंगे तो फिर अन्यों को भी नहीं बना पाएँगे ।
अन्यों का भी भला न होगा, हम भी पीछे रह जाएँगे ।।
जला हुआ दीपक ही सबको सच है यह प्रकाश देता है ।
करता है उपकार सभी का अन्धकार को खा लेता है ।।
भला न होगा उदाहरण यह, जीवन में चरितार्थ न होगा ।। ३ ।।

संग्रह करो "मिश्र" संग्रह कर पात्र जहाँ मिल जाए बाँटो ।
सद्गुण धारण करो सदा ही अपने सब दोषों को छाँटो ।।
स्वार्थ सिद्धि की पराकाष्ठा करना निश्चय बुरी बात है ।
लोभी कृपण कहाते इससे जग भी देता नहीं साथ है ।।
केवल संग्रह से तो पूरा, कहने का भावार्थ न होगा ।। ४ ।।

हम उन का सम्मान करेंगे ।
जीव मात्र के बन हित चिंतक
जो सबका-कल्याण करेंगे ।।

अपने हित की कर उपेक्षा अन्यों के हित में रहते हैं ।
करते दूर कष्ट अन्यों के स्वयं कष्ट हँस हँस सहते हैं ।।
ये ही व्यक्ति महा मानव है उनका ही हम ध्यान करेंगे ।

औरों के हित मरना सीखा अपने लिए न जीना जाना ।
अमृत पिलाया अन्यों को तो स्वयं सदा विष पीना जाना ।।
ऐसे मानव देश जाति का क्यों न सदा उत्थान करेंगे ।

किसी देश के किसी जाति के किसी वर्ग के कोई भी हो ।
मानवता से ओत प्रोत हो सज्जन और दूरदर्शी हो ।।
उनको कन्धे पर बैठाकर गर्वित हो अभिमान करेंगे ।

भ्राता माता पिता भगिनिया पुरजन होकर भी दुर्जन हो ।
स्थान हृदय में उन्हें न देंगे दुश्चरित्रजन दूषित मन हो ।।
देंगे स्थान सज्जनों को पर पहले उनकी छान करेंगे ।

सुना दिया उद्देश्य आपको जो हमने स्वीकार किया है ।
सत्य समझिये "मिश्र" हृदय से ऐसा ही व्यवहार किया है ।।
है जीवन अति उत्तम जिनका उनका ही गुण गाण करेंगें ।

१८०

मानव न विवश होता तो
कुछ काम न करने जाता।
जब काम न करने जाता
तब काम न होने पाता ।।

मानव से यही विवशता पुरुषार्थ करवाती है।
पुरुषार्थ नहीं करने पर सब उन्नति रुक जाती है।।
आलसी मनुष्यों का भी आलस्य भगा देती है।
निद्रा लेनेवाले को यह तुरत जगा देती है।।
होता है मनुज विवश तब फिरता है धक्के खाता ।। १ ।।

होती न विवशताएँ तो रुक जाते काम सभी के।
अपनी इच्छा से कोई आते क्यों काम किसी के ।।
इसलिए विवशताओं को तुम मत अभिशाप समझिये।
वरदान समझकर चलिए इनको मत पाप समझिये ।।
होता है श्रमिक विवश तब श्रम द्वारा द्रव्य कमाता ।। २ ।।

धनपति को भी तृष्णाएँ करती है विवश कमाने।
तत्पर होता है वह भी संकट औं कष्ट उठाने ।।
सब साधन होने पर भी बिन रुके है आगे बढ़ना।
होता है विवश तभी तो अपने से आप झगड़ता ।।
आवश्यकताएँ अपनी दिन पर दिन अधिक बढ़ाता ।। ३ ।।

होता है विवश तभी तो सेनापति भी कहता है।
सैनिक दल भी लड़ मरने कटने तत्पर रहता है ।।
प्रत्यक्ष बात यह सच है जो बीत रही सब पर है।
सब काम विवशताओं पर रहते आए निर्भर है ।।
बच रहा "मिश्र" ईश्वर ही वह तो सर्वज्ञ कहाता ।। ४ ।।

जगत में सदा ही बुरा काम करके–
सुयश को कमाना सभी चाहते हैं।
क्षमा माँगकर फिर पापों के फल से–
सदा छूट जाना सभी चाहते हैं ।।

सदा पाप कर और परमात्मा को
सहायक बनाना सभी चाहते हैं।
न पुरुषार्थ करके न नियमों पे चलके–
उस ईश्वर को पाना सभी चाहते हैं।
निडर बन सभी पाप करते हुए भी–
हैं आस्तिक कहाना सभी चाहते हैं ।।

रहे बात झूठी चाहे गप्प ही हो–
उसे तो निभाना सभी चाहते हैं।
सदुपदेश अन्यों को देते हुए भी–
स्वयं को बचाना सभी चाहते हैं।
दिखावे में थोड़ा सरल काम करके–
जगत भर में छाना सभी चाहते हैं।
छले खुद न जाना व अन्यों को छलना–
धनी बन दिखाना सभी चाहते हैं ।।

सदा भूल पर भूल करते हुए भी–
उसे फिर निभाना सभी चाहते हैं।
न दें दान चाहे किसी को कभी भी–
कृपण न कहाना सभी चाहते हैं।
स्वयं कुछ न बनके सभी व्यक्तियों को–
है भाषण सुनाना सभी चाहते हैं।
मनुष्यों की है "मिश्र" माया निराली–
नहीं कष्ट पाना सभी चाहते हैं ।।

सुख शान्ति सदा जो चाहो ।
तो मानवता अपनाओ ॥

सुख दोगे तो सुख पाओगे । दुःख दोगे तो दुख पाओगे ।
जो दोगे सन्मुख पाओगे मत यह बात भुलाओ ॥ १ ॥

कर्म न शुभ जो आप करोगे । जानबूझकर पाप करोगे ।
तो फिर पश्चाताप करोगे । पाप न आप कमाओ ॥ २ ॥

जग में भ्रष्टाचार करोगे । और चोर बाजार करोगे ।
तो फिर हा हा कार करोगे बात समझ यह जाओ ॥ ३ ॥

मात्र स्वार्थ ही सिद्ध न करिये । पाप कर्म कर मत घर भरिये ।
मन में कुछ ईश्वर से डरिये मत अन्धेर मचाओ ॥ ४ ॥

अंकुश रखिये अपने मन पर । अनुशासन हो अपने तन पर ।
ध्यान दीजिए कर्म वचन पर, जीवन को चमकाओ ॥ ५ ॥

ध्यान दीजिए आत्मोन्नति पर । और साथ ही अपनी क्षति पर ।
चलो "मिश्र" की शुभ सम्मति पर, औ सुविचार बसाओ ॥ ६ ॥

जिनमें जीवन होगा वे तो
सब जग पर छाना चाहेंगे ।
अपने मत अपने विचार को
जग में फैलाना चाहेंगे ।।

जीवन में जागृति जिनके है वे सोने पाएँगे कैसे ?
विकसित होना जिनका गुण है चुप होने पाएँगे कैसे ?
कहलाता संघर्ष है जीवन क्यों ना वे संघर्ष करेंगे ।
सुदृढ़ संगठन जिनका होगा वे संघर्ष सहर्ष करेंगे ।।
जहाँ जहाँ पर क्षेत्र मिलेगा वहाँ वहाँ जाना चाहेंगे ।। जिनमें ।।

नैसर्गिक है नियम उसे तो कोई रोक नहीं सकता है ।
बिखरा हुआ समाज कभी ऐसों को टोक नहीं सकता है ।।
यदि कोई रोका टोका भी उनसे कहो रुकेंगे कैसे ।
दुर्बल विरोधियों के आगे रखकर शस्त्र झुकेंगे कैसे ।।
अवसर जब मिलता ही है तो लाभ न क्यों पाना चाहेंगे ।। जिनमें ।।

भारत में इन पादरियों को जब कि खुला मैदान मिला है ।
भोली अपढ़ मिली है जनता इच्छित जिनको स्थान मिला है ।।
शासक भी अनुकूल मिले हैं खूब बढ़ावा देने वाले ।
क्या कर लेंगे थोड़े से जो होंगे भी कहलेने वाले ।।
कुछ लोगों के तिरस्कार से क्या वे घबराना चाहेंगे ।। जिनमें ।।

हमें कहो इस हिन्दू जाति से नहीं उठाया लाभ है किसने ।
निधर्मियों का स्वागत करके नित सम्मान दिया है इसने ।।
है इसके स्वभाव में ऐसा आपस में ये सिर फोड़ेंगे ।
विपक्षियों के सम्मुख सिर को झुका हाथ जोड़े दौड़ेंगे ।।
आलोचना "मिश्र" की सुन चुपकर के बैठाना चाहेंगे ।। जिनमें ।।

समय पड़े पर संग्रह करिये, समय पड़े बलिदान कीजिये ।

समय समय की बात समझिये कब क्या बात चाहिये करना ।
स्वार्थ कहाँ परमार्थ कहाँ पर, जीना कहाँ चाहिये मरना ।।
क्षमा किसे कर, दण्ड किसे दें ? किस पर क्रोध दया हो किस पर।
किसके आगे शीश झुकाएँ देकर ध्यान सोंचिये इस पर ।।
तर्क विवेक बुद्धि के द्वारा इन बातों पर ध्यान कीजिये ।। १ ।।

प्राणों का कुछ मोह न करके बन चट्टान कहाँ डट जाएँ !
और कहाँ वैरी को चकमा देकर झट पीछे हट जाएँ ।।
सत्य कहें हम किसके आगे, झूठ बोल कब काम निकालें ?
तुरत काम हम करें कौन से ? किन किन कामों को हम टालें ।।
कृष्ण विदुर चाणक्य शिवा के जीवन से पहचान कीजिये ।। २ ।।

सीधे रहें सामने किसके और कहाँ टेढ़े बन जाएँ ?
किसके आगे मौन रहें हम ? दे उपदेश किसे समझाएँ ??
कौन व्यक्ति है पात्र दान का, कौन व्यक्ति धिक्कार योग्य है ?
यथा योग्य लें काम बुद्धि से, जो जन जिस व्यवहार योग्य है ।।
जो होवे सम्मान योग्य ही उनका ही सम्मान कीजिये ।। ३ ।।

दुर्जन का सहयोग दिये से सज्जनता का ह्रास समझिये ।
सज्जन का प्रतिकार किये से दुर्जनता का वास समझिये ।।
फल विपरीत मिला करता है करने से विपरीत कर्म के ।
पापी को प्रोत्साहन देना हैं ये लक्षण नहीं धर्म के ।।
"मिश्र" पात्र जैसा हो वैसा उसका निश्चित स्थान कीजिये ।। ४ ।।

.१८१

जो दोगे बदले में लोगे
है यह नियम अटल ईश्वर का ।
कभी न छूटोगे बिन भोगें ॥

सुख दोगे अन्यों को यदि तुम—तो अवश्य सुख तुम्हें मिलेगा ।
दुख दोगे अन्यों को यदि तुम तो अवश्य दुःख तुम्हें मिलेगा ॥
दुख रूपी फल से बचने के लिए कहो तुम कहाँ छुपोगे ॥ १ ॥

दुःख किसी को देने में जो मन में यदि विचारते होते ।
तो इस दुख का फल पाने के समय आप काहे को रोते ।
बिगड़ा नहीं आज भी यदि तुम सत्य तथ्य जो है समझोगे ॥ २ ॥

न्याय नियन्ता कह ईश्वर को, चाहोगे अन्याय कराना ।
दुष्कर्मों के बदले में तुम चाहोगे सुख ही सुख पाना ॥
क्या वह यह अन्याय करेगा भेंट चढ़ा यदि रिश्वत दोगे ॥ ३ ॥

सत्य कहावत है यह जग की जो खोदेगा वही गिरेगा ।
जैसे होंगे कर्म "मिश्र" के वैसा ही वह चक्र फिरेगा ॥
हाथों से करके कुकर्म, फल पाने को किस भाँति बचोगे ॥ ४ ॥

इससे तो यह ही अच्छा है सदा कर्म शुभ करते जाओ ।
और कुकर्मों को करने से सदा सर्वदा डरते जाओ ॥
जीवन करो सार्थक जग में, तो ही कभी न आह भरोगे ॥ ५ ॥

सब को कहो हमें मत बोलो।

सबके दोष दिखाओ निर्भय होकर करो सभी का खंडन।
मेरे मुख से कही हुई बातों का करिये प्रति दिन मंडन ।।
मैं जो कह दूं वही न्याय है मैं जो कह दूं वही सत्य है ।।
मैं जो कह दूं वही उचित है मैं जो कह दूं वही तथ्य है ।।
मेरी कही हुई बातों को न्याय तराजू पर मत तोलो ।। १ ।।

अपने को परिपूर्ण योग्य गुणवान समझ चलता है मानव।
बुद्धि न हो चाहे पर—बुद्धि निधान समझ चलता है मानव ।।
इसका फिर परिणाम भोगना पड़ता है इसको तो निश्चय।
जाता है विपरीत दिशा की ओर है मिलती इसे पराजय ।।
हर कोई कहता मेरे गुण गाओ अवगुण को न टटोलो ।। २ ।।

सद् शिक्षा का अन्यों को उपदेश दिया करता है मानव।
अपने ही वचनों का पालन नहीं किया करता है मानव ।।
कहने का आदी है सुनने को कुछ भी तैयार नहीं है।
स्वयं चाहता वैसा अन्यों से करता व्यवहार नहीं है ।।
सबकी पोल खोलता, कहता पोल हमारी तुम मत खोलो ।। ३ ।।

किसका करें सुधार कहो अब कहो किसी को क्या समझाएं।
लगभग जन सब ही ऐसे है किस को अब सन्मार्ग दिखाएं ।।
सुनना नहीं चाहते करते सबकी आलोचना सभी है।
आत्म निरीक्षण करने को होते न "मिश्र" तैयार कभी है ।।
अपनी आलोचना सुने पर कहते रस में विष मत घोलो ।। ४ ।।

अपने गुण वर्णन करने का,
मानव को अधिकार नहीं है।
करे प्रशंसा अपने मुख से,
यह अच्छा व्यवहार नहीं है ॥

क्या कारण है इसके पीछे ? कर विचार क्या सोचा मन में ?
मैं मैं का परिणाम बुरा क्यों होता है मानव जीवन में ॥
मानव कितना भी महान हो कार्य अकेला कर न सकेगा।
बिना सहायक के धरती पर एक पाँव भी धर न सकेगा ॥
जो कुछ भी है इसी अकेले का ही कारोबार नहीं है ॥ १ ॥

ईश्वर ही है जो कि अकेला, सभी कार्य करते रहता है।
मैंने की धरती की रचना इस प्रकार कहते रहता है ॥
मानव एक अकेला रहकर कभी न कुछ भी कर पाता है।
इसीलिए मैं मैं करने पर मूर्ख घमण्डी कहलाता है ॥
मानव मानव ही है समझो जग का जगदाधार नहीं है ॥ २ ॥

जीवों को ईश्वर के द्वारा यह शरीर जो दिया न जाए।
अपने होने का इसको तो कभी भान न होने पाए।
अपनी सीमा में रहकर ही जो कुछ कर सकता करता है।
किन्तु नहीं सब कुछ कर सकता बिन इच्छा के ही मरता है ॥
इसके वश का रोग नहीं, होता उसका उपचार नहीं है ॥ ३ ॥

इसीलिए अति नम्र भाव से, किसी कार्य के हो जाने पर।
प्रभु की कृपा समझ कर चलना सदा सफलता के पाने पर ॥
है वास्तविक तथ्य भी इसमें रहता है कुछ भाग हमारा।
उस ही सीमा तक के कहना चहिये अपने मुख के द्वारा ॥
क्योंकि "मिश्र" अल्पज्ञ है तू तो सद्गुण का भण्डार नहीं है ॥ ४ ॥

बुरों को बुरा बोलना क्या बुरा है।
ढकी पोल को खोलना क्या बुरा है॥

भलों की बुराई न करना सही है।
गलत बात कहने में डरना सही है॥
सचाई के काँटे में रख कर बताओ।
किसी को कहो तोलना क्या बुरा है॥

नहीं लोक निन्दा का भय जो रहेगा।
बुराई से बचकर मनुज क्यों रहेगा॥
मिले चावलों में के है उन कंकरों को–
बताओ हमें रोलना क्या बुरा है॥

जगत में न होगी बुरों की बुराई।
करेंगे कहो लोग फिर क्यों भलाई॥
भलों को भला कह बुरों को बुरा कह–
सचाई का रंग घोलना क्या बुरा है॥

बिना जाँच के बात कुछ भी न कहना।
सही है यही बात चुपचाप रहना॥
मगर जाँच करने पे सच बात निकले।
उसे बोलिये ढोलना क्या बुरा है॥

लगाना नहीं हाथ की बात कुछ भी।
कहो "मिश्र" मत द्वेष के साथ कुछ भी॥
बुराई का छिलका है चिपका किसी पर।
बताओ उसे छोलना क्या बुरा है॥

प्रजातंत्र की इस पद्धति से,
भ्रष्टाचार न मिट पाएगा।
हुआ न परिवर्तन तो फिर,
काला बाजार न मिट पाएगा ॥

जिस चुनाव में एक व्यक्ति के लाखों रुपिये व्यय होते हैं।
और हजारों करते हैं वे तो समझो कतिपय होते हैं ॥
या तो वे धनपति होते हैं या तो फिर वे ऋण लेते हैं।
समझ लीजिये लिया हुआ ऋण किस प्रकार से वे देते हैं ॥
इस प्रकार अपव्यय होने से दुर्व्यवहार न मिट पाएगा ॥ १ ॥

इतना व्यय करने वाले क्या दान किया है यों समझेंगे ?
घाटे की भरती करना है कहो नहीं वे क्यों समझेंगे ॥
पुनः खड़ा होना, होना है उनको उस चुनाव में भी धन।
हार गये तो क्या गति होगी कैसे क्या बीतेगा जीवन ?
ठेके परमिट में रिश्वत का कारोबार न मिट पाएगा ॥ २ ॥

योग्य पात्र सचरित्र व्यक्ति को अवसर मिलना ही दुष्कर है।
राष्ट्रीयता नैतिकता अब किस पर रह पाए निर्भर है ॥
निश्चित धन से व्यय होता है अधिक, बात प्रत्यक्ष सत्य है।
झूठ बोलकर कम लिखवाते बात नहीं यह तो असत्य है ॥
वातावरण नहीं बदला तो यह व्यापार न मिट पाएगा ॥ ३ ॥

बात सामने यही रहेगी चोरी करो न पकड़े जाओ।
पीछे "मिश्र" पड़ गया कोई, न्यायालय में धक्के खाओ ॥
अब बतलाओ दोष किसे दें बात यही है विचारने की।
अजी योजना बननी चहिये इस पद्धति को सुधारने की ॥
नहीं सुधरने पर जो है वह यह विस्तार न मिट पाएगा ॥ ४ ॥

१९०

सभी चाहते हैं जगत को बदलना,
स्वयं को बदलना नहीं चाहते हैं ।
जगत को चलाना जिधर है उधर को,
स्वयं को चलाना नहीं चाहते हैं ।।

बुराई से जग को बचाने चले हैं ।
सुपथ आप सबको सुझाने चले हैं ।'
बुराई से बचकर स्वयं आप चलकर ।
सचाई में ढलना नहीं चाहते हैं ।।

बुराई बताते हैं नर नारियों की ।
खबर नित्य लेते दुराचारियों की ।।
स्वयं में भरे हैं जो उन दुर्गुणों से ।
स्वयं आप टलना नहीं चाहते हैं ।।

बने देश के भक्त कहते हैं सबसे ।
स्वयं ब्लॉक बाजार करते हैं कब से ।।
हुआ देश स्वाधीन तब से हैं अब तक ।
है इससे निकलना नहीं चाहते हैं ।।

व्यसन से रहो दूर कहते हैं जो भी ।।
स्वयं लिप्त होकर है रहते हैं वो भी ।।
विषय वासना से सदा दूर रहकर ।
स्वयं तो सँभलना नहीं चाहते हैं ।।

कहाँ तक कहो चित्र इन का उतारें ।
कहो "मिश्र" अब कौन इनको सुधारे ।।
छलो मत किसी को स्वयं बोल कर भी ।
किसी को न छलना नहीं चाहते हैं ।।

१९१

अन्य जनों का पाप दीखता,
दिखता अपना पाप नहीं है ।
न्याय पूर्ण निर्णय कर पाता,
यह तो अपना आप नहीं है ।।

ऋण लेकर न इसे देवे तो, यह आश्चर्य किया करता है ।
स्वयं न देता लिया हुआ ऋण, तब ना ध्यान दिया करता है ।।
अपने लिये न्याय चाहेगा, अन्यों पर अन्याय करेगा ।।
अन्यों का सुधार चाहेगा, अपना नहीं उपाय करेगा ।।
पाप स्वयं करता है उसका करता पश्चाताप नहीं है ।। १ ।।

दुर्व्यवहार अन्य के करने पर तो इसे बुरा लगता है ।
अन्यों पर करने पर खुदको, कहिये किसे बुरा लगता है ।।
होगा कहीं एक लाखों में आत्म निरीक्षण करने वाला ।
अपने दोषों पर निर्भय हो ध्यान सदा ही धरने वाला ।।
इस प्रकार करना क्या इसके लिए कहो अभिशाप नहीं है ।। २ ।।

शब्दजाल की रचना करके, अति उत्तम उपदेश सुनाता ।
अपना ही उपदेश कभी ना अपने लिए काम में लाता ।।
हो करके निर्व्यसनी रहना प्रति दिन ही सब को कहना है ।
और वकालत अपने दुर्गुण व्यसनों की करता रहता है ।।
अपना और अन्य का रखता एक तरह का माँप नहीं है ।। ३ ।।

इस मानव के इस स्वभाव पर भी तो कुछ आश्चर्य कीजिये ।
और स्वयं को नैतिकता का "मिश्र" स्वयं उपदेश दीजिये ।
तो ही है कल्याण स्वयं का और दूसरों का भी जानो ।
ऐसा यदि न करोगे तो फिर मात्र आपका ढोंग है जानो ।।
आलोचना अन्य की करना क्या यह व्यर्थ प्रलाप नहीं है ।। ४ ।।

जगत को बदलना अगर चाहते हो।
स्वयं को प्रथम तुम बदल कर बताओ ॥
चलाना सभी को जिधर चाहते हो।
उधर ही स्वयं आप चलकर बताओ ॥

सुपथ अन्य को तो बताना सरल है।
सदुपदेश सब को सुनाना सरल है ॥
जहाँ ढालना चाहते हो सभी को।
उसी में स्वयं आप ढलकर बताओ ॥

बुरे मार्ग पर से हटाना है सबको।
भलाई तुम्हें जब सिखाना है सबको ॥
चलो आप भी फिर भलाई पे डट कर।
बुराई से तुम भी निकल कर बताओ ॥

बुरा मानते हो कुसंगत में जाना।
तथा चाहते हो सभी को बचाना ॥
स्वयं भी न जाकर स्वयं को बचा कर--
कुसंगत से तुम भी है टलकर बताओ ॥

मनुष्यत्व से जब कि गिरना बुरा है।
विषय वासनाओं में घिरना बुरा है ॥
स्वयं भी न गिर कर स्वयं भी न घिर कर।
स्वयं आप पहले सँभल कर बताओ ॥

सफल मानवों का हो जीवन जगत मे।
सभी नेक बन कर बँधे सत्य व्रत में ॥
तुम्हारी यही "मिश्र" यदि चाहना है,।
जीवन स्वयं का सफल कर बताओ ॥

आज देश में दुर्व्यसनों को
अपनाने की होड़ लगी है।
आँख मींच कर बिना रुके
आगे जाने की होड़ लगी है ॥

शारीरिक सुख के सब साधन बने जहाँ तक खूब जुटाओ।
आवश्यकताएँ जितनी भी बढ़ सकती हैं खूब बढ़ाओ ॥
कर उत्पन्न समस्याओं को रहकर उनमें सदा उलझना।
अपरिग्रह सादगी आदि जीवन में सदाचार को तजना ॥
वस्त्रों से तन सजा सभ्य बन दिखलाने की होड लगी है ॥ १ ॥

चाय चुरट सिगरेट सिनेमा जीवन में अति आवश्यक है।
इनकी निन्दा करना अब तो कहलाती झूठी बक बक है ॥
पर पुरुषों के साथ नाचना नारी का अब दोष नहीं है।
इस प्रकार से नाचे के किन दोनों को संतोष नहीं है ॥
मदिरा पीकर माँस और अण्डे खाने की होड़ लगी है ॥ २ ॥

घर का भोजन नहीं सुहाता होटल का आता पसंद है।
यों उल्टा चलने वाला ही कहलाता अब अक्लमंद है ॥
होड़ लगी है अंग्रेजी भाषा भूषा को अपनाने की।
अंग्रेजों के पदचिन्हों पर चल उनके आगे जाने की ॥
स्वाभिमान तज देशभक्ति से हट जाने की होड़ लगी है ॥ ३ ॥

सेवा भाव धार्मिकता का दिन दिन पूर्ण अभाव हो रहा।
स्वार्थ ासधना केवल अपना सब का यही स्वभाव हो रहा ॥
लक्ष्य मात्र रह गया "मिश्र" अब खूब कमाना मौज उड़ाना।
आत्मोन्नति पर ध्यान न देकर एक दूसरे को बहकाना ॥
पराकाष्ठा पर पापों को पहुँचाने की होड़ लगी है ॥ ४ ॥

जिसको धन की इच्छा न रहे,
सर्वोपरि है धनवान वही ।
निर्दोष रहे जीवन जिसका,
है सर्व गुणों की खान वही ।।

मन कर्म वचन के द्वारा जो जन आदर्शों को धार रखें ।
कर सत्य अहिंसा का पालन जो जीव मात्र से प्यार रखे ।।
अनुचित न उठाए लाभ कभी सब शुद्ध रहे जिसके साधन ।
मानव तन पाया है इससे अपने में रक्खे मानव पन ।।
उन्नत होता जिससे जीवन कहलाता है उत्थान वही ।। १ ।।

यम नियमों का पालन करके जो व्यक्ति रहे अनुशासन में ।
दुर्व्यसनों से रह दूर सदा अपशब्द न बोले भाषण में ।।
जो स्वयं न अत्याचार सहे जो स्वयं न अत्याचार करे ।
जो आतताइयों से न दबे सज्जन से सद् व्यवहार करे ।।
ऐसा जिसका आचरण रहे कहलाता बुद्धि निधान वही ।। २ ।।

जो काम क्रोध मद लोभ मोह पर भी अपना अंकुश रक्खे ।
अपने को एवं अपनों को अन्यों को भी जो खुश रक्खे ।।
कर दुरुपयोग न दिखलाए जो बुद्धि ओ शरीर बल का ।
बलवान वही है बल पाकर जो काम न रखे कपट छल का ।।
अपने पर कर अधिकार रखे है राम वही हनुमान वही ।। ३ ।।

सत्पुरुष कहाता "मिश्र" वही करता हो सद् उद्योग सदा ।
तन मन का अपने जीवन का करता हो सद् उपयोग सदा ।।
जो कुछ भी संग्रह करे उसे बन कृपण न धन का दास रहे ।
हो अन्यों को देने तत्पर दातृत्व तदा ही पास रहे ।।
जो पात्र रहे उसको देवे कहलाता है बस दान वही ।। ४ ।।

१९५

कहो देश भक्तों की पहचान क्या है ।
बताओ हमें कर समाधान क्या है ।।

जिन्हें देश की है न धरती सुहाती ।
जिन्हें देश की वस्तु मन को न भाती ।।
जिन्हें देश की ना सुहाती है भाषा ।
हमें हो रही है इसी से निराशा ।।
कहो देश की फिर रही आन क्या है ? ।। १ ।।

सभी स्वार्थ साधन किये जा रहे हैं ।
अंधा धुन्ध घर भरे लिए जा रहे हैं ।।
नहीं देश के साथ है स्नेह इतना ।
निजी स्वार्थ के साथ रखते हैं जितना ।।
कहो देश का फिर रहा स्थान क्या है ? ।। २ ।।

युवक देश का क्या कहो बन रहा है ?
कहो कौन से वेश में तन रहा है ?
बताओ युवतियाँ किधर जा रही है ?
पता है तुम्हें ये जिधर जा रही है ?
कहाता कहो आप अज्ञान क्या है ? ।। ३ ।।

किधर जा रहे हैं हमारे ये नेता ।
समझते स्वयं को है फिर भी विजेता ।।
सही "मिश्र" मस्तिष्क है दास इनका ।
है अंग्रेजियत पर ही विश्वास इनका ।।
इन्होंने रखा देश का मान क्या है ? ।। ४ ।।

तुम्हें पूछता हूँ कुछ बातें,
उन पर देकर ध्यान ।
जिनका उत्तर आप स्वयं,
ही दे लीजे श्रीमान ।।

ध्येय बनाया क्या मानव जीवन का अपने आप ।
छोड़ जाएँगे किन किन बातों की मरने पर छाप ।।
ध्येय पूर्ति कितनी की अब तक रही है कितनी शेष ।
जितनी रही शेष क्या उसके लिए हो रहा क्लेश ।।
किये जा रहे हो क्या उसके लिए प्रयत्न महान ।। १ ।।

किन किन को दे वचन किये हो उन वचनों को भंग ।
जान बूझकर या कारणवश आया नहीं प्रसंग ।।
वचन भंग का होता है क्या मन में पश्चाताप ।
जान बूझ अंजान हो गए हो या अपने आप ।।
क्या अशान्त करता न तुम्हें है उन वचनों का दान ।। २ ।।

किसे नहीं लौटा पाए हो लेकर आप उधार ।
साथ किये कितनों के ऐसा सोचो तो व्यवहार ।।
व्यर्थ सताए तुम कितनों को रख मन में दुर्भाव ।
किन किन की लेजाकर डाले बीच भँवर में नाव ।।
अपनी भूलों का होता है कभी तुम्हें क्या भान ।। ३ ।।

किन किन पर उपकार किये हो मानवता के साथ ।
कितनों को सहायता करने उठे तुम्हारे हाथ ।।
दुखित हृदय कितने हैं तुमको देते आशीर्वाद ।
कितनी सुनी दीन दुखियों की तुमने हैं फरियाद ।।
किस सीमा तक निभा बताई तुमने अपनी आन ।। ४ ।।

एक विशेष प्रश्न है जिसका उत्तर दीजे मित्र ।
रखा सुरक्षित या न वताओ अपना चित्र चरित्र ।।
किन किन व्यसनों को अपनाया किन किन से हो दूर ।
लिये काम के भी हो या तुम वातों के ही शूर ।।
भले कार्य की बुरे कार्य की है कि नहीं पहचान ।। ५ ।।

भले काम को सदा टालने में हो क्या संलग्न ।
और हुआ करते हो क्या तुम बुरे काम में मग्न ।।
दुर्गुण को अपनाने क्या तुम रहते हो तैंयार ।
सद्‌गुण को अपनाने क्या तुम हो जाते लाचार ।।
कहो कहाँ तक श्रेष्ठ विचारों को दे रक्खा स्थान ।। २ ।।

परिवर्तन अपने में लाओ आप धर्म अनुकूल ।
पश्चाताप पड़े करना मत करिये ऐसी भूल ।।
समझदार होकर मत करिये नासमझी का काम ।
क्योंकि पतित होकर हो जाता है मानव वदनाम ।।
किये कर्म का फल तो निश्चय देता है भगवान ।। ७ ।।

दृढ़तापूर्वक निश्चय करलें आओ हम औ आप ।
अपनी इच्छा से न करेंगे जान बूझ कर पाप ।।
आत्म निरीक्षण नित्य करेंगे नहीं बनेंगे ढीठ ।
करके यत्न सदा ही हम देखेंगे अपनी पीठ ।।
पाप किये पर "मिश्र" स्वयं पकड़ेंगे अपना कान ।। ४ ।।

प्रत्येक व्यक्ति अपने को,
मैं हूँ गुणवान समझता है।

गिनते रहता है अपने को सदा बुद्धिमानों में।
चतुर विवेकजनों में एवं सभ्य और दानों में।।
अपने अतिरिक्त सभी को यह तो नादान समझता है।

पापी भी अपने को पापी नहीं मान चलता है।
अपने किये कार्य को वह भी पुण्य जान चलता है।।
फूला न समाता मन में हूँ व्यक्ति महान समझता है।

धन कितना भी पास रहे पर उसे समझता कम है।
अन्यों का धन अधिक समझता और मनाता गम है।।
इस भाँति समझने में ही अपना सम्मान समझता है।

न्याय वही जो मैं कहता हूँ यही समझ चलता है।
इसीलिए इसके कामों में मिलती असफलता है।।
कर काम पतन के उसमें अपना उत्थान समझता है

अपनी कमियों को दोषों को जान नहीं पाता है।।
आने से घमण्ड मन में पहचान नहीं पाता है।।
मैं मैं करने में यह तो अपना कल्याण समझता है।

अपने को जो ठीक समझ ले हानि नहीं हो पाती।
पर विपरीत समझने पर तो हानि तुरत हो जाती।।
"मिश्र" की बात माने पर अपना नुक्सान समझता है।

ईश्वर है परिपूर्ण समझता है परिपूर्ण स्वयम् को।
हम अपूर्ण है, पूर्ण समझना नहीं चाहिये हमको।।
अल्पज्ञ है पर अपना यह सर्वोपरि स्थान समझता है।

कुछ मानव ऐसे होते हैं ।
मुख से सोने दे न किसी को,
स्वयं न वे सुख से सोते हैं ।।

कहते जिन्हें विघ्न संतोषी, परहित से वे पाते दुख हैं ।
जब दुख पाते जग के प्राणी तो ही उनको मिलता सुख है ।।
आग लगाते घर का खाकर अपना सभी समय खोते हैं ।

हर कोई के दोष दिखाना, खूब बनाना और चिढ़ाना ।
एक दूसरे के विरुद्ध जा एक दूसरे को बहकाना ।।
जिनके कारण साधारण जन होकर दुखी सदा रोते हैं ।

भूल सुझाएँ यदि उनकी तो उल्टे वे दुगुने हो जाते ।
बन्दर वाली ठीक कहावत आचरणों में ला दिखलाते ।।
दुर्जन बन कर सबके पथ में काँटे ही काँटे बोते है ।

खल नायक बन जग में जीते, जग को सदा त्रस्त करते हैं ।
जग की सुन्दर स्वस्थ अवस्था को नित अस्त व्यस्त करते हैं ।।
कीचड़ से अपने ही हाथों अपने ही मुख को धोते हैं ।

मानव वर्ष सहस्रों जीता तो,
जग में अशान्ति छा जाती ।
है विश्वास हमारा ऐसा,
सन्तति मानव की दुख पाती ।।

जन संख्या इतनी बढ़ जाती इस धरती पर स्थान न मिलता ।
दुग्ध और फल मूल न मिलते खाने को धन धान न मिलता ।।
तन ढकने को वस्त्र न मिलते आवश्यक सामान न मिलता ।
सौ मंजिल के बनने पर भी रहने एक मकान न मिलता ।।
रोटी वस्त्र मकान हमें दो जनता यों पुकार चिल्लाता ।। १ ।।

बेटे पोते औ पड़पोते, लड़ पोते खड़ पोते होते।
आपस में लड़ नित्य झगड़ते परेशान होकर सब रोते ।।
तेरी मेरी कर आपस में अपना सारा जीवन खोते ।
समझ रहे वरदान जिसे हम किन्तु नहीं फिर सुख से सोते ।।
निकट गये कुछ बात और है बात दूर से ही है भाती ।। २ ।।

मात्र कल्पना करने से तो बात न अनुभव में आती है ।
सुख की मात्र स्मृतियाँ मानव को न कभी सुख पहुंचाती है ।।
ईश्वर रचित सृष्टि में जो जो बातें हमको दिख पाती है ।
उदाहरण प्रत्यक्ष रूप में नैसर्गिकता दर्शाती है ।
अधिक आयु वरदान न बनकर बनकर है अभिशाप दिखाती ।। ३ ।।

इसीलिए तो शरदः शतं के लिए प्रार्थना हम करते हैं ।
साथ साथ हम पराधीन रहकर जीने से भी डरते हैं ।।
अधिक आयु होती उनकी कर प्राणायाम ध्यान धरते है ।
इस जग से अनुराग न रखकर जीकर सुख पूर्वक मरते है ।
"मिश्र" बुरी मत कहो मृत्यु को हम है हर दम के संगाती ।। ४ ।।

जिसको प्यारा यह स्वाभिमान होता है।
वह ही मानव जग में महान होता है।।

इस स्वाभिमान को अपना प्राण समझिये।
इससे ही होता है निर्माण समझिये।।
इस स्वाभिमान को जिसने बिसराया है।
क्या लाभ हुआ यदि मानव तन पाया है।
जिस मानव का इस ओर ध्यान होता है।। १।।

इसकी रक्षा में जो नर मर जाते हैं।
वे नाम अमर बस अपना कर जाते हैं।।
जनता भी ऐसों का ही यश गाती हैं।
उनके जीने मरने पर हर्षाती हैं।
ऐसों का ही गुण सदा गान होता है।। २।।

ऐसों पर ही जातियाँ जिया करती हैं।
कर याद उन्हें आनन्द लिया करती है।।
ऐसों से ही सच्चा विकास होता है।
बिन स्वाभिमान के सदा ह्रास होता है।।
इस स्वाभिमान का जहाँ स्थान होता है।। ३।।

भगवान कृपा हम पर ऐसी कर दीजे।
इन नेताओं में स्वाभिमान भर दीजे।।
ना "मिश्र" सामने अपना ही हित रक्खें।
भारत का ये अभिमान सुरक्षित रक्खें।।
इस स्वाभिमान का जिन्हें भान होता है।। ४।।

उस संकट पर मैं बलिहारी
जीवन ज्योति जगा देता जो
बनकर मानव का हितकारी ।

धीर वीर गंभीर बना कर सहनशीलता ला देता है ।
स्फूर्ति चतुरता सिखला कर के जो आलस्य भगा देता है ॥
और बना देता मानव को राजनीति का प्रमुख खिलारी ॥

ख्याति सुयश जग में फैलाता महापुरुष भी हमें बनाता ।
मर कर मनुज अमर हो जाता जो संकट को गले लगाता ॥
मानव को कर्त्तव्य परायण बना भगा देता लाचारी ॥

त्रेतायुग में जिस संकट ने रामचन्द्र को राम बनाया ।
द्वापर में श्रीकृष्णचन्द्र को दुष्ट दल न घनश्याम बनाया ॥
कलियुग में ऋषि दयानन्द सा प्रकट हुआ देखो ब्रह्मचारी ॥

वीर प्रताप संकटों को सह, कहला गये महान प्रतापी ।
साहस से संकट को सहकर छत्रसाल भी और शिवाजी ॥
धन्य धन्य हो गए जगत में आज कह रही जनता सारी ॥

कभी न आगे बढ़ पाते हैं संकट से घबराने वाले ।
प्रगति नहीं कर पाते हैं वे संकट से भय खाने वाले ॥
"मिश्र" संकटों को सह लेना कहलाता है वह तपधारी ॥

यदि चाहो राष्ट्र महान बने।
यदि चाहो इसका स्थान बने॥

तो पहले आप महान बनो।
बलवान बनो विद्वान बनो॥
तप करो और कुछ त्याग करो।
फिर सर्व गुण की खान बनो॥
सब कुछ बनने से तो पहले–
इस ओर तुम्हारा ध्यान बने॥

बस आप बनोगे जैसे ही, यह राष्ट्र बनेगा वैसे ही।
कोई हो राष्ट्र कहाँ का भी प्रायः बनते हैं ऐसे ही॥
है नियम यही इस दुनिया का सबसे पहले इन्सान बने॥

यदि भ्रष्टाचार करोगे तुम, धन पद के लिए मरोगे तुम।
आहें फिर क्यों न भरोगे तुम, तो राष्ट्र नर्क बन जाएगा॥
तुम इसे बनाने वाले हो, इसलिए गुणों की खान बनो॥

होता है स्वाभिमान जिनमें, रहते हैं प्रबल प्राण जिनमें।
जागृति में लाते जनता को, होता है बल महान जिनमें॥
दासत्व "मिश्र" हो दूर सदा यह बात आपकी आन बने॥

क्या इसी का नाम है स्वाधीनता।
नष्ट होती जा रही प्राचीनता ॥

है नहीं वर्चस्व अपना देश में।
युवक फिरते हैं न अपने वेश में ॥
नित बदलती जा रही है नीतियाँ।
छा रही यूरोप की ही रीतियाँ ॥
क्या कहोगे है नहीं यह दीनता ॥ १ ॥

हो रहा सत्कर्म का नित लोप है।
यह हमारा तो खुला आरोप है ॥
ढंग शिक्षा का नहीं अनुकूल है।
यह बताओ आप किस की भूल है।
दिख रही है क्या नहीं यह हीनता ॥ २ ॥

देश में अँग्रेजीयत है छा रही।
देश की भाषा न बोली जा रही ॥
आँग्ल भाषा राष्ट्रभाषा बन गई।
मुख्य यह ही आज भाषा बन गई ॥
शत्रु भी क्या इस तरह हक छीनता ॥ ३ ॥

जो नहीं अँग्रेज कर दिखला सका।
दासता इतनी न हम पर ढा सका ॥
"मिश्र" कह इन शासकों ने क्या किया।
जो न करना था है कर दिखला दिया ॥
क्या कहो यह है यहीं आधीनता ॥ ४ ॥

पाप नहीं दुष्कर्म कमाना तो,
फिर किसको पाप कहोगे।
पापों को कर बात निभाना,
तो फिर किसको पाप कहोगे ॥

अपनी क्षुधा पूर्ति करने को निशि दिन ही पशु हिन्सा करना।
झूठ कपट कर द्रव्य कमाना प्रति दिन अपने घर को भरना ॥
सदा निरंकुश रहना बनकर अपनी नैतिकता से गिरना।
अन्तरात्मा की हत्या कर कहे हुए वचनों से फिरना ॥
पाप नहीं है पीना खाना तो फिर किसको पाप कहोगे ॥ ३ ॥

सदाचार तज दुराचार में तन्मयता से तत्पर रहना।
पति भक्ता पत्नी की इच्छा रखना स्वयं पाप में बहना ॥
विविध भाँति की बुराइयों को जान बूझकर लिपटा लेना।
शुभ कर्मों को करिये कहकर अन्यों को ही भाषण देना ॥
पाप नहीं यों गाल बजाना तो फिर किसको पाप कहोगे ॥ २ ॥

आस्तिक बन कर नास्तिक जैसे आचरणों को धारण करना।
लोगों को दे कष्ट सदा ही अपने कष्ट निवारण करना ॥
न्याय नियन्ता जगदीश्वर के नियमों को ठुकरा कर चलना।
स्वार्थ सिद्धि की पराकाष्ठा कर अपने को नहीं बदलना ॥
पाप नहीं जग को बहकाना तो फिर किसको पाप कहोगे ॥ ३ ॥

मदिरा आदि नशों के द्वारा बुद्धि भ्रष्ट अपनी कर लेना।
समझाने पर भी न समझना अपितु "मिश्र" को गाली देना ॥
आड़ धर्म की ले कुकर्म यों करना और धर्म है कहना।
पूर्ण तपस्वी समझ स्वयं को बातें व्यर्थ बनाते रहना ॥
पाप नहीं यों मन समझाना तो फिर किसको पाप कहोगे ॥ ४ ॥

वह उन्नति उन्नति ही क्या ?
केवल भौतिक निर्माण जहाँ हो।
नहीं आत्म चिन्तन होता—
केवल शरीर पर ध्यान जहाँ हो ।।

भव्य भवन उत्तम विशालतम मानों बना लिया मानव ने।
विविध भाँति की दिव्य वस्तुएँ लाकर जमा किया मानव ने ।।
सुन्दर रंग ढंग भी सुन्दर सजा लिया है सब साजों से।
और दूर दर्शन व रेडियो गूँज रहा है घर बाजों से ।।
किन्तु भवन में रहने वाला वहाँ न व्यक्ति महान जहाँ हो ।। १ ।।

अति उत्तम विद्यालय खोला जमा किये सारे ही साधन।
लाईट औ बिजली के पंखों पर भी खर्चा मनमाना धन ।।
भाँति भाँति के चित्र लगे हैं टेबिल और कुरसियाँ भी है।
खूब कला कृतियाँ सज्जित है बिछी बहुत सी दरियाँ भी है ।।
इनसे लाभ उठाने वाले यदि न कोई विद्वान वहाँ हो ।। २ ।।

मंदिर और समाज बन गया भाड़ा भी आता है धन भी।
करते हैं दो चार व्यक्ति मिल साप्ताहिक सत्संग भजन भी ।।
पत्रों में विज्ञापन छपता जनता को भ्रम में रखने को।
करते हो तैयार नहीं जो जनता को एवं अपने को ।।
केवल नेतागिरी चलाने की ही जिनकी आन जहाँ हो ।। ३ ।।

नैतिकता से शून्य "मिश्र" अनुशासनवद्ध न लोग जहाँ के।
राष्ट्रीयता से वंचित सज धज कर फिरते लोग वहाँ के
क्या इसको निर्माण कहोगे, क्या इसको उत्थान कहोगे।
स्वाभिमान के साथ कहो क्या हम बन गये महान कहोगे ।।
संस्कृति खोकर, मिले सभ्यता को ही केवल स्थान जहाँ हो ।। ४ ।।

जैसे दुःख तुझे होता है,
जुल्म किसी के ढाने पर ।
वैसे ही अन्यों को होगा,
दुःख दुःख पहुँचाने पर ॥

नोक सुई की चुभ जाती है अनायास जब किसी समय ।
चीख़ मार कर रो देता है—खून जरा सा आने पर ॥

तू पशुओं पर छुरी चलाता, बन कर के निर्दई अरे ।
मन में तेरे दया न आती उनका रक्त बहाने पर ॥

तेरे घर में मौत हुए पर, महिनों रुदन मचाता है ।
शोक नहीं होता है मन में पशुओं के कटवाने पर ॥

जीव अमर है पुनर्जन्म भी होता, हैं विश्वास तुझे ।
श्राद्ध बड़ों का करता है तू मृत्यु दिवस आ जाने पर ॥

हत्या करना पाप नहीं है, तो फिर पाप बता क्या है
धर्म समझ कर, तुला हुआ है तू तो पाप कमाने पर ॥

"मिश्र" मनुष्य योनि पाकर भी करता है शुभ कर्म नहीं ।
हट्टी बन कर नहीं समझता है तू तो समझाने पर ॥

मात्र माँस खाकर ही मानव,
जीवन कभी बिता न सकेगा ।।
कच्चा या उबला हो चाहे,
जीवन भर तो खा न सकेगा ।।

अन्न दुग्ध फल शाक आदि से अपना काम चला सकता है ।
बिना माँस के इन सब से यह जीवन सभी बिता सकता है ।।
नैसर्गिक आहार इसी से मानव का है अन्न मानिये ।
माँस नहीं मानव का भोजन इसी तर्क से सत्य जानिये ।।
पक्ष माँस का लेकर मानव कह कर बात निभा न सकेगा ।। १ ।।

अन्नादिक से रोग नहीं मानव को हो पाएँगे इतने ।
माँस और व्यसनों के द्वारा मानव होंगे रोगी जितने ।।
है विज्ञान साक्षी इसका बात न यह हम ही कहते हैं ।
वैज्ञानिक जन के कहने को हम तो दुहराते रहते है ।।
मात्र वितण्डा करने पर तो हम उनको समझा न सकेंगे ।। २ ।।

माँस नहीं खाने वाले को लगता कुछ भी पाप नहीं है ।
माँस न खाने पर तो होना कुछ भी पश्चाताप नहीं है ।।
माँस न खाने पर कुछ मन में पड़ता नहीं कभी पछताना ।
माँस न खाने से अपराध लगेगा यह न किसी ने माना ।।
माँस न खाने वाला दोषी है कोई बतला न सकेगा ।। ३ ।।

पापों की है पराकाष्ठा किसी जीव की हत्या करना ।
कष्ट वेदना पहुँचाना है जीवों के प्राणों का हरना ।।
और बात हैं हत्या को भी पाप न कह कर पुण्य समझना ।
अपनी पकड़ी बात निभाना और "मिश्र" से व्यर्थ झगड़ना ।।
हो कर के अनजान ढीठ बन सत्य बात को नही परखना ।। ४ ।।

आगे होकर न किसी पर मैं अत्याचार करूँगा ।
आगे होकर न किसी से मैं दुर्व्यवहार करूँगा ।।

आगे होकर न कभी भी मैं मुख से झूठ कहूँगा ।
बन सके जहाँ तक मिथ्या कहने में मौन रहूँगा ।।
सत्य की न्याय की रक्षा करनी हो कभी कहीं पर ।
बोलूँगा सोच समझ कर सच समझो झूठ वहीं पर ।।
सत्य का न चलते चलते यों ही प्रतिकार करूँगा ।। १ ।।

आगे होकर न किसी को मैं कष्ट दिया चाहूँगा ।
हो सके जहाँ तक मैं तो उपकार किया चाहूँगा ।।
हो जाए पाप कभी तो मैं पश्चाताप करूँगा ।
फल पाने पर तत्पर रह मैं प्रभु का जाप करूँगा ।।
कर्तव्य परायण बनने खुद को तैयार करूँगा ।। २ ।।

ईर्षा द्वेष प्रतिस्पर्धा का सद उपयोग करूँगा ।
स्वार्थ के साधने में भी मैं सद उद्योग करूँगा ।।
आगे होकर न किसी को अपशब्द कभी बोलूँगा ।
बिन जाँच किये न किसी की मैं कभी पोल खोलूँगा ।।
निर्णय देने से पहले सच का निर्धार करूँगा ।। ३ ।।

यदि मेरी भूल सुझा दे तो उसे मान मैं लूंगा ।
प्रतिपक्षी की बातों पर सर्वदा ध्यान मैं दूंगा ।।
देखूँगा दोष स्वयं के "मिश्र" को पुनः जाचूँगा ।
आलोचक बनने पहले अपनी पोथी बाचूँगा ।।
यह लक्ष्य सामने रख कर सब कारोबार करूँगा ।। ४ ।।

मानव शब्द सुहाता है पर,
मानवता से प्यार नहीं है।
इसीलिए ही इस मानव का,
होता कभी सुधार नहीं है ।।

राम नाम जपता है मुखसे अपना नाम राम रखता है।
किन्तु राम के आचरणों से कुछ भी नहीं काम रखता है ।।
रावण को तो बुरा बताता पर रहता है रावण बन कर।
कुंभकर्ण सा बना आलसी मेघनाद ज्यों चलता तन कर ।।
अन्तरात्मा की पुकार पर होता खुद तैयार नहीं है ।। १ ।।

दानव असुर और राक्षस यदि कह कर इसे पुकारे कोई।
दुःशासन या दुर्योधन कह इसको यदि ललकारे कोई ।।
नहीं सहन कर पाएगा यह उससे जाकर के झगड़ेगा।
ठीक बात हो चाहे पर यह जूझेगा जा तुरत लड़ेगा ।।
दुर्गुण और दुष्टता से तो खाता मन में खार नहीं है ।। २ ।।

वेश्याएँ भी और कसाई भी खुद को अच्छा बोलेंगे।
समझेंगे परिपूर्ण स्वयं को पोल अन्य की ही खोलेंगे ।।
अत्याचारी भी अपने को अत्याचारी नहीं कहेगा।
कुविचारी भी अपने को तो हूँ कुविचारी नहीं कहेगा ।।
अपने दोषों के प्रति मानव करता कभी विचार नहीं है ।। ३ ।।

सचमुच है आश्चर्य किन्तु यह बात सत्य है सोलह आने।
सब के अनुभव में आती है दूर न जाना है समझाने ।।
यह है मनोवृत्ति सबकी ही, इससे बच न सका है कोई।
"मिश्र" न्याय प्रिय जो भी होगा, इसे ठीक समझेगा वो ही ।।
जो दोषी है उसको शिक्षा देने का अधिकार नहीं है ।। ४ ।।

मुझे अभी मानव मत बोलो ।।

मानव की आकृति पाकर भी मानवता को बिसराया हूँ ।
मानवता के दुर्गम पथ का पथिक न अब तक बन पाया हूँ ।।
साहस कर बढ़ने जाता हूँ किन्तु नहीं बढ़ने पाता हूँ ।
दृढ़तापूर्वक बढ़ने पर भी कइयों बार बिछड़ जाता हूँ ।।
स्पष्ट बात यह कहता हूँ मैं पहले मेरा हृदय टटोलो ।। १ ।।

काम क्रोध मद लोभ मोह में अभी तलक मैं फँसा हुआ हूँ ।
इन्द्रिय लोलुपता के वश हो स्वार्थ सिन्धु में धँसा हुआ हूँ ।।
शुभ कर्मों का ज्ञान मुझे हैं पर शुभ कर्म न जोड़ें जाते ।
बुरा मानता हूँ कुकर्म को पर न इन्हें हैं छोड़े जाते ।।
मुझे व्यर्थ ही बढ़ा चढ़ाकर कांण तराजू में मत तोलो ।। २ ।।

ढोंग बता ऊपर ऊपर ही अपने को कहाता आस्तिक हूँ ।
किन्तु सदा ही आचरणों में बना हुआ पूरा नास्तिक हूँ ।।
उसे सर्व व्यापक कहकर भी हुआ न अब तक दृढ़ निश्चय है ।
पाप कर्म करने में लगता मुझे न उस ईश्वर का भय है ।।
दुर्गुण को भी देखो मेरे केवल गुण ही गुण मत खोलो ।। ३ ।।

मानव मुझको माने पर तो मानवता की दुर्गति होगी ।
उन्नति मेरी नहीं और भी बुरी बात मेरे प्रति होगी ।।
जैसे को वैसा कहते वे हैं यथार्थ में ज्ञानी जग में ।
व्यर्थ प्रशंसा चाहा करते हैं वे तो अतिमानी जग में ।।
"मिश्र" मौन धारण कर बैठो किन्तु नहीं रस में बिष घोलो ।। ४ ।।

सत्य को जानना सत्य को मानना–
सत्य को फिर निभाना कठिन है।
सत्य पर चल दिखाना कठिन है ॥

है कठिन ही सही बात कहना–
है कठिन सत्य सुनना व सहना।
सत्य का अनुकरण सत्य का आचरण।
सत्य समझो बनाना कठिन है ॥ १ ॥

सत्य अत्यन्त कटु है विकट है।
है गरल भी सरल भी निकट है ॥
जानकर सत्य को सत्य के तथ्य को–
ठीक से समझ जाना कठिन है ॥ २ ॥

सत्य हरदम बदलता रहा है।
नीति के साथ चलता रहा है ॥
किस समय कब कहें अब कहें तब कहें ?
सत्य का मार्ग पाना कठिन है ॥ ३ ॥

शत्रु के सामने सत्य कहना।
झूठ कहना कि या मौन रहना ॥
सोच कर बोलिये, तर्क पर तोलिये।
ठीक निर्णय पे आना कठिन है ॥ ४ ॥

एक कहता इसे सत्य मानो।
एक कहता इसे सत्य जानो ॥
सच किसे मानना–सच किसे जानना–
"मिश्र" सच सच बताना कठिन है ॥ ५ ॥

जी मेरा जलने लगता है।

दुष्ट दुराचारी दुर्जन जब पाते हैं सन्मान जगत में।
दंभी पाखंडी जब झूठी बतलाते है शान जगत में॥
नास्तिक है लंपट है वे जब गाते प्रभु गुणगान जगत में।
जनता को धोखा देकर भी पाते ऊँचा स्थान जगत में॥
ऐसे अवसर पर क्या बोलूँ खून अजी खौलने लगता है॥ १॥

संग्रह में तल्लीन हैं रहते बतलाते हैं त्याग जगत में।
बातों के वैरागी व्यसनों से रखते अनुराग जगत में॥
सुख औ शांति चाहता हूँ कह सदा लगाते आग जगत में।
सदाचार की बातें कर विषयों से रखते लाग जगत में॥
ऐसी हालत देख अश्रु जल आँखों से ढलने लगता है॥ २॥

सज्जनता अपनाने पर भी जो जन मान नहीं पाता है।
सेवा के बदले में जब वह यहाँ वहाँ धक्के खाता है॥
पाप कर्म कर के वह पापी उन्नति करता ही जाता है।
ऐसी दशा देख मन मेरा अन्दर अन्दर झुंझलाता है॥
कुछ ही दिन के लिए सही पर पापी जब फलने लगता है॥ ३॥

सती साध्वी पति भक्ता नारियाँ जब कभी दुख पाती हैं।
अत्याचार सहा करती पति द्वारा दुत्कारी जाती हैं॥
दुष्टा, कुल्टा निर्भय होकर इठलाती हैं इतराती हैं।
फिरती है स्वच्छन्द बनी वह कभी न मन में शर्माती हैं॥
यत्न नहीं कुछ कर पाने पर 'मिश्र" हाथ मलने लगता है॥ ४॥

२१३

मुझे घृणा है उनसे जो जन,
पाप भयंकर करते रहते ।।
दुराचार की पराकाष्टा कर,
विषयों पर मरते रहते ।।

मुझे घृणा है, उनसे जो जन, बन कृतघ्न उपकार न माने ।
अपितु और ऊपर से उल्टा तत्पर हो दुर्वचन सुनाने ।।
मुझे घृणा है, बहन बेटियों का धन खाकर जो इतराते ।
बनते है यजमान यज्ञ के तिरुपति जा अभिषेक कराते ।।
मुझे घृणा है, दुस्टजनों से जो दबकर है डरते रहते ।। १ ।।

मुझे घृणा है उनसे, जो जन साधु वेश में धोखा देकर ।
द्रव्य कमाते घर नारी तज, पर नारी को फिरते लेकर ।।
मुझे घृणा है उस नारी से पति को तज, कुकर्म कर लेती ।
सदाचार से वंचित रहकर सदाचार पर भाषण देती ।।
मुझे घृणा है ऐसों के संग रहकर जो हैं चरते रहते ।। २ ।।

मुझे घृणा है दुखियों को, दुख देकर और दुखी करते हैं ।
पाते हुए स्वयं दुःखों को' रो रो कर आहें भरते हैं ।।
मुझे घृणा है, अपने से भी ऐसों का प्रतिकार न करके ।
दब जाता, चुप रह जाता हूँ उनका उचित प्रचार न करके ।।
मुझे घृणा है यत्न न करके आहें ही हैं भरते रहते ।। ३ ।।

मुझे घृणा है उनसे जो जन, अबलाओं पर दया न लाते ।
सच्चरित्रता होने पर भी उनके प्रति नर दया न लाते ।।
अपितु हड़प जाते उनका धन उनको रखते सदा रुलाकर ।
समझ लिया करते अपने को धर्म वीर नेता पद पाकर ।।
मुझे घृणा है "मिश्र" पराये धन को घर में धरते रहते ।। ४ ।।

क्रोध निर्बल पर आता है।
सबल सामने दिखते ही,
झट से दब जाता हैं ॥

मानव ही क्या पशु पक्षी में भी देखी यह बात सदा।
होता सबल वही निर्बल को पहुँचाते आघात सदा ॥
युद्ध नीति भी कहती यह ही, वहीं करो उत्पात सदा।
जहाँ शत्रु दुर्बल पड़ना हो लग जाए कुछ हाथ सदा ॥
हर कोई दबने वालों को नित्य दबाता है ॥ १ ॥

सबल व्यक्ति को अनुचित बातें कहते देखा है हमने।
निर्बल को उसके आगे चुप रहते देखा है हमने ॥
निर्बलता के कारण सब कुछ सहते देखा है हमने।
लोहे को भी पानी बन कर, बहते देखा है हमने ॥
निर्बल नहीं सबल के आगे शीश उठाता है ॥ २ ॥

सबलों के आगे देखा, अन्याय न्याय बन जाता है।
बुद्धिमान मानव भी सम्मुख निर उपाय बन जाता हैं ॥
प्रबल पुत्र के आगे देखा पिता गाय बन जाता है।
शक्ति हीन होने के कारण असहाय बन जाता है ॥
सदा नम्रता पूर्वक धीरे से समझाता है ॥ ३ ॥

कहता हूँ अपवाद छोड़कर, भय खाते देखा सबको।
गुण हीनों के भी हमने है गुण गाते देखा सबको ॥
मन में कुछ हो, बाहर गरदन लटकाते देखा सबको।
बलवानों के आगे हमने, घबराते देखा सबको ॥
दुर्बल मानव "मिश्र" नहीं कुछ कहने पाता है ॥ ४ ॥

मन मेरा प्रसन्न होता है।

सभ्य सुसंस्कृत बन कर मानव, दानवता को बिसराता हैं।
अनुशासन को पालन करके, नैतिकता को अपनाता हैं॥
सज्जन जब सम्मानित होता दुर्जन दुतकारा जाता है।
दण्ड पापियों को जब मिलता, धर्मी सुख पा हर्षाता है॥
भ्रष्टाचारी सब कुछ खोकर, बैठा बैठा जब रोता है॥ १॥

पिता पुत्र भाई भाई, पति पत्नी सब मिलकर रहते हैं।
एक दूसरे से सम्मानित हो कर, कष्टों को सहते है॥
झगड़ा कभी नहीं करते हैं, रखते हैं व्यवहार कुशलता।
त्याग भाव से रहते एवं रखते हैं मन में निश्छलता॥
उच्छृंखल बन एक व्यक्ति भी समय नहीं अपना खोता है॥ २॥

व्यसनों से रह दूर, युवक युवतियाँ ठीक मग पर चलती हैं।
श्रम के द्वारा द्रव्योपार्जन करकें इस जग पर फलती हैं॥
सामाजिक कामों में रुचि रख, अपना समय दिया करते है।
क्षमता के अनुसार जहाँ तक हो—उपकार किया करते हैं॥
सादा सदाचारमय जीवन रख घर में सुख से सोता है॥ ३॥

सभ्य नागरिक बनकर चलता युवक प्रशंसा जब पाता है।
रखता है दातृत्व भावना, कृपण नहीं जब कहलाता है॥
इधर उधर को भटके खाना जिसे पसंद नहीं आता है।
करता है सब काम समय पर बुरे काम से घबराता है॥
'मिश्र" व्यर्थ की झंझट में जो नहीं भार सिर पर ढोता है॥ ४॥

क्रोध मुझे तो तब आता है।

सच्चाई का दावा करके असत्यता को अपनाता है।
अन्तरात्मा के विरुद्ध भी, कहते कभी न सकुचाता है।
नेता बनता है जनता का, गोल फिराकर बहकाता है।
केवल शब्दाडम्बर द्वारा, ढोंग प्रदर्शित कर पाता है।।
व्यर्थ वकालत करके अपनी, सच्चा बनने जब जाता है।। १।।

ईश्वरभक्त स्वयं को कहकर, दुराचार में रत रहता हैं।
दुर्गुण दूर न करके अपने, धर्मवीर हूँ मैं कहता हैं।।
औरों को दुर्वचन सुनाता, स्वयं न कटुता को सहता है।
टिप्पणियाँ अन्यों की करता, स्वयं बुराई में बहता है।।
सर्व गुणों से युक्त स्वयं को, समझभाव जब दर्शाता है।। २।।

अकर्मण्य बन स्वयं अन्य की दिखलाता है जब दुर्बलता।
आशा रखता है अन्यों से, नहीं स्वयं है सीधा चलता।।
धोखा खाना नहीं चाहता, पर अन्यों को निशिदिन छलता।
सुख से स्वयं चाहता रहना, पर सुख देख सदा ही जलता।।
अन्यों के दुर्गुण दिखलाता गुणही गुण अपने गाता है।। ३।।

अन्यों का सर्वस्व हरणकर, कभी न मन में दुख पाएगा।
किंचित हानि स्वयं की होने पर भी मन में झुंझलाएगा।।
पर उपदेशकुशल बन कर के स्वयं न कुछ कर दिखलाएगा।
नहीं समझना खुद चाहेगा, अन्यों को ही समझाएगा।।
"मिश्र" स्वयं भी इस प्रकार ही करके जब यों दिखलाता है।। ४।।

खल नायक ऐसे होते हैं ।
नहीं अन्य को सोने देते,
स्वयं नहीं सुख से सोते हैं ।।

विघ्न उपस्थित किये बिना, सुख शान्ति नहीं उनको मिल पाती ।
छेड़ छाड़ के किये बिना, निद्रा उनकी हराम हो जाती ।।
करते हैं उत्पात तभी, उनको आराम मिला करता है ।।
लोग दुखित होते हैं तब, उनका मुख कमल खिला करता है ।।
होते हैं प्रसन्न तब ही वे साधारण जन जब रोते है ।। १ ।।

वाणी मधुर बोलते मुख से वाग्जाल की करके रचना ।
ऐसे पटु होते हैं आता उनको सब कुछ कह कर वचना ।।
अभिनेता बन अभिनय करना, ढोंगी बनना भी आता है ।
साधारण जन फँस जाता है झट से उनका बन जाता है ।।
देते रहता साथ है उनका अपना सब विवेक खोते है ।। २ ।।

दुर्योधन के पटु शिष्यों में उनको आप जान कर चलिये ।
शीघ्र नहीं पहचाने जाते यह भी बात मान कर चलिये ।।
भीष्म द्रोण औ कर्ण सरीखे, कई उन्हें मिल ही जाते हैं ।
चक्कर में जो फँस जाते हैं, फिर न निकलने वे पाते हैं ।।
साथ गर्व के चमचे बनकर प्रति दिन वे खाते गोते हैं ।। ३ ।।

खल नायक पन करते करते अन्तरात्मा मर जाता है ।
दोष न दिख पाते हैं अपने काम विवेक न कर पाता है ।।
दुर्योधन के प्रतिनिधि हैं ये बात "मिश्र" की मानेंगे क्यों ।
ऐसा होता ही आया है, कहता है इतिहास हमें यों ।।
फल उनका निश्चय पाएँगे, जो ये बीज आज बोते हैं ।। ४ ।।

अर्थ बिना है धर्म व्यर्थसा—
धर्म बिना यह अर्थ व्यर्थ है।

केवल धर्म और धन केवल लाभ नहीं पहुँचा सकते हैं।
इन दोनों के सँग रहने पर सब ही लाभ उठा सकते हैं।।
धर्म आत्मा धन शरीर है इन दोनों का रहे समन्वय।
तो ही मानवता फलती है मानव की होती हैं जयजय।।
अर्थ साथ में रहने पर ही धर्म सदा होता समर्थ है।। १।।

प्रकृति बिना केवल ईश्वर की उपासना से काम न चलता।
भौतिकता बिन आध्यात्मिकता से न कभी भी काम निकलता।।
बुद्धि और बल के मिलने से विजय प्राप्त हो जा सकती है।
इसी भाँति से धर्म अर्थ की तुलनाएँ की जा सकती है।।
मात्र अर्थ के अपनाने पर धर्म बिना होता अनर्थ है।। २।।

प्रथम स्थान दो सदा धर्म को अर्थ दूसरी श्रेणी में हो।
किंतु अर्थ को, व्यर्थ न समझो, साथ-साथ दोनों को रक्खो।।
पति पत्नी के रहने पर ही यह गृहस्थ जीवन बनता है।
धर्म अर्थ के रहने पर ही यह समस्त जीवन बनता है।।
पति है धर्म समझ लो मन में तो पत्नी लो समझ अर्थ है।। ३।।

त्याग धर्म को, आज कर रहे, केवल लोग अर्थ की पूजा।
हानि हो रही, मानवता की, है यह क्योंकि व्यर्थ की पूजा।।
इस पूजा का सत्य समझिये निकलेगा परिणाम भयंकर।
प्रलय मचा देगा निश्चय ही जब रूठेगा वह प्रलंयकर।।
शान्ति रहेगी रखो धर्म को "मिश्र" यही बस एक शर्त है।। ४।।

अरे मानव तुझे उपकार करना आ गया होता ।
प्रजा से जां है प्रभु की प्यार करना आ गया होता ।।

जगत् में हो गया होता, सफल तेरा अरे जीवन ।
प्राप्त दैवत्व कर लेता, न रखता पास दानवपन ।।
कष्ट पाकर, तुझे उपकार करना आ गया होता ।।

मित्र सब बन गये होते, शत्रु रहता न कोई भी ।
भलाई को न तजता तो, बुरा कहाता न कोई भी ।।
सभी के साथ में, सुविचार करना आ गया होता ।।

नहीं परिवार में, संसार में कोई दुखी होता ।
सुखी तू देखकर सब को, अगर तू भी सुखी होता ।।
तुझे संसार में, संसार करना आ गया होता ।।

न कुछ भी आर्थिक संकट, कभी भी देश में आता ।
स्वार्थ सीमा से बाहर यह अगर तेरा न हो जाता ।।
न्याय पूर्वक, उसे व्यापार करना आ गया होता ।।

शत्रु हैं मात्र जीवों का जीवधारी है तू फिर भी ।।
दया की बात करता, बात पर रहता नहीं स्थिर भी ।।
"मिश्र" जीवों से तुझको प्यार करना आ गया होता ।।

हँस कर भोगो रोकर भोगो,
तुम्हें भोगना होगा निश्चय ।
फल कर्मों का बिना मिले तो,
नहीं रहेगा रखो न संशय ।।

अशुभ कर्म करने के अवसर पर यदि तुम मन में भय खाते ।
तो फिर क्यों ईश्वर के द्वारा इस प्रकार से कष्ट उठाते ।।
हर्ष पूर्वक फल को भोगो मन में अपने व्यर्थ डरो मत ।
बुद्धिमान हो तो फिर अपने हाथों वैसे कर्म करो मत ।।
बुरे कर्म करते मत जाओ, करो कर्म शुभ होकर निर्भय ।। १ ।।

सच्चा प्रायश्चित यही है, सच्चा पश्चाताप यही है ।
वर्तमान में ना सँभले तो बन जाता अभिशाप यही है ।।
यदि भविष्य की चिन्ता है तो वर्तमान को दो न बिगड़ने ।
तुम मानव हो इसीलिए तो मत घबराओ आगे बढ़ने ।।
तुम सुधारते रहो उन्हें जो भूलें हो जाती हों कतिपय ।। २ ।।

शुभ कर्मों का शुभ फल दे दे और कुफल से वंचित कर दें ।
यह ईश्वर का नियम नहीं है, झोली में सुख ही सुख भर दें ।।
चाहे क्षमा माँगते जाओ, किन्तु क्षमा करता न कभी है ।।
अपराधी को दण्ड न देकर वह तो दुख हरता न कभी है ।।
न्याय किये बिन कभी न रहता कहलाकर भी वह करुणामय ।। ३ ।।

सन्त महन्त व ऋषि मुनियों को, बड़े बड़े उन सम्राटों को ।
पड़े भोगने भोग सभी को, छोड़ नहीं पाए खाटों को ।।
कम से कम तुम वर्तमान में किसी जीव को तो दुख मत दो ।
भला चाहते हो यदि अपना तो कम से कम यह तो व्रत लो ।।
"मिश्र" कर्म के फल तो निश्चय भोग भोगने से होंगे क्षय ।। ४ ।।

लड़ना नहीं चाहिये हम को,
फिर भी लड़ना आना चहिये ।
भली बुरी प्रत्येक बात का,
ज्ञान हमें हो जाना चहिये ।।

धोखा देना बुरी बात है पर है बुरा धोखा खाना भी ।
हिन्सा करना बुरा–बुरा है बुरी तरह से मर जाना भी ।।
बुरा है अत्याचार–बुरा है अत्याचारों को सहना भी ।
बहुत बुरा है पापी के आगे कायर बन–चुप रहना भी ।।
पापी से निर्भय हो लड़ना–पापों से भय खाना चहिये ।। १ ।।

आना चहिये झूठ बोलना, धोखा देना, चोरी करना ।
किन्तु जहाँ अति आवश्यक हो उससे नीचे नहीं उतरना ।।
और धूर्तता करने का भी रहे ज्ञान भी पूरा पूरा ।
सीखा नहीं विनण्डा करना, वह भी है विद्वान अधूरा ।।
पर उपकार साधने के हित सब कुछ कर दिखलाना चहिये ।। २ ।।

सीधे साधे सरल व्यक्ति से, चल सकता संसार नहीं है ।
अति सुशील को भी तो जग में जीने का अधिकार नहीं है ।।
क्षमा शीलता का भी गुण हो, साथ भावना हो बदले की ।
जैसा पात्र कार्य वैसा हो, वह कहलाती बात भले की ।।
यथा योग्य व्यवहार सभी से करना और कराना चहिये ।। ३ ।।

धर्मराज बनकर जीने से, दुर्योधन जैसे सुख पाते ।
अपना भी अनहित कर लेते और जगत में मूर्ख कहाते ।।
बन कर कृष्ण रहेंगे तो ही, दुष्ट जनों की नहीं चलेगी ।
अत्याचार किया चाहेंगे कभी न उनकी दाल गलेगी ।।
"मिश्र" सज्जनो के प्रति मन में उत्तम भाव बसाना ।। ४ ।।

पाप किया करता हूँ फिर भी–
बने जहाँ तक तो कम से कम ॥
सत्य बात कहता हूँ मेरे प्रति,
मत रखिये कुछ मन में भ्रम ॥

स्थान अधिक से अधिक सत्य को देता हूँ अपने जीवन में ।
कहना पड़ता है असत्य भी चाह न रखने पर भी मन में ॥
कुछ ऐसी घटनाएँ सम्मुख, क्या बतलाऊँ आ जाती है ।
हो जाता हूँ विवश, न गाड़ी आगे को बढने पाती है ॥
अन्तरात्मा कहती है यों बात नहीं है यह तो उत्तम ॥ १ ॥

आस्तिक हूँ मैं किन्तु पूर्णता प्राप्त नहीं कर पाया अब तक ।
यह भी अभी नहीं कह सकता पूर्ण सफल होऊँगा कब तक ॥
उस महान ईश्वर के प्रति तो है विश्वास हृदय में पूरा ।
कही बात मिथ्या न समझिये है मेरा आचरण अधूरा ॥
दुर्बलता हो दूर न पाई. दृढ़ता पूर्वक किया नहीं श्रम ॥ २ ॥

मनीराम के द्वारा कइयों पाप सदा होते रहते हैं ।
धार्मिकता के भाव हृदय में मूर्छित हो सोते रहते हैं ॥
आस्तिकता की झलक मात्र ही कभी कभी बस आ जाती है ।
इसी झलक की कृपा समझिये जो कुछ उन्नति हो पाती है ॥
"मिश्र" पूर्ण होकर बतला दें बहुत कठिन है बनूं योग्यतम ॥ ३ ॥

किसी व्यक्ति के गुण का गाना ।
काम बड़े ही खतरे का है ॥
उसके जो है दोष छुपाना ।
काम बड़े ही खतरे का है ॥

पहले तो उसके दोषों का पता लगाना ही दुष्कर है ।
और पता लगने पर फिर कह कर बतलाना ही दुष्कर है ॥
अप्रिय सत्य, व्यवहार विरोधी बातें कहना भी दुष्कर है ।
ऐसे जन की मात्र प्रशंसा करते रहना भी दुष्कर है ॥
सत्य बात है उसे दबाना काम बड़े ही खतरे का है ॥ १ ॥

अपनी मात्र प्रशंसा सुनने को रहते तैयार सभी जन ।
और प्रशंसक के प्रति मन में रखते आए प्यार सभी जन ॥
उचित दोष किंचित भी कोई बतलादे यदि साहस करके ।
तो फिर निश्चय आप समझलो शत्रु बन गए जीवन भर के ॥
कह कर सत्य शत्रु बन जाना काम बड़े ही खतरे का है ॥ २ ॥

समय पड़े पर कुछ न कहे तो लोग घमंडी कह देते हैं ।
इसीलिए साधारण जन तो मन मसोस कर कह लेते हैं ॥
पर जो कट्टर होते उनको दुविधा में पड़ना पड़ता है ।
अपने ही इस मनीराम से डट कर के लड़ना पड़ता है ॥
मुख न छिपाना आगे आना काम बड़े ही खतरे का है ॥ ३ ॥

"मिश्र" जहाँ तक बने प्रशंसा नहीं व्यर्थ की करना चहिये ।
कर वास्तविक प्रशंसा फिर भी दोष सामने धरना चहिये ॥
यदि साहस इतना न कर सको तो फिर चुप रह जाना चहिये ।
अन्तरात्मा के विरुद्ध तो नहीं सामने आना चहिये ॥
सबको कर प्रसन्न दिखलाना काम बड़े ही खतरे का है ॥ ४ ॥

हो जाना चहिये हमको,
उस संकट पर बलिहारी ।
जिससे उन्नति होती है,
गुण गाती जनता सारी ।।

जिस संकट के सहने से, श्रीराम अमर पद पाए ।
श्री कृष्ण अमर पद पाकर, इस जग में सुयश कमाए ।।
जिस संकट से जीवन में, निर्माण हुआ करता है ।
मानवता विकसित होकर, उत्थान हुआ करता है ।।
जिस संकट के सहने से, सीता बनती सन्नारी ।। १ ।।

लेकर के जन्म जगत में, जो महा पुरुष कहलाए ।
क्या संकट सहे बिना ही, है उत्तम पद वे पाए ।।
प्रख्यात हुए इस जग में, संकट सहने के कारण ।
पूजे वे गये जगत में, संकट को करके धारण।।
ऐसे संकट के हम भी बन जाएं परम पुजारी ।। २ ।।

प्रभु से है यही विनय दें, संकट सहने की क्षमता ।
कर्त्तव्य निभा कर अपना तज दे जीवन की ममता ।।
संकट सहने पर, जिसका जीवन समाप्त होता है ।
पर निश्चय समझो उसको अमरत्व प्राप्त होता है ।।
सम्मान बचे मरने पर वह मृत्यु हमें हो प्यारी ।। ३ ।।

सच है अत्याचारी का जब अंतिम दिन आता है ।
संकट में डाल सभी को, वह चार गुणा छाता है ।।
नैसर्गिक नियम रहा है, तब आता है परिवर्तन ।
संकट सहते हैं, उन्नत होता है, उनका जीवन ।।
मत "मिश्र" कभी घबराओ सम्मति है यही हमारी ।। ४ ।।

आयु मानव की हुआ करती सहस्त्रों वर्ष की ।
सोचिये यह बात क्या अपने लिए थी हर्ष की ।।
हर्ष की मत बोलिये आती कई कठिनाइयाँ ।
झेलनी पड़ती मनुज को नित नई कठिनाइयाँ ।।
पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र फिर तो एक ही परिवार में ।
सइकड़ों होते, समाते वे कहाँ, संसार में ।।

पूर्व जन्मों की सभी बातें सभी के ध्यान में ।
मान लो रहती सदा ही, आपकी पहचान में ।।
लाभ होता, या कि होती हानियाँ पहचानिये ।
आप मन से कल्पना कर, सत्य क्या है जानिये ।।
हानियाँ होती निरन्तर लाभ कुछ होता नहीं ।
व्यक्ति कोई भी, कभी सुख शांति से सोता नहीं ।।

कब सुखी होंगे दुखी का, यदि हमें सब ज्ञान हो ।
कौन सी घटना घटेगी की हमें पहचान हो ।।
तो कहो क्या आप जीवन में कभी सुख पाएँगे ।
है हमारा तो यही कहना कि दुःख उठाएँगे ।।
भूल जाना भी समझिये आप यह वरदान है ।
याद रखना बात वह जिसमें कि हो कल्याण है ।।

एक मानव, दूसरे मानव के मन की जान लें।
सोचते हैं आप जो ? उस बात को पहचान ले॥
हानि होगी या कि होगा लाभ अपना बोलिये।
बुद्धि की रख कर तुला पर बात पहले तोलिये॥
सत्य जानों अधिक होगी हानि होगा लाभ कम।
लाभ होगा सोंचना यह आपका है मात्र भ्रम॥

मानवों में मानसिक उठती हैं जो जो कल्पना।
पूर्ण हो जाती सभी श्रम के बिना, बिन यातना॥
लाभकारी बात थी क्या ? सब मनुष्यों के लिए
बुद्धिमत्ता से तनिक इस बात को भी सोचिये॥
है हमारा तो कथन होती अनेकों हानियाँ।
और बढ़ जाती अनेकों साथ ही हैरानियाँ॥

जन्म लेकर के कहो मानव अगर मरता नहीं।
कल्पना कर बोलिए यदि मृत्यु से डरता नहीं॥
तो कहो क्या जीव सुख से रह कभी पाते यहाँ।
सहन अत्याचार करके सोचिये जाते कहाँ॥
क्या दशा होती यहाँ पर सोचने की बात है।
मृत्यु के होते हुए जब हो रहे उत्पात हैं॥

पाप का फल पा रहे हैं और करते पाप है ।
मन वचन से कर्म से करते न पश्चाताप है ।।
माफ कर देता न देता दण्ड यदि परमात्मा ।
क्या सुधर पाती कभी बतलाइये दुष्टात्मा ।।
कर्म फल देना यही परमात्मा का न्याय है ।
कर्म फल को भोगना ही मात्र एक उपाय है ।।

पूर्व में हम कौन थे इसका हमें रहता पता ।
और था सम्बन्ध किससे जान जाते सर्वथा ।।
तो हमारा लाभ था क्या और हो जाते सुखी ? ।
या बताओ हानि होती और हो जाते दुखी ।।
और हम होते दुखी, यह ही हमें विश्वास है ।
सोचने पर तो हमें यह ही हुआ आभास है ।।

कल्पना के मात्र करने से बने यदि काम सब ।
बिन किये पुरुषार्थ निकले शुभ सदा परिणाम सब ।।
क्या कहो संसार का मानव सुखी बन जायगा ।
जी ! नहीं, अब से अधिक समझो दुखी बन जायगा ।।
कष्ट-पा-पुरुषार्थ करने से है बनते काम जो ।
बात है यह ठीक रखिये दूर ही आराम को ।।

कौन सी घटना घटेगी का हमें यदि ज्ञान हो।
दुःख अथवा सुख मिलेगा की हमें पहचान हो॥
बीतने वाली सभी बातों को यदि हम जान लें।
जान लेने से मिलेगा सुख कहो क्या मान लें॥
और हम होंगे दुखी ही है हमारा मत यही।
सोच लीजें आप भी यह बात निकलेगी सही॥

शत्रु को भी मानते उतना बुरा मत मानिये।
शत्रु से भी लाभ कइयों है उन्हें पहचानिये॥
शत्रु का यदि भय न हो तो आलसी बन जाएँगे।
आप निश्चय जानिये उन्नति न करने पाएँगे॥
मित्र संख्या में बढ़ें यह यत्न करते जाइये।
आप अपनी ओर से तो शत्रुता न बढ़ाइये॥

जो किया करते हैं निन्दा मत बुरा उनको कहो।
अपितु उनका मानने उपकार ही तत्पर रहो॥
ये बचाते हैं हमें दुष्कर्म से यह जानिये।
यदि न भय इनका रहे, होगा पतन यह मानिये॥
योग्य निन्दा के न हमको कर्म करना चाहिये।
रह सजग दुष्कर्म से बचकर विचरना चाहिये॥

आपकी आलोचना करते उन्हें मत रोकिये।
यदि करे अनुचित तभी हाँ शिष्टता से टोकिये॥
सर्वथा आलोचना यदि बन्द ही हो जायगी।
तब कभी भी आपकी उन्नति न होने पायगी॥
इसलिए आलोचना से आप मत घबराइये।
आप अपनी ओर से शुभ कर्म करते जाइये॥

ओ नारी तू पुरुषों का मन,
बहलाने का साधन मत बन ।।

कोलाहल हो पर पुरुषों में, ऐसा श्रृंगार नहीं अच्छा ।
कामुकता उभरे पुरुषों की, ऐसा व्यवहार नहीं अच्छा ।।
पुरुषों की दबी वासनाएँ, भड़काने का साधन मत बन ।।

आत्माभिमान को त्याग न तू, नारीत्व से कर उपहास नहीं ।
मैं दीन हीन हूँ अबला हूँ ऐसा भी कर विश्वास नहीं ।।
ले मान कहा, अपने पद से गिर जाने का साधन मत बन ।।

तू सीता बन तू दुर्गा बन तू झाँसी वाली रानी बन ।
विश्व की नारियों में अनुपम उत्तम तू एक निशानी बन ।।
गौरव को खोकर—लोगों के मन भाने का साधन मत बन ।।

तू बन पूजा के योग्य और अपने गौरव को खो न कभी ।
पश्चिम की साज सजावट पर आसक्त व मोहित हो न कभी ।।
ले मान कहा तू लोगों को बहकाने का साधन मत बन ।।

तू मातृ शक्ति कहलाती है तू महा शक्ति कहलाती है ।
तू नाच रंग में पड़कर क्यों पुरुषों का मन बहलाती है ।।
मानव हृदयों में दुर्बलता ले आने का साधन मत बन ।।

अपमान अन्य के करने पर, तू झुंझलाती है रोती है !
अपने हाथों से क्यों तू यों बतला अपमानित होती है ।।
ले मान "मिश्र" की लोगों को हर्षाने का साधन मत बन ।

२३०

मन धज कर बन ठन कर नारी–
जब बाजारों में चलती है।
आकर्षित होता युवक वर्ग–
बतलाओ किसकी गलती है ।।

साड़ी महीन है रेशमीन जरीन काम चमकीला है।
साड़ी में ढ़का हुआ दिखता, अंगों का सोना पीला है ।।
कुछ महिलाएँ पर्दे में भी बे पर्दे जैसी रहती है।
कुछ बे पर्दे रहती वे भी उस ही प्रभाव में बहती है।
ऐसी इनकी यह बात सभी लोगों के मन में खलती है ।। १ ।।

युवतियाँ कई पश्चिम जैसी भूषा में सजकर आती है।
एक्ट्रस सिनेमा सी बनकर मन में फूली न समाती है ।।
दिखलाती अंगों का उभार, करती पैदा आकर्षण हैं।
अपने स्वरूप का सरे आम करती इस भाँति प्रदर्शन हैं ।।
होठों पर लगा लिपिस्टिक फिर पौडर को मुख पर मलती है ।। २ ।।

पुरुषों की दबी वासनाएँ प्रोत्साहित होती हो जिससे।
मन दृष्टि उठाकर देखो यों बोलें तो अब बोलें किससे ।।
कुछ दोष जहाँ पुरुषों का है तो दोषी हैं महिलाएँ भी।
अपने दोषों को दूर करे तो पुरुषों को समझाएँ भी ।।
क्यों नहीं शीलता और सभ्यता के ढाँचे में ढलती है ।। ३ ।।

है लक्ष न आकर्षण का तो श्रृंगार किया क्यों जाता है।
आवश्यकता से अधिक रूप पर ध्यान दिया क्यों जाता है ।।
समझा दें इसका कोई कुछ उद्देश्य अन्य हो सकता है।
उत्तेजित होएँ पुरुष नहीं ऐसी क्षमता क्या रखता है ।।
श्रृंगार अधिक हो "मिश्र" तभी यह अधिक वासना फलती है ।। ४ ।।

उनका यज्ञ सफल होता है ।
शुद्ध विचार शुद्ध सात्विक ही,
जिनका अन्त स्थल होता है ।।

गोघृत और शुद्ध सामग्री एवं मंत्रोचार शुद्ध हो ।
निर्व्यसनी हो विप्र और यजमान शुद्ध व्यवहार शुद्ध हो ।।
वक्ताओं के श्रोताओं के मन के सदा विचार शुद्ध हो ।
हो आहार शुद्ध सबका ही वस्तु शुद्ध व्यापार शुद्ध हो ।।
दूर जभी सब मल होता है मन तब ही निर्मल होता है ।। १ ।।

सत्य न्याय, कर्तव्य आदि से प्रति दिन हवन कुंड में तपना ।
धीरे धीरे नित्य निरन्तर जीवन बने यज्ञमय अपना ।।
ईश्वर की उपासना करते हुए नाम ईश्वर का जपना ।
तब ही सच होने पाता है सोचा हुआ समझ लो सपना ।।
लगातार अभ्यास हुए पर प्राप्त आत्म, मन बल होता है ।। २ ।।

फल की रखें न चाह करें व्यवहार उसे भी यज्ञ समझिये ।
सदाचार मय हो जो कारोबार उसे भी यज्ञ समझिये ।।
जो अपने से हो जाए उपकार उसे भी यज्ञ समझिये ।
साथ साथ ही अपना करे सुधार उसे भी यज्ञ समझिये ।
उत्तम कार्य हुआ करते जो उनका उत्तम फल होता है ।। ३ ।।

यज्ञ किया करता है प्रतिक्षण जगत नियन्ता जगदीश्वर भी ।
किसी अंश में करते ही हैं यज्ञ जगत के नारी नर भी ।।
यज्ञ शब्द का भाव समझकर ध्यान दीजिये आप इधर भी ।
सभी सुकर्म यज्ञ कहलाते कुछ विचार करिये इस पर भी ।।
यज्ञ भाव से कार्य "मिश्र" सब करने से निश्छल होता है ।। ४ ।।

हवन हमें शिक्षा देता है,
उस पर आप विचार कीजिये ।
प्रति दिन अपना जीवन यापन,
शिक्षा के अनुसार कीजिये ।।

ऊपर उठते हुए जगत में जीवन ज्योति जगाते चलिये ।
होकर स्वयं प्रकाशित अपना यश, सुगन्ध फैलाते चलिये ।।
इदं न मम का अर्थ है यह निस्वार्थ भावना रखते चलिये ।
मात्र स्वार्थ पर ध्यान न देकर शुद्ध कामना रखते चलिये ।।
जीवन बने यज्ञमय, मानवता का नित विस्तार कीजिये ।। १ ।।

उत्तम घृत उत्तम सामग्री, शुद्ध भावना से क्रय करके ।
उत्तम विद्वानों के द्वारा, उत्तमता अपने में भर के ।
पत्नी औ परिवार सहित, सानन्द बैठ कर आहुति डाले ।
जीवों के हित चिन्तक बनकर, जीवन को आदर्श बना लें ।।
अतिथि जनों का स्वागत करके, नित्य शुद्ध आहार कीजिये ।। २ ।।

गोघृत मिलता रहे इसलिए सदा कीजिये गो संवर्धन ।
वेद पाठियों को करिये तैयार वेद का करने गर्जन ।।
सुना करें उपदेश सदा, विद्वानों सत्पुरुषों के द्वारा ।
आत्म शान्ति को प्राप्त करें हम हो जिससे कल्याण हमारा ।।
कमियों दोषों को निकालकर अपना सदा सुधार कीजिये ।। ३ ।।

दुर्व्यसनों से सदा दूर रह करें सदा सद्‌गुण को धारण ।
वैदिक मतानुसार बने सब, वेद मंत्र का कर उच्चारण ।।
यम नियमों को दृढ़तापूर्वक, मन से कर्म वचन से पालें ।
नैतिकता में अनुशासन में "मिश्र" सदा अपने को ढालें ।।
सर्व प्रथम अपना अपने ही मन पर यों अधिकार कीजिये ।। ४ ।।

पूर्ण मनुष्य कहाने को भी,
सारे शुभ संस्कार चाहिये ।
विकसित होने के जो गुण हैं ।
उन सब का भण्डार चाहिये ।।

विद्वत्ता, योग्यता, सरलता, सदाचार एवं चरित्रता ।
आस्तिकता, नैतिकता, दृढ़ता, सहृदयता साथ ही मित्रता ।।
धार्मिकता, नम्रता, और फिर जीव मात्र से प्यार चाहिये ।

शील स्वभाव, कामना उत्तम, दया और दातृत्व, स्फूर्ति भी ।
स्वस्थ्य शरीर, रूप भी सुन्दर, आकृति प्रतिभावान मूर्ति भी ।।
सूझ वूझ की बुद्धि, चतुरता, नीति निपुण व्यवहार चाहिये ।।

दुष्ट दलनता और सत्यता, निर्भयता हो और त्याग भी ।
सहनशीलता क्षमता, समता, अनुशासन, देशानुराग भी ।।
धीर वीर गंभीर साहसी, सद्गुण का अवतार चाहिये ।

"मिश्र" सभी गुण एक मनुज में आ जाना महान जीवन है ।
इनमें से कुछ भी आ जाएँ तो भी वह जग में धन धन है ।।
किन्तु यत्न कर आगे बढने रहना नित तैयार चाहिये ।

इसी को कहते हैं संस्कार ।
छिपे गुणों को विकसित,
करना देना उन्हें उभार ।।

डाल अग्नि में खूब तपा कर करके उसको लाल।
रेती से रगड़ा देकर फिर देते मैल निकाल ।।
आभूषण का रूप उसे दे करते हैं तैयार ।

लोहे को भी डाल अग्नि में किया उसे भी लाल ।
ठोक पीट कर खींच खाँच कर रख दिया तार निकाल ।।
मीठे स्वर निकालता है वह बन सितार का तार ।

लकड़ी लाकर छील छाल कर आरे से फिर काट ।
रूप दे दिया अलमारी का और बन गई खाट ।।
क्या से क्या बन गई ? वस्तुएँ करिये आप विचार ।

भिन्न भिन्न वस्तुएँ जमा कर करते घर निर्माण ।
सुन्दरता उनकी उभार कर पाते दुख से त्राण ।।
उस घर को उद्यान बनाकर करते हैं घर बार ।

बालक तथा बालिकाओं को शिक्षित कर आचार्य ।
करवाता है उन सबसे ही प्रति दिन उत्तम कार्य ।।
विद्या का दे दान सिखाता करना सद् व्यवहार ,

मानव महा पुरुष बन जाता, रहे "मिश्र" के संग ।
दुर्व्यसनों से बचें सदा ही बिगड़ न पाए ढंग ।।
आत्म निरीक्षण करे सदा ही अपना करें सुधार ।।

बालकों के लिए क्यों ?
उपनयन संस्कार करना है।
योग्यतम व्यक्ति बनने को,
इन्हें तैयार करना है ॥

मातृ ऋण, पितृ ऋण, ऋषि ऋण चुकाने के लिए इनको।
सुविद्या से, सुशोभित कर बनाने के लिए इनको ॥
सिखाना है इन्हें संसार में संसार करना है ॥

सत्य का आचरण करके चाहिये किस तरह रहना।
सिखाना है हमें इनको, चाहिए जिस तरह रहना ॥
इन्द्रियों पर इन्हें किस भाँति से अधिकार करना है ॥

बिताना चाहिये अपना इन्हें किस भाँति से जीवन ?
देश पर वार देना यदि समय आजाय तन मन धन ॥
रहे इनका यही प्रण देश का उद्धार करना है ॥

व्यसन औ वासनाओं से सदा ही दूर रहना है।
साथ ही सद्गुणों से भी इन्हें भरपूर रहना है ॥
शुद्ध सात्विक कहाता वह इन्हें आहार करना है ॥

समझ कर मातृवत् परनारियों को मान दे चलना।
सज्जनों और वृद्धों को हृदय में स्थान दे चलना ॥
"मिश्र" सद्भावनाओं का इन्हें संचार करना है ॥

किया है नूतन घर निर्माण ।
भगवन् ! इस घर में रहकर
हम करें आत्म उत्थान ।।

सुख पूर्वक सानन्द निरन्तर मिलकर सपरिवार ।
एक दूसरे का हित का रख लक्ष्य करें व्यवहार ।।
बनालें ऐसी अपनी आन ।। १ ।।

अन बन कभी न होने पाए, तजे न शिष्टाचार ।
अतिथिजनों का करें सर्वदा स्वागत औ सत्कार ।।
यथावत् हो सब का सम्मान ।। २ ।।

जीवों के प्रति दयाभाव रख करें शुद्ध आहार ।
दुर्व्यसनों से दूर रहें, बन सद्‌गुण के भण्डार ।।
सुपात्रों को देवें नित दान ।। ३ ।।

करें आपकी नित उपासना जड़ जग से लें काम ।
सदा "मिश्र" की सत् संगति में रहें करे विश्राम ।।
सभी का चाहें हम कल्याण ।। ४ ।।

सदाचारियों से सदा प्यार करिये ।
चमत्कारियों का न सत्कार करिये ॥

हुई हानियाँ हैं चमत्कारियों से ।
अपढ़ मूर्ख इन ढोंग के धारियों से ।
सदा ऐंठते द्रव्य नर नारियों से ।
रहो दूर ही इन अनाचारियों से ॥
किसी भाँति इन से न व्यवहार करिये ॥ १ ॥

सदा लाभ होता सदाचारियों से ।
कभी ठग न खाते हैं संसारियों से ॥
सदा दूर रहते हैं बद्कारियों से ॥
खुशामद न करते हैं नर नारियों से ॥
इन्हें मान देकर नमस्कार करिये ॥ २ ॥

चमत्कार है एक ठगने का साधन ।
चमत्कार करते न सुधरा है जीवन ॥
चमत्कार से शुद्ध होता नहीं मन ।
चमत्कार करने मिला है न यह तन ॥
चमत्कारियों का न विस्तार करिये ॥ ३ ॥

है धोखा नहीं तो चमत्कार है क्या ?
ठगी का नहीं है तो व्यापार है क्या ?
सदाचार के प्रति इन्हें प्यार है क्या ?
चमत्कार यह शुद्ध व्यवहार है क्या ?
समझ कर तुम्हीं "मिश्र" निर्धार करिये ॥ ४ ॥

सदा रहा है और रहेगा
देने वाले का, "कर" ऊँचा ।
स्वाभिमान रखने वाले का
रहा आज तक है सर ऊँचा ॥

आवश्यकता ही तो दुख है, लोभ जहाँ, है वहाँ दीनता ।
जिसमें नहीं दीनता, उसका गौरव कोई नहीं छीनता ॥
संतोषी है वही धनी है, आशावान जवान सदा है ।
तृष्णा से जो दूर रहा वह, नर पाता सम्मान सदा है ।
संयम रखता अपने में जो– रहता है उसका स्तर ऊँचा ॥ १ ॥

सुखी वही है जिसका तन भी, मन भी कुछ अस्वस्थ नहीं है ।
स्वस्थ्य वही रहता है जो नर दुर्व्यसनों में व्यस्त नहीं है ॥
कितना भी वलशाली हो पर कामी की है सदा पराजय ।
इन्द्रिय दमन किया जो भी नर रहता वही सदा है निर्भय ॥
ऋण शिर पर न लिया जीवन में रहता है उसका स्वर ऊँचा ॥ २ ॥

अपयश है है जहाँ कृपणता, यश है है दातृत्व जहाँ पर ।
विपता आने में घवराती, है प्रसन्नता जहाँ वहाँ पर ॥
लाचारी रहती न वहाँ पर, ईश्वर का विश्वास जहाँ है ।
करता जो अध्ययन मनन तो, होता सदा प्रकाश वहाँ हैं ॥
जीव मात्र का स्नेही जो है– रहता है जीवन भर ऊँचा ॥ ३ ॥

जहाँ ईर्ष्या जलन वहाँ है, जहाँ दुष्टता है अशान्ति है ।
"मिश्र" जहाँ है वहाँ क्रान्ति है, जहाँ मूर्खता वहाँ भ्रान्ति है ॥
अवनति वहाँ प्रमाद जहाँ है, प्रगति वहाँ उत्साह जहाँ है ।
है संदेह वहाँ असफलता, लगन वहाँ है चाह जहाँ है ॥
है कर्तव्य परायणता में लगा हुआ है वह नर ऊँचा ॥ ४ ॥

बनता है अच्छा और बुरा,
संसार विचारों से ।
मानव का सदा बदलता है,
व्यवहार विचारों से ॥

उत्तम विचार से यह मानव मानव बन जाता है ।
विपरीत विचारों के कारण दानव बन जाता है ॥
खार विचारों से बढ़ता है प्यार विचारों से ॥ बनता है ॥

आचरण सुधरता मानव का सुविचारी बनने पर ।
लग जाता देशद्रोह करने कुविचारी बनने पर ॥
होते देखा है जग में अत्याचार विचारों से ॥ बनता है ॥

रावण कहलाया था राक्षस क्यों ? मात्र विचारों से !
श्रीराम कहाए थे जग में सत्पात्र विचारों से ! ॥
चाहे जैसा होता मानव तैयार विचारों से ॥ बनता है ॥

सुविचारों को सुनने पर यह सुविचारी बनता है ।
कुविचारों के कारण ही यह व्यभिचारी बनता है ॥
मिलता है नर्क और मिलता कर्तार विचारों से ॥ बनता है ॥

मस्तिष्क में भरिये "मिश्र" सदा तुम शुद्ध विचारों को ।
समझाओ बार बार अपने सब प्रेमी प्यारों को ॥
हो जाता है इस मानव का उद्धार विचारों से ॥ बनता है ॥

नारी यदि मिल गई सुशीला,
तो है बेड़ा पार समझिये ।
यदि मिल गई कर्कशा तो फिर हैं
है सब बंटा ढार समझिये ॥

उत्तम नारी के मिलने पर, स्वर्ग नहीं फिर और कहीं है ।
यदि कुलक्षणी मिल जाए तो, कहीं और फिर नर्क नहीं है ॥
नारी का सहयोग मिले तो, है सुखमय संसार समझिये ।

नारी यदि मिल गई सुभद्रा, किसी बात की चाह न रहती ।
हा कंटका कीर्ण मग तो भी, कष्टों की परवाह न रहती ।
ऐसी को नारी न समझ कर, देवी का अवतार समझिये ।

अतिथि जनों के घर आने पर, उनको सम्मानित करती है ।
घर की उचित व्यवस्था रखती काम न कुछ अनुचित करती है ॥
सन्नारी से होता हल्का, सास श्वसुर का भार समझिये ।

पुत्र पुत्रियों की भी समुचित रेख देख औ पालन करती ।
स्नेह भाव से घर भर का वह अति उत्तम संचालन करती ॥
ऐसी नारी का समाज में होता है सत्कार समझिये ।

कई नारियाँ उछृंखल बन मनमाना खर्चा करती है ।
चोरी से सामान बेच कर खर्चे की करती भरती है ॥
"मिश्र" मिले सद् गृहणी तो ही है सुख मय परिवार समझिये ।

तुम्हारा जीवन बने महान ।
रहे ध्यान में तुम दोनों,
का हो उद्देश्य महान ॥

दोनों के दो हृदय एक हो हो, पाए ना दूर ।
एक दूसरे के प्रति मन में रहे स्नेह भरपूर ॥
मिले कटुता को कभी न स्थान ॥ १ ॥

वाणी द्वारा जिन वचनों को कहा, निभाएँ आप ।
उन वचनों के विरुद्ध कोई कभी न करिये पाप ।
समझ कर उनको अपनी आन ॥ २ ॥

धर्म अर्थ औ काम मोक्ष का रखें सामने लक्ष ।
साथ सभी के निर्भय हो, लें सदा न्याय का पक्ष ॥
सत्य को चलें सदा पहचान ॥ ३ ॥

माता पिता वयो-वृद्धों की सेवा का रख भाव ।
व्यवहारिकता से नित खेंवें यह गृहस्थ की नाव ॥
रखें कर्तव्य आदि का ध्यान ॥ ४ ॥

वर होकर तुम, श्वसुर आदि से करना कभी न माँग ।
और दहेज प्रथा का भी यह बन्द कीजिए स्वाँग ॥
नष्ट होता इससे सम्मान ॥ ५ ॥

अनुचित कार्य न होने पाए खोएँ नहीं विवेक ।
करे प्रशंसा "मिश्र" साथ ही नारी नर प्रत्येक ॥
रहे होता नित नव निर्माण ॥ ६ ॥

मिलन तुम्हारा मंगलमय हो–
सद शिक्षा को धारण कर ले–
ऐसा बना विशाल हृदय हो ।।

दो हृदयों का यह सम्मेलन पृथक न हो पाए जीवन भर ।
दो शरीर में एक प्राण है हो प्रभाव ऐसा ही मन पर ।।
एक दूसरे के सुख दुख में, भागी बने सहर्ष निरन्तर ।
द्वन्द्व क्लेश का लेश न रहकर स्वर्ग सदृश्य बनाए निज घर ।।
धर्म अर्थ औ काम मोक्ष की करें साधना भी निर्भय हो ।। १ ।।

सज्जनता के साथ सदा ही स्वजनों का सत्कार सदा हो ।
सास श्वसुर ही नहीं मात्र प्राणी से सद् व्यवहार सदा हो ।।
सच्चरित्रता, नैतिकता का सच्चे मन से प्यार सदा हो ।
और आततताई दुष्टों से लड़ने को तैयार सदा हो ।।
स्वाभिमान के साथ निरन्तर संघर्षों में सदा विजय हो ।। ३ ।।

पति पत्नी बनकर, पति पत्नी के जो हैं कर्तव्य निभाना ।
ऋषि मुनियों की परंपराओं–आदर्शों को भूल न जाना ।।
अपने आचरणों के द्वारा जनता पर वह छाप जमाना ।
कीर्ति मान बन कर इस जग में जीना जीवन ज्योति जगाना ।।
कार्य करो ऐसे ही जिससे सदा सुम्हारा यश अक्षय हो ।। ३ ।।

देश भक्ति की शुद्ध भावना सदा हृदय में स्थान बना लें ।
श्रम के द्वारा न्यायपूर्वक जो मिल जाए पा हर्षा ले ।।
उत्तम लक्ष बना कर अपना, जींवस उत्तमता में ढालें ।
मन मुटाव यदि हो ही जाए एक दूसरे को समझा लें ।।
"मिश्र" ध्यान में रहे–न कुछ भी किसी बात में भी अतिशय हो ।। ४ ।।

आज तो यह विवाह संस्कार,
हो गया बच्चों का व्यापार ।

कन्याओं की कमी हुए पर इनका बढ़ता भाव ।
और वरों की कमी हुए पर इनका चढ़ता भाव ।।
कन्या के प्रति स्नेह नहीं है, है पैसे से प्यार ।। १ ।।

वर के माता पिता चाहते, माल मिले भर पूर ।
वर्षों बैठे खाएँ हम, हो जाए दरिद्री दूर ।।
और चाहता है, वर, स्कूटर या मिल जाए कार ।। २ ।।

धन पति अपनी शान दिखाने, व्यय करते हैं व्यर्थ ।
कठिनाई में पड़ जाते, जो होते नहीं समर्थ ।।
अब बतलाओ ? कौन करे कैसे हो जाति सुधार ।। ३ ।।

मत दहेज दो, मत दहेज लो जो कहते हैं लोग ।
घर में काम पड़े पर पीछे कब रहते हैं लोग ।।
मात्र प्रोपग्रन्डा करके करते हैं चीख पुकार ।। ४ ।।

यह विवाह कुछ कन्याओं के लिए बना अभिशाप ।
कहता है इतिहास जिसे सब जान रहे हैं आप ।।
"मिश्र" नहीं होने पाया अब तक इसका उपचार ।। ५ ।।

आज के पढ़े लिखे युवकों की, देखी दशा निराली है।

माता पिता पढ़ाते, ऋण का सहते सिर पर भार ।
हर प्रकार से अपने सुत को करते हैं तैयार ॥
फिरते हैं स्वछंद वने वाबू बंगाली है ॥ १ ॥

हिप्पी फैशन को अपनाकर कार्टून बन आप ।
कुछ न कमाकर फिरते रहते बन जग पर अभिशाप ॥
जर्दा पान सिगार आदि की आदत डाली है ॥ २ ॥

युवती हो या युवक वेश से होती कब पहचान ।
वात चीत के समय आपकी खुलती जभी जवान ॥
और साथ ही साथ निराली चाल वनाली है ॥ ३ ॥

बी. ए. करली पास सावने, फिर जब हुआ विवाह ।
कहा श्वसुर से मुझे आपसे है स्कूटर की चाह ॥
धरना दे बैठे, लाली आँखों में लाली है ॥ ४ ॥

पत्नी से कहते हैं, अपनी माँ से जाकर बोल ।
अमुक अमुक वस्तुएँ दिला दें कहते हैं मुख खोल ॥
इस प्रकार की भिखमंगी यह आदत डाली है ॥ ५ ॥

जब कि बराती बन विवाह में जाते, करते डाँस ।
कहीं कहीं तो महिलाओं से होता है रोमांस ॥
होते हैं प्रसन्न सब ही जन दे दे ताली है ॥ ६ ॥

होते ही विवाह कर बैठे माँ बापों का त्याग ।
मातृ पितृ ऋण चुका दिया, कर पत्नी से अनुराग ॥
घर में आकर उधम मचाते साले साली है ॥ ८ ॥

वातावरण बना ऐसा कहने में आती शर्म ।
स्वार्थ पूर्ति करना मानव का बना आज का धर्म ॥
पता नहीं "मिश्र" को दशा क्या होने वाली है ॥ ७ ॥

दयामय दो ऐसा वरदान ।
बेईमानी कर मनमानी जमा करे धन धान ।। दया ।।

मेल मिलावट का निर्भय हो करें खूब व्यापार ।
झूठ कपट लप्पा-डुप्पी का, करें नित्य व्यवहार ।।
धर्म को न दें हृदय में स्थान ।। १ ।।

गाँजा भंग सिगार बीड़ियाँ दिन भर फूके खूब ।
काफी चाय पान जर्दे का खा कर थूकें खूब ।।
करें दुर्व्यसनों का सम्मान ।। २ ।।

कोई दुर्गुण बचे न हमसे छूटे नहीं कुचाल ।
भ्रष्टाचार खूब फैलावे, खूब बिछाएँ जाल ।।
रहें शुभ कर्मों से अन्जान ।। ३ ।।

लोगों के नित दोष दिखाएँ छुपा स्वयं के दोष ।
दुखी देख लोगों को, मन में हो हम को सन्तोष ।।
इसी में समझे अपनी शान ।। ४ ।।

बने रहें हर समय हृदय से अँग्रेजों के भक्त ।
उनकी भूषा भाषा पर ही रहें सदा आसक्त ।।
समझ कर चलें इसी को आन ।। ५ ।।

भारतीय सँस्कृति पर प्रतिदिन छुप कर करें प्रहार ।
देशभक्ति का मात्र दिखावा, करने हों तैयार ।।
करें हम गोरों का गुणगान ।। ६ ।।

ऋण लेकर उसको लौटाने का न रखें हम काम ।
देने वाले को ही उल्टा करें "मिश्र" बदनाम ।।
बने हम ऐसे धूर्त महान ।। ७ ।।

गला घोट प्रतिदिन लोगों का धन को जोड़ा हैं।
किन्तु पुराना मैंने अपना धर्म न छोड़ा है ।।

बिना मांस के ग्रास न मेरे गले उतरता है।
बिन शराब के पिये नहीं मन मेरा भरता हैं ।।
बिन इनके मन नहीं मानता कभी निगोड़ा है ।।

भ्रष्टाचार किया करता हूँ सब ही करते हैं।
मैं भी भरता पेट जिस तरह सब ही भरते हैं ।।
लोगों के हर कामों में अटकाया रोड़ा है ।।

क्षमा कीजिये दुराचार से भी न बचा हूँ मैं।
कइयों को अजी फँसाने कइयों जाल रचा हूँ मैं ।।
ऐसे कामों में मुख अपना कभी न मोड़ा है ।।

व्यसन कौन सा है न जिसे मैंने अपनाया है।
दुर्गुण कोई भी हो मुझ से छूट न पाया है ।।
सब कुछ कर डाला जीवन में अधिक व थोड़ा है ।।

लोगों को उचकाने में आनंद बड़ा आता।
लोगों को सदा सताना ही मेरे मन को भाता ।।
मैंने भी फुड़वाया सिर हैं औरों का फोड़ा है ।।

ऋण लेकर के उसे चुकाने में समझा है पाप।
करने में यों पाप, नहीं होता है पश्चाताप ।।
बेईमानी करके धन के पीछे दौड़ा है ।।

पता "मिश्र" को लगा नहीं वह धर्म कौन सा है।
नहीं समझ में आया वह शुभ कर्म कौन सा है ।।
सुन डाला भाषण कानों से लम्बा चौड़ा है ।।

चोरी कर मत पकड़े जाओ ।
झूठ कहो गठने मत पाओ ।।
वड़े ठाट से फिरो अकड़ कर ।
अपने चमचे खूब वढ़ाओ ।।

नेता जी का धर्म यही हैं । नीति यही शुभ कर्म यही है ।
तुम्हें शान से जीना हो तो जीने का वस मर्म यही हैं ।।
पाप करो जो भी चाहे पर मन में कभी न तुम पछताओ ।।

मुख से वनो अहिंसावादी, तन पर अपने पहनो खादी ।
खाओ पियो और क्लवों में नाचो मिली तुम्हें आजादी ।।
कहो महात्मा गाँधी की जय चाहे कुछ भी करो कराओ ।।

खड़े रहो जव भी चुनाव में – इस कागज की वैठ नाव में ।
हार गए तो रोते वैठो – चुने गए तो मौज उड़ाओ ।।

सव को "मिश्र" वनाना सीखो, जग को गोल फिराना सीखो ।
वाक् चतुर वन सब जनता को रोकर स्वयं रुलाना सीखो ।।
जमा हुआ अपना प्रभाव कुछ घटे नहीं वह रोव जमाओ ।।

समझ कर चलिये सव को चोर
वात समझ कर कहता हूँ मैं
इस पर करिये गौर ।।

समझ दुराचारी सवको ही करिये अपने काम ।
भाव प्रकट मत होने दीजे मत धरिये कुछ नाम ।।
दुर्जन को दुर्जन कह कर भी मत मचाइये शोर ।। १ ।।

वेईमान समझ सवको ही दीजे आप उधार ।
झूठा समझ आप सब को ही करियेगा व्यापार ।।
वदल दिया करता है मानव समय पड़े पर तौर ।। २ ।।

शत्रु समझ चलिये सव को ही ऊपर से कह मित्र ।
सावधान रहना मन में रख अपने भाव पवित्र ।।
भेद किसी को कभी न देना होकर भाव विभोर ।। ३ ।।

मानव की लीला विचित्र है इसका रखना ध्यान ।
कभी पूर्ण विश्वास न करना इसको समझ महान ।।
वन जाता महान भी है यह बन भी जाता ढोर ।। ४ ।।

द्वेष भरा रहता भीतर में बाहर रखता स्नेह ।
इसीलिए प्रत्येक समय इस पर रखना संदेह ।।
कलकत्ते जाने की कहता जाता त्रावणकोर ।। ५ ।।

बाहर भीतर के अन्तर को सदा परखिये आप ।
बने, काम पड़ने पर बेटा, न बनने पर बाप ।।
"मिश्र" समय पर धर्मी बनता पापी भी यह घोर ।। ६ ।।

वचनों पर जो बलिहार न हो धिक्कार है ऐसी दौलत पर।
जिस पर अपना अधिकार न हो धिक्कार है ऐसी दौलत पर ॥ १ ॥

सम्मान नष्ट हो जाने पर दौलत का रहना रहना क्या ?
दौलत रह कर सत्कार न हो – धिक्कार है ऐसी दौलत पर ॥ २ ॥

दौलत रह कर जो अवसर पर कुछ काम नहीं आ सकती हो।
उस दौलत का दीदार न हो धिक्कार है ऐसी दौलत पर ॥ ३ ॥

दौलत है एक वस्तु ऐसी जो रही सदा है पास नहीं।
दौलत रहकर दातार न हो धिक्कार है ऐसी दौलत पर ॥ ४ ॥

सुन रे दौलत के दीवाने ! दौलत पर तू मरता है पर !
तुझ पर वह अगर निसार नहीं धिक्कार है ऐसी दौलत पर ॥ ५ ॥

जिस दौलत के आ जाने पर मानव दानव बन जाता हो।
जिससे कुछ सद् व्यवहार न हो धिक्कार है ऐसी दौलत पर ॥ ६ ॥

उस दौलत से क्या लाभ है जो दौलत दो लत सिखलाती है।
मानव का जहाँ सुधार न हो धिक्कार है ऐसी दौलत पर ॥ ७ ॥

दौलत के भूखे "मिश्र" अरे ! नफरत कर ऐसी दौलत से।
दौलत हो सद् आचार न हो धिक्कार है ऐसी दौलत पर ॥ ८ ॥

ले नाम धर्म का पाप कमाते थे ।
इस प्रकार से उल्टे धन्धे करने जाते थे ।।

प्रथा चली बंगाल प्रान्त में जिसको लोग निभाते थे ।
बीस हाथ की बल्ली लेकर धरती में गड़वाते थे ।।
बल्ली के लोहे के हुक दो तेज लगाए जाते थे ।
एक पुरुष के कन्धों पर रख बल्ली ठोक बिठाते थे ।।
अन्य पुरुष को रस्सी पकड़ा उसको खूब घुमाते थे ।
सहन करे इस हरकत को वे भाग्यवान कहलाते थ ।।
मुक्त हो गया कहकर फिर उसके गुण गाते थे ।

प्रथा दूसरी थी यह रोगी जो असाध्य हो जाते थे ।
मरणा सन के समय उसे गंगा के तट पर लाते थे ।।
हरि हरि कहकर गंगा में उसको गोते लगवाते थे ।
यदि जी जाता तो घर के उसको दर्शन न कराते थे ।।
हाय हाय कर तड़प तड़प कर वे प्राणी मर जाते थे ।
कहते हैं यों मर जाने पर सीधे स्वर्ग सिधारते थे ।।
रोगी का उपचार न कर के यों मरवाते थे ।

सती दाह की अधिक प्रथा बंगाल प्रान्त में चलती थी ।
बिन इच्छा सत चढ़े बिना नारियाँ अनेकों जलती थीं ।
चीखें मार मार कर जब वे रोती और उछलती थीं ।
डंडे लिए चिता पर टोली पुरुषों की कब टलती थी ?
दृश्य देखकर के कइयों के मुख से आह निकलती थी ।।
बुरा उन्हें लगता पर उनकी कुछ भी दाल न गलती थी ।
मुक्ति मिलेगी ऐसे मरने से बतलाते थे ।।

प्रथा भयंकर रूप लिए थी एक राजपूताने में ।
बुरा समझते थे अपने घर बेटी के हो जाने में ।।
पाप समझते थे अपने को साला, श्वसुर बनाने में ।
देर न करते इसीलिए कन्या का गला दबाने में ।।
सन ईसवी अठारह सौ सत्तर के सुनो जमाने में ।
प्रथा मिटी प्रतिरोध पुत्रि वध बिल के पास करने में ।।
शान समझते थे अपनी यह आन निभाते थे ।

सन्तानों के लिए इष्ट देवों को मनाया जाता था ।
प्रथम पुत्र को गंगा जी में डाल बहाया जाता था ।।
धूम धाम के साथ जहाँ भी यज्ञ रचाया जाता था ।
वेदों का ले नाम नरों को भेंट चढ़ाया जाता था ।।
घोड़ों भैंसों बकरों को अग्नि में जलाया जाता था ।
उनका माँस द्विजों के द्वारा फिर वह खाया जाता था ।।
समझ स्वयं को पुण्यवान मन में इतराते थे ।।

माताएँ सन्तानों के हित शिव को सदा मनाती थी ।
सुनिये मित्रों किस प्रकार बेटों को भेंट चढ़ाती थी ।।
गिर–नार सतपुड़ा पहाड़ों के ऊपर चढ़वाती थी ।
कोख खुले इसलिए पुत्र को भेंट चढ़ा मरवाती थी ।।
दिला दिला कर जोश जोश में उनका होश भुलाती थी ।
रही हजारों वर्ष प्रथा यह भृगोत्पना कहाती थी ।।
लिए पुत्र के इस प्रकार से पुत्र गँवाते थे ।

काशी करोत कूँआ विश्वेश्वर मंदिर के पास में था ।
उस कूँएँ में शिवजी हैं यह लोगों के विश्वास में था ।।
जा गिरता कुएँ में जो शिव से मिलने आश में था ।
प्राण बचे क्यों कर जब जीवन ही मानव के श्वास में था ।।

हो कर के अजान मनुज फँस जाता धर्म फाँस में था ।
जानबूझ तत्पर रहता यों अपने सर्वनाश में था ।।
मोक्ष मिलेगी समझ इस तरह मर दिखलाते थे ।

होने पर विश्वास किसी को उसे हटाना दुष्कर है ।
नहीं समझना चाहे उसको तो समझाना दुष्कर है ।।
लक्षण सत्य धर्म के क्या है उन्हें सुझाना दुष्कर है ।
वेद शास्त्र का दे प्रमाण उन पर जय पाना दुष्कर है ।।
अधिकारी न रहे उन पर अधिकार जमाना दुष्कर है ।
"मिश्र" कान के बहरों को गा गान सुनाना दुष्कर है ।।
जाल बिछाकर ऐसा वातावरण बनाते थे ।।

रक्त पशुओं का बहाना धर्म है ।
और मछली माँस खाना धर्म है ।।
भाँग गाँजा और मदिरा आदि का ।
बन गया पीना पिलाना धर्म है ।।

मंदिरों में मूर्तियों के सामने ।
देव दासी को नचाना धर्म है ।।
धर्म का ले नाम जूआ खेलना ।
दाँव पर सब कुछ लगाना धर्म है ।।

और यों अश्लील बकना गालियाँ ।
सूरतें काली बनाना धर्म है ।।
"मिश्र" है यह धर्म तो, है पाप क्या ।
पाप ऐसे कर दिखाना धर्म है ।।

अब सुनो ! सुनाएँ त्योहारों का हाल ।

दीपावली महोत्सव के दिन, करते लक्ष्मी का पूजन ।
और साथ ही साथ खेलना जुआ लगाना उसमें धन ॥
और सुनो संक्रान्ति पर्व पर आसमान में उड़े पतंग ।
दारु सेंधी और साथ में, पिया जाए गाँजा औ भंग ॥
कहते हैं यह सदा सदा से चली आ रही चाल ॥ १ ॥

दशा दशहरे की भी सुनिये, जो सुनने में आती है ।
रावण मारा गया वही है तिथि बतलाई जाती है ॥
विजयी हुए राम उसकी यों सब मिल खुशी मनाते हैं ।
लाखों नहीं करोड़ों बकरे, उस दिन काटे जाते हैं ॥
नदी रक्त की बहती है यों इस प्रकार हर साल ॥ २ ॥

हवनावली महोत्सव को ये दे डाले होली का नाम ।
हवन यज्ञ के बदले में ये करते हैं सब उल्टे काम ॥
काला मुख कर बैठ गधे पर पहन जूतियों की माला ।
अपने साथ देश भारत का नाम कलंकित कर डाला ॥
प्रथा पुरानी है कहकर ये व्यर्थ बजाते गाला ॥ ३ ॥

पर्व मनानें न्हाने जाते जब है तीर्थ स्थानों में ।
करते ये सब उल्टे धन्दे वुद्धि नहीं नादानों में ॥
"मिश्र" कहाँ तक लिखें, सुनाएँ आप स्वयं अनुमान करें ।
क्या ऐसा करना सुकर्म है ? आप तनिक यह ध्यान करें ॥
भारत के अपमान मान का कुछ तो करो खयाल ॥ ४ ॥

चमत्कारियों के आगे सिर,
रखकर मत सत्कार कीजिये ।
सदाचारियों की कर पूजा,
सच्चरित्र से प्यार कीजिये ।।

एक टाँग पर बारह घण्टे अगर खड़ा रहता हो कोई ।
नंगा बबूल के काँटों पर क्यों न पड़ा रहता हो कोई ।।
चाहे साथ मण्डली के हो या कि छड़ा रहता हो कोई ।
चिलम एक फुट लंबी को चाहे पकड़ा रहता हो कोई ।।
आप कभी ऐसों के संग में कुछ भी मत व्यवहार कीजिये ।। १ ।।

बिन खाए बिन पिये और बिन सोए भी जीता हो कोई ।
अथवा सब कुछ त्याग दिया हो पानी ही पीता हो कोई ।।
शौंच न लघु शंका करता हो पढ़ता भी गीता हो कोई
सूई धागा पकड़ पाँव से कपड़ा भी सीता हो कोई ।।
किसी तरह की बातें कर इनसे मत कभी विचार कीजिये ।। २ ।।

सिर धरती में धड़ ऊपर रख घोर तपस्या करते हैं जो ।
दूध जटाओं से निकाल कर जग को ठग कर चरते है जो ।।
अकर्मण्य बन खाते सोते व्यसनों पर नित मरते हैं जो ।
लोगों को चक्कर में लाकर पेट सदा ही भरते हैं जो ।।
इनसे वाद विवाद व्यर्थ ही कर के मत तकरार कीजिये ।। ३ ।।

कर देते जो दुगना सोना फिरते नोट बनाने वाले ।
बचे रहो उनसे भी जो हैं योगी राज कहाने वाले ,।
और बचो उनसे भी जो है मन की बात बताने वाले ।
बेटे देते फिरते कइयों धूर्त द्रव्य ठग खाने वाले ।।
समझदार है तो फिर इनसे "मिश्र" न बातें चार कीजिये ।। ४ ।।

लीडर वन जाते जिनको,
झट गोल फिराना आता है।

सच को झूठ झूठ को सच करना है जिसको आता।
सब कुछ कहकर कभी नहीं बातों में फँसने पाता॥
कर शब्द जाल की रचना जिसको वहकाना आता है।

ऐसी बातें कहना जिसके हों दो अर्थ निकलते।
पड़ जाने पर काम भाव अपने अनुकूल बदलते॥
मीठी वाणी से जिसको झट मूर्ख वनाना आता है।

श्रोताओं का मूढ़ वदल आकर्षण में ले आना।
कभी हँसाना कभी रूलाना कभी जोश में लाना।
भीतर के भाव छुपाकर अभिनय दिखलाना आता है।

कुछ गुण्डों को कुछ चमचों को रखना सदा वनाकर।
साम दाम औ दण्ड भेद का सब पर चक्र चलाकर॥
अपनी निन्दा को सुन कर जिसको गम खाना आता है

गिरगिट जैसे रंग बदलना, चीते सी चतुराई।
कहीं सिंह बन जाना, अवसर पर बन जाना गाई॥
हो "मिश्र" भलाई अपनी सब कुछ बन जाना आता है।

मैं कवि हूँ कविता करता हूँ ।

विज्ञ लोग सब मुझे जानते, कवियों में कविवर महान हूँ ।
व्यास वाल्मीकि तुलसी से बढ़कर भरता मैं उड़ान हूँ ।।
पर साधारण कवियों का रखता आया हर समय ध्यान हूँ ।
नहीं चाहता यदि मैं चाहूँ तो गा सकता साम गान हूँ ।।
सुनने वाले पात्र नहीं है इसीलिए तो मैं डरता हूँ ।। १ ।।

इधर उधर की कविताओं को कहते लोग चुराता हूँ मैं ।
अपनी छाप लगा उन कविताओं पर नाम सुनाता हूँ मैं ।।
लोग चुराते मेरी कविताएँ लो आज सुनाता हूँ मैं ।
सच्ची सच्ची बात सुनाने कभी नहीं भय खाता हूँ मैं ।।
कविता मेरे लिए घास है जैसा चाहे मैं चरता हूँ ।। २ ।।

चुटकी आप बजाएँ तब तक पोथे के पोथे लिख धर दूँ ।
गिनती कोई लगा न पाए इतने पोथे लिख लिख भर दूँ ।।
पर कहते रहता मन मेरा कुछ लोगों को भी अवसर दूँ ।
लोग बढ़ेंगे आगे कैसे, मैं ही सभी पूर्ति कर दूँ ।।
अन्य अन्य कवियों का मन बल और नहीं हिम्मत हरता हूँ ।। ३ ।।

यदि मैं कहूँ वीर रस में, बलिदान हिजड़े भी हो जाएँ ।
करुणारस वर्षा दूँ तो फिर वीर हृदय भी सब सो जाएँ ।।
अगर हास्यरस टपका दूँ तो हँसते हँसते सब खो जाएँ ।
और रुद्ररस वर्षाने पर सबके सब श्रोता रो जाए ।।
इसीलिए रस किसी भाँति का "मिश्र" न भावो में भरता हूँ ।। ४ ।।

मैं ईश्वर हूँ सर्वेश्वर हूँ,
परमेश्वर हूँ अखिलेश्वर हूँ।
न्याय नियन्ता कर्ता धर्ता,
पालक पोषक विश्वेश्वर हूँ ॥

मैं ईश्वर हूँ समय समय पर भक्त जनों की रक्षा करने।
करने धर्म स्थापना जग में एवं भार भूमि का हरने ॥
आता भी हूँ जाता भी हूँ किन्तु अजन्मा कहलाता हूँ।
परिवर्तन से रहित हूँ अपने में परिवर्तन ले आता हूँ ॥
मैं ईश्वर हूँ रोगी होता मरता हूँ, मैं अजर अमर हूँ ॥ १ ॥

कष्टों से मैं घिरा हुआ हूँ घनानन्द भी कहलाता हूँ।
मैं असीम हूँ और साथ ही सीमा में बाँधा जाता हूँ ॥
मायापति हूँ और साथ ही माया के आधीन रहा हूँ।
कर्म फलों से वंचित भी हूँ कर्म फलों में लीन रहा हूँ ॥
मैं ईश्वर हूं ब्रह्मा विष्णु और शिव शंकर प्रलयंकर हूँ ॥ २ ॥

मैं ईश्वर हूँ किन्तु साथ ही मानव लीला दिखलाने को।
मैं अवतार लिया करता हूँ भक्तों का मन बहलाने को ॥
भक्तजनों की इच्छाओं पर चलता हूँ खेला करता हूँ।
सर्व शक्ति सम्पन्न कहा कर भी संकट झेला करता हूँ ॥
मैं ईश्वर हूँ समय समय पर सदा बदलते रहता स्तर हूँ ॥ १ ॥

वर्तमान में मैं ही मुन्नालाल मिश्र बनकर आया हूँ।
जो कुछ मुझको दिखलाना था अपनी माया दिखलाया हूँ ॥
मैं रखता आया हूँ अब तक सब जनता को अन्धकार में।
अभी अँधेरे में रखना ही अच्छा है मेरे विचार में ॥
मेरे मरने पर नारायण लोग कहेंगे अब तो नर हूँ ॥ ४ ॥

मेरे धन धान घर में घना है।
मुझको पोते का मुख देखना है।

ब्याह होकर है दो वर्ष बीते।
ना हुए आज तक मन के चीते ॥
एक भी बहु न बेटा जना है ॥ १ ॥

बाँझ बहु आई घर में किधर की।
पौत्र बिन कैसी हालत है घर की ॥
क्यों नहीं अब तलक कुछ बना है ॥ २ ॥

साधु महाराज ओ साँईं बाबा।
काशी जाऊँ या मैं जाऊँ काबा ॥
हाय सूना पड़ा पालना है ॥ ३ ॥

ओ री ओ मेरी संतोषी माता।
कर रही क्यों नहीं चालू खाता ॥
दे रही क्यों हमें यातना है ॥ ४ ॥

काली कलकत्ते वाली भवानी।
पौत्र बिन हो रही मैं दिवानी ॥
पूर्ण मेरी करो कामना है ॥ ५ ॥

ओ जी ! ओ मेरे जहाँगीर पीराँ।
पड़ गई पाँव में है लकीराँ ॥
कब तलक दुःख यों भोगना है ॥ ६ ॥

"मिश्र" तू ही हवन यज्ञ करदे।
बोल भगवान से गोद भर दे ॥
हम सभी मिल करें याचना है ॥ ७ ॥

सा. कैंची की तरह अरी ओ, यह जुबाँ चलाना छोड़ दे ।
व. रेडियो में तू भी अपना रेकाड बजाना छोड़ दे ।।

सा. विना कहे मैं नहीं रहूँगी क्योंकि सास हूँ तेरी ।
व. कहने पर वापिस कहने की पड़ गई आदत मेरी ।।
टर टर टर्राना छोड़ दे ।। १ ।।

सा. तू मुझको देकर जवाव क्या ? मेरी सास वनेगी ।।
व. तो तू क्या कमजोर समझकर मुझ पर सदा तनेगी ।।
झगड़े करवाना छोड़ दे ।। २ ।।

सा. तेरा वाप पाँव पड़ मेरे तुझको सौंप दिया है ।
व. भीख माँगने पर दे मुझको यह उपकार किया ।।
यों आँख दिखाना छोड़ दे ।। ३ ।।

सा. ननदों को तू देख सदा मन ही मन में जलती है ।
व. तेरे घर में तो बेटचों की सदा दाल गलती है ।
सिर पर बैठाना छोड़ दे ।। ४ ।।

सा. बेटे को वुलवाकर तुझको थपड़ें लगवाऊँगी ।
व. सुसरे जी को कहकर मैं भी तुझको पिटवाऊँगी ।।
घर को फुड़वाना छोड़ दे ।। ५ ।।

सा. घर के बाहर करने को मैं उनसे अभी कहूँगी ।
व. तू जा घर के बाहर मैं तो घर में यहीं रहूँगी ।।
यों लोग हँसाना छोड़ दे ।। ६ ।।

सा. उस तेरी माँ राँड के आगे बातें सभी कहूँगी ।
व. मेरी माँ को राँड कहा तो दाँत तोड़ रख दूँगी ।।
दीदे मटकाना छोड़ दे ।। ७ ।।

सा. कसम बोलता देवी तुझको, पर तू तो है डायन ।
व. तू भी पक्की शूर्पनखा है, पढ़ती है रामायण ।।
गालियाँ सुनाना छोड़ दे ।। ८ ।।

काम समय पर करें न,
ये तो हिन्दुस्तानी है।
नई न समझो यह आदत,
तो बहुत पुरानी है।।

मानो किसी ग्राम को जाने स्टेशन जाएँगे।
ठीक समय पर कभी वहाँ पर पहुँच न पाएँगे।।
क्योंकि इन्हें तो पूरी अपनी आन निभानी है।

समय दीजिये वक्ता को भाषण के देने पर।
ठीक समय पर बन्द करेंगे कभी न अपना स्वर।।
क्योंकि समय पर कभी न रुकती इनकी वाणी है।।

किसी व्यक्ति को छः बजने पर "मिश्र" बुलाना हो।
पाँच बजे को आ जाएँ यों चिट्ठी लिख भेजो।।
सात बजे पर वे आएँगे इसके मानी है।

समय बीतने पर जाने पर, समय न जाता व्यर्थ।
ठीक समय पर जाते, उनका होता है यह अर्थ।
जाने वाले की समझो, पूरी नादानी है।

देश हुआ स्वाधीन, किन्तु है अनुशासन से दूर।
नैतिकता पर भाषण देते, बातों के है शूर।।
बात क्रिया में लाने, करते आना कानी है।

लिखा हुआ है एक बात पर होता है व्यापार।
दाम करो कम कहने पर हो जाते झट तैयार।।
एक बात लिखकर यह उसकी हँसी करानी है।

अनुशासन का महत्व न जाने,
वह अनुशासन क्या पालेगा ?

अनुशासन में रहता है वह जगत नियंता जगदीश्वर भी ।
सूर्य चन्द्र तारा मण्डल अब थमे हैं ये अनुशासन पर ही ।।
समझेगा वह ही अनुशासन में लाकर खुद को ढालेगा ।

गिरि तरुवर नदियाँ समुद्र सब आधारित है अनुशासन पर ।
अणु अणु यह देखो न प्रकृति का अनुशासन पर ही हैं निर्भर ।।
अनुशासन हर जगह दिखेगा दृष्टि जहाँ कोई डालेगा ।

तनिक ध्यान देकर देखो तो अनुशासन पर शासन चलते ।
अनुशासन हीनों के शासन कुछ ही दिन में तुरत बदलते ।।
अनुशासन के बिन सेनापति सेना सहित मार खा लेगा ।

जो अपना कर्तव्य समझ कर अनुशासन पाला जाता है ।
कहलाता है उत्तम वह ही मानव मानव कहलाता है ।।
भय का अनुशासन भय तक ही सीमित रहकर ही चलेगा ।

नेताओं के अनुशासन में यदि यह नहीं चलेगी जनता ।
तो स्वतंत्रता खोकर अपने दोनों हाथ मलेगी जनता ।
"मिश्र" रहा जो अनुशासन में विजय गीत निश्चय गा लेगा ।

क्या महत्व है उस शरीर का,
जिस शरीर में प्राण नहीं है ।
क्या महत्व है उस मानव का,
जिसमें आत्माभिमान नहीं है ।।

क्या महत्व है उस राजा का जहाँ अराजकता रहती है ।
कष्ट सदा साधारण जनता दुष्टों के द्वारा सहती है ।।
क्या महत्व है उस सेना का, साहस औ शस्त्रास्त्र रहित हो ।
विना लड़े कट जाए उनसे कहो देश का कैसे हित हो ।।
क्या महत्व है उन देशों का, जहाँ ज्ञान विज्ञान नहीं है ।। १ ।।

क्या महत्व है उस नेता का, जनता को कुमार्ग पर ढाले ।
विदेशियों का दास बनाकर जो अपने मन को समझाले ।।
क्या महत्व है उनका जिन में संयम और चरित्र नहीं है ।
मात्र सजा रक्खा है तन को मन के भाव पवित्र नहीं है ।।
क्या महत्व उस देशभक्ति का, रहे देश की आन नहीं है ।। २ ।।

क्या महत्व है उस विद्या का, पढ़े हुए व्यवहार हीन है ।
विनय, शील, सद्भाव और जो बना हुआ सुविचार हीन है ।।
क्या महत्व है उस साहस का, नहीं न्याय के लिए झगड़ते ।
स्वार्थ और अन्याय पाप का लेकर पक्ष सदा ही लड़ते ।।
क्या महत्व उस बल का जिसको निज गौरव का भान नहीं है ।। ३ ।।

क्या महत्व उस आस्तिकता का, फलता जब सत्धर्म नहीं है ।
पाप जहाँ मन माने होते होता जहाँ सुकर्म नहीं है ।।
क्या महत्व है उन भक्तों का, जो करते जीवों का भक्षण ।
मदिरा पीकर दुराचार कर करते पापों का संरक्षण ।।
क्या महत्व है "मिश्र" बताओ, बनता व्यक्ति महान नहीं है ।। ४ ।।

मैं जनता का नेता हूँ ।

सब को गोल फिराता हूँ । सच को झूठ बनाता हूँ ।
उलट पुलट समझाता हूँ ।
कोई कुछ भी कहें किन्तु मैं अपनी जगह विजेता हूँ ॥

सब कुछ कहना आता है । सब कुछ सहना आता है ।
चुप भी रहना आता है ।
साथी हो कि विरोधी हो मैं समझा सब को लेता हूँ ॥

गाँधी जी का चेला हूँ । खेल अनेकों खेला हूँ ।
मतवाला अलबेला हूँ ।
अपने जीवन की नौका को बड़े ठाट से खेता हूँ ॥

कुछ खाता कुछ पीता हूँ मौज मजे से जीता हूँ ।
आस्तिक हूँ पढ़ता गीता हूँ ।
"मिश्र" सभी मजहब वालों को मान सदा ही देता हूँ ॥

जय श्री नेताजी जय श्री नेताजी ।
कहलाते हो जग में तुम तो विश्व विजेताजी ॥

सदाचार का तुम सब को उपदेश सुनाते हो ।
किंतु स्वयं आचरण नहीं करके दिखलाते हो ॥

वस्तु देश की क्रय करने का सब को कहते हो ।
फॉरेन की वस्तुएँ स्वयं क्रय करते रहते हो ॥

सत्य अहिंसा न्याय दया की बातें करते हो ।
दुर्व्यसनी बनकर जो चाहें तुम तो चरते हो ॥

प्रजातंत्र की विशेषताएँ तुम बतलाते हो ।
पर तुम तो मन चाही डिक्टेटरी चलाते हो ॥

तुम विधान के प्रति, देखा सौगन्धें खाते हो ।
पर विधान को तुम अपने अनुकूल बनाते हो ॥

तुम दहेज के विरुद्ध में भाषण तो देते हो ।
पर दहेज घर में अपने लेकर धर लेते हो ॥

भ्रष्टाचार न करिये सब को कहते हो प्रतिदिन ।
तुम कब रह पाते हो भ्रष्टाचार किये के बिन ॥

कहाँ तलक आरती उतारें "मिश्र" आपकी यों ।
नहीं समझ में आता – करते उल्टे धन्दे क्यों ॥

अपनी विशेषताओं का ही,
मानव नित वर्णन करता है।
दोष स्वयं का नहीं दीखता,
जो वह दानव पन करता है ।।

यह इसका स्वभाव इसको ही, सच जानो धोखा देता है।
अपने दुर्गुण देख न पाता, हूँ गुणवान समझ लेता है ।।
घर घर में निन्दा करवाता, ऐसा जो स्वभाव है इसका।
इसकी जो चर्चा होती है, इसको लगता पता न जिसका।।
बनकर मूर्ख बुराई यों अपने आप सृजन करता है ।। १ ।।

अपनी मात्र प्रशंसा सुनने में ही मानव रस लेता है।
इसके दोष दिखाने पर भी उन पर ध्यान नहीं देता है ।।
अपितु समझ कर शत्रु उन्हें यह उनकी बात नहीं सहता है।
हाँ में हाँ करने वालों से, हर दम घिरा हुआ रहता है ।।
अपनी स्थिति का ठीक अध्ययन एवं नहीं मन न करता है ।। २ ।।

और समझता है हर मानव, मुझसे होती भूल नहीं है।
भूलों को कर के भी करता मुख से कभी कबूल नहीं है ।।
है यह रोग असाध्य सभी को प्रायः लिपटा ही रहता है ।।
कहता हूँ अपवाद छोड कर सबको चिपटा ही रहता है ।।
उचित ढंग से अपने में यह कभी न परिवर्तन करता है ।। ३ ।।

बात मानिये आप "मिश्र" की आत्म निरिक्षण करते रहिये।
दुर्गुण से रह दूर, स्वयं में शुद्ध भावना भरते रहिये ।।
अपने आप विचार कीजिये, अपना आप सुधार कीजिये।
शिक्षक स्वयं स्वयं के बनकर सदा शुद्ध व्यवहार कीजिये ।।
महापुरुष बनता है वह जो सदा आत्म चिंतन करता है ।। ४ ।।

होता दुर उपयोग वस्तु का बुरी वही बस बन जाती है ।
सद् उपयोग किया जाए तो वह ही उत्तम कहलाती है ॥

निर्विकार ईश्वर का भी मानव ने दुर उपयोग किया है ।
सीमा से बाहर पापों को कर प्रभु को बदनाम किया है ॥
पूजा का ले नाम किया वध पशुओं को झट भेंट चढाया ।
आड़ मात्र ली उस ईश्वर की भर कर पेट स्वयं ने खाया ॥
पशुओं को ईश्वर खाता क्या ? बात समझ में भी आती है ॥ १ ॥

मानव होकर जीव मात्र से करना सद् व्यवहार चाहिये ।
ऐसा न कर उन्हें खाना क्या ? करना स्वयं विचार चाहिये ॥
नाम धर्म का लेकर वह भी करते हैं जो कुछ करते हैं ।
ईश्वर से निन्दा से और न अन्तरात्मा से डरते हैं ॥
ऐसी जनता उल्टा हमको धर्म मार्ग नित दर्शाती है ॥ २ ॥

रहते हैं रत दुराचार में वह भी लेकर नाम धर्म का ।
इन से पूछो फिर लक्षण क्या कर दिखलाओगे कुकर्म का ॥
इन पापों को धर्म कहोगे, कह पाओगे पाप किसे फिर ।
पाप न करिये बुरी बात कह समझाओगे आप किसे फिर ॥
मानव करता रहता है यों जो बातें मन को भाती है ॥ ३ ॥

नास्तिक कहलाने वाले भी सदाचार को अपनाते हैं ।
ईश्वर को तो नहीं मानते किन्तु नेक बन दिखलाते हैं ॥
नहीं धर्म में श्रद्धा रखते पर वास्तविक धर्म है उसको ।
आचरणों में ला दिखलाते, वास्तव में सुकर्म है उसको ॥
बुरा भला कहने ऐसों को कभी न जनता सकुचाती है ॥ ४ ॥

जिधर देखता हूँ कि बस तू ही तू है।

दुकानों मकानों व गाँवों शहर में।
जहाँ देख लो बस तेरी गुफ्त-गू है॥

बड़े प्यार से औ बड़ी चाहना से।
कोई पी रहा कर रहा फू ही फू है॥

बड़ी ही मोहब्बत से औरत मरद सब।
चवा पान में थूकते थू ही थू है॥

हो मेहमा-नवाजी किसी के यहाँ भी।
सभी के सदा तू रही रूबरू हैं॥

बचा मौलवी कौन पंडित है तुझ से।
सभी के दिलों में रही आरजू है॥

किसी के घुसी जा रही नाक में तू।
टपकती सदा नाक आती न बू है॥

बचा "मिश्र" ही एक बदकिस्मती से।
कहे बोलकर कुछ — किसी का न मूँ है॥

जय श्री तम्बाकू जय श्री तम्बाकू ।
पीते वे करते फू, खाते वे थू थू ।।

बुद्धिमान, विद्वान, मूर्ख जन सब ही पीते हैं ।
तेरे को अपनाकर सब ही जग में जीते हैं ।। १ ।।

चूने में रगड़ा देकर के कइयों खाते हैं ।
और पान में डाल कई तो होंट रचाते हैं ।। २ ।।

चुटकी भर कर नास नाक में डाल सूँघते हैं ।
नहीं मिले पर वे तो बैठे हुए ऊँघते हैं ।। ३ ।।

राजा रंक सभी ने तुझको तो अपनाया है ।
तेरे द्वारा सब ने ही नवजीवन पाया है ।। ४ ।।

सन्त महन्त साधु जन तेरे सच्चे चाहक हैं ।
युवक वृद्ध नारी-नर तेरे सब ही ग्राहक हैं ।। ५ ।।

भजना नन्दी, भजन जागरण में जा गाते हैं ।
खाकर पीकर तुझे सूँघकर मन बहलाते हैं । ६ ।।

तुझ से बचकर नहीं किसी को जीना पड़ता है ।
"मिश्र" बचा है किंतु नाक से पीना पड़ता है ।। ७ ।।

परिवर्तन का नाम मृत्यु है,
मृत्युंजयीमात्र ईश्वर है ।

आना मिलना और प्रकट होना इसको ही मृत्यु मानिये ।
जाना मिटना और दृष्टि से ओझल होना मृत्यु जानिये ॥
नित्य निरन्तर ये सब जीवों के सँग में होता आया है ।
इस प्रकार के परिवर्तन से ईश्वर ही बचने पाया है ॥
परिवर्तन से रहित कहाता इसीलिए वह अजर अमर है ॥ १ ॥

प्रकृति नित्य है और जीव भी ये दोनों भी नित्य कहाते ।
इनके जो स्वाभाविक गुण है वे ही है प्रकटाए जाते ॥
वे सब गुण भी ईश्वर के द्वारा ही प्रकटाए जाते हैं ।
अपने आप स्वयं ही उन में कभी न विकसित हो पाते हैं ॥
काम बहुत से ऐसे हैं जो उस ईश्वर पर ही निर्भर हैं ॥ २ ॥

जीव प्रकृति की मौलिकता में कभी न परिवर्तन आएगा ।
पर बाहर तो इनमें प्रतिक्षण परिवर्तन होता जाएगा ॥
परिवर्तन का काम सदा ही होता यों अविराम रहा है ।
दीख रहा प्रत्यक्ष सामने होता जो परिणाम रहा है ॥
सदा एक रस रहने वाला तो बस ईश्वर का ही स्तर है ॥ ३ ॥

जीव कर्म के करने में तो है स्वतंत्र यह निश्चय जानो ।
पर कर्मों के फल पाने में है स्वतंत्र ऐसा मत मानो ॥
जीव स्वयं उत्थान पतन के कार्य सभी ये कर सकते हैं ।
अपने भाग्य विधाता यें हैं कर शुभ कर्म उभर सकते हैं ॥
ईश्वर दृष्टा है स्वामी है "मिश्र" भोक्ता है अनुचर है ॥ ४ ॥

मै कहता हूँ मृत्यु इसे– है, लोग जिसे कहते जीना है ।।

मरे हुए समझो उनको जो अत्याचार किया करते हैं ।
व्यभिचारी बन पर नारी संग अनुचित प्यार किया करते ।।
मरे हुए उनको भी जानो जो बद-कार किया करते हैं ।
जिनके द्वारा जीव दुखी हो हा-हाकार किया करते हैं ।।
अन्यों के सब अधिकारों को बल पूर्वक जिसने छीना है ।। १ ।।

मरे हुए वे भी हैं जो नर केवल स्वार्थ सिद्ध करते हैं ।
मरने में क्या कमी रही जो अत्याचारों से डरते हैं ।।
मरे हुए हैं वे जो जीकर सिसक सिसक कर दम भरते हैं ।
मरना और किसे कहते जब पशु की भाँति मनुज चरते हैं ।।
दुर्बल दीन हीन बन खाते – यह भी क्या खाना पीना है ।। २ ।।

है प्रत्यक्ष हानि उसको भी जो जन छोड़ नहीं पाते हैं ।
अर्थहीन की व्यर्थ प्रथाओं को भी तोड़ नहीं पाते हैं ।।
दानवता की गरदन को भी तोड़ मरोड़ नहीं पाते है ।
सदाचार की ओर स्वयं के मुखको मोड़ नहीं पाते हैं ।।
बीनाई रखते हैं फिर भी रहते जैसे नाबीना है ।। ३ ।।

इस जग में जो जीना जाना उसको ही है जीता समझो ।
सच्चरित्र सीखा अपनाना उसको ही है जीता समझो ।।
जाना जिसने आन निभाना उसको ही है जीता समझो ।
जीवन क्या है ? यह पहचाना उसको ही है जीता समझो ।।
'मिश्र' नहीं तो क्या जीना है फटा हुआ पैबंद सीना है ।। ४ ।।

मैं हूँ काल नाम सुन मेरा जीव मात्र सब भय खाते हैं।
यत्न करें कितना भी कोई किंतु नहीं बचने पाते हैं ।।

मैं हूँ काल मृत्यु भी मैं हूँ एवं मेरा नाम समय है।
सब का साथी हूँ पर मेरा सब को नहीं पूर्ण परिचय है ।।
मैं हूँ काल आप सच समझो छुपा न रहता कभी कहीं हूँ।
सदा ध्यान में रखिये यह भी मैं सत्ता चैतन्य नहीं हूँ ।।
मैं हूँ काल भयानक मुझको व्यर्थ समझ कर घबराते है ।। १ ।।

मैं हूँ काल अवधि रहने तक जीवों का रक्षण करता हूँ।
अवधि बीत जाने पर ही मैं सब को ही भक्षण करता हूँ ।।
मैं हूँ काल बात सच भी है जीव मात्र मेरा भोजन है।
जन्म जगत में लेने वाला होता वह मेरे अर्पण है ।।
मैं हूं काल यथावत मुझको समझ न कोई समझाता हैं ।। २ ।।

मैं हूँ काल कराल न इतना जितना लोग मुझे कहते हैं।
राक्षस असुर पिशाच समझकर व्यर्थ लोग डरते रहते हैं ।।
मैं हूँ काल शरीर आत्मा को ही पृथक किया करता हूँ।
जन्म दूसरा पाने सब को अवसर सदा दिया करता हूँ ।।
मैं हूँ काल तत्व ज्ञानी जन आलिंगन कर हर्षाते हैं ।। ३ ।।

मैं हूँ काल मात्र ईश्वर ही बचा हुआ है बचा रहेगा।
जीवों के आगे तो यह आतंक सदा ही मचा रहेगा ।।
मैं हूँ काल नाम सुन कर ही "मिश्र" कभी तुम मत घबराओ।
व्यर्थ कल्पना करके मेरी भय खाते हो मत भय खाओ ।।
मैं हूँ काल अजी मेरे कारण ही परिवर्तन आते हैं ।। ४ ।।

जा समर भूमि में सुत मेरे बेखटके ।
पर देख हार कर आना नहीं पलट के ।।

तू है क्षत्री का लाल काल से लड़ना ।
दिल खोल जूझना औ दिल खोल झगड़ना ।।
पीछे मत हटना आगे आगे बढ़ना ।
रे पुत्र कभी शत्रु के पाँव मत पड़ना ।।
लड़ना जब तक सिर गिरे भूमि पे कट के ।। १ ।।

मेरे इस गर्भाशय में तू आया है ।
मैंने पय इस ही कारण पाया है ।।
करना न मोह यह नाशवान काया है ।
है जीव अमर वेदों ने बतलाया है ।।
शत्रु का सामना करना आगे डट के ।। २ ।।

खाना छाती पर, मार छाती पर ।
बतलाना कभी न पीठ चहे जाए सर ।।
मैं जी लूंगी जग बीच निपूती बन कर
मैं वीर प्रसूता कहलाकर जीवन भर ।।
कर विजय शत्रु पर आना तुरत झपट के ।। ३ ।।

हे लाल अगर बलिदान देशहित होगा ।
तो मेरा हृदय प्रफुल्लित गर्वित होगा ।।
तू अपने मरने पर भी पुलकित होगा ।
मेरा भी चित आनन्दित हर्षित होगा ।।
ले नाम "मिश्र" प्रभु का वाणी से रट के ।। ४ ।।

हो जाते जो जन जग में,
बलिदान हँसते हँसते ।
सर्वोपरि ले लेते हैं वे,
स्थान हँसते हँसते ॥

अन्यों के हित कर देते अपना जीवन जो अर्पण ।
निस्वार्थं भाव से अपना करते सर्वस्व समर्पण ॥
कष्टों को सहकर निशि दिन तप त्याग किया करते हैं ।
कर्तव्य परायणता से अनुराग किया करते हैं ॥
सब जग करता है उनका सम्मान हँसते हँसते ॥ १ ॥

लड़ने जटायु रावण से तैयार हो गया मरने ।
प्राणों का किया विसर्जन सीता की रक्षा करने ॥
हनुमान आदि ने अपना जीवन अर्पण कर डाला ।
हो गया अमर यश उनका जग में जीवन भर डाला ।
अवसर पर दे देते हैं जो प्राण है हँसते हँसते ॥ २ ॥

हल्दी घाटी में राणा घायल हो गये अधिक जब ।
राणा को हटा वहाँ से राणा बन गया स्वयं तब ॥
वह भेद खुल गया तब फिर शत्रु ने उन्हें सँहारा ।
देही के टुकड़े टुकड़े कर बुरी तरह से मारा ॥
मर कर यों रखी उन्होंने भी आन हँसते हँसते ॥ ३ ॥

देवियाँ सहस्रों जल कर मर गई आन रखने को ।
देश का जाति का, अपना गौरव व मान रखने को ।
वैभव सुख सब कुछ त्यागा कर दी बलिदान जवानी ॥
मर कर शरीर से अपनी रख छोड़ी अमर कहानी ॥
कर लिया अजी कइयों ने विष पान हँसते हँसते ॥ ४ ॥

वध करने का जब सोचा ले छुरा आतताई ने।
रक्षा हित राजकुँवर की तब उस पन्ना धाई ने ॥
कर उदय सिंह की रक्षा अपना सुत मरवा डाला।
पन्ना ने अपने सुत का बलिदान है करवा डाला ॥
न्योछावर कर दी अपनी सन्तान हँसते हँसते ॥ ५ ॥

सालार और तानाजी जब गये सिंह गढ़ पर थे।
रण घमासान जो कर के दिखलाये कैसे नर थे ॥
साधारण बात नहीं थी वध उदय भानू का करना।
अत्यन्त कठिन था उसके सम्मुख रण बीच उतरना ॥
उसको किस भाँति दिखाया श्मशान हँसते हँसते ॥ ६ ॥

इतिहास अमर हो जाता जातियाँ जिया करती हैं।
इन बलिदानों पर वाणी फिर गर्व किया करती हैं ॥
जीना उसको आता है मरना जिसको आता है।
जो केवल जीना जानें, जीते जी मर जाता है ॥
मरना यों हमें लिखा है भगवान हँसते हँसते ॥ ७ ॥

धनवान है वह धन रहकर जिसमें दातृत्व भरा हो।
बलवान है वह जो जग में, दुखियों का दुःख हरा हो ॥
शासक है वह जो जग में ना अत्याचार करा हो।
जीवित कहलाता वह जो अन्यों के लिये मरा हो।
करता है "मिश्र" उन्हीं का गुणगान हँसते हँसते ॥ ८ ॥

सदा–राष्ट्र को दान चाहिये,
युवक जनों के प्राण चाहिये।
और साथ ही महा त्यागियों का
जीवित बलिदान चाहिये॥

रामचन्द्र से वीर धनुर्धर भरत सरीखे धीर चाहिये।
लक्ष्मण और शत्रुघ्न सरीखे वीर धीर गम्भीर चाहिये॥
सेनापति सुग्रीव, जटायु के जैसे भी व्यक्ति चाहिये।
और विभीषण जैसे साथी, सुगठित सैनिक शक्ति चाहिये॥
अपनी धाक जमाने वाले प्रलयंकर हनुमान चाहिये।

अर्जुन जैसे वीर चाहिये सदा शान से जीने वाले।
और साथ ही भीम चाहिये रक्त शत्रु का पीने वाले॥
पुत्र चाहिये अभिमन्यु से मातृभूमि पर मरने वाले।
नकुल और सहदेव सदा सहयोग साथ में करने वाले॥
महारथी सारथी कृष्ण से नीति निपुण विद्वान चाहिए॥

महामान्य चाणक्य सरीखे लेने को प्रतिशोध चाहिये।
दग्ध शत्रु को करनेवाला दुर्वासा सा क्रोध चाहिये॥
चन्द्रगुप्त से स्कन्ध गुप्त से प्रबल सबल सम्राट चाहिये।
शत्रु काँपने लगें, राष्ट्र का ऐसा रूप विराट चाहिये॥
जीवन और उसी जीवन में हमें सदा सम्मान चाहिये॥

छत्रसाल राणा प्रताप से शिवा हमीर सुवीर चाहिये।
गोरा बादल से बलिदानी शूर वीर गम्भीर चाहिये॥
जयमल फत्ता के जैसी ललकार और फटकार चाहिये।
बालक युवक वृद्ध सब में ही लिए देश के प्यार चाहिये॥
शत्रु बने तूफान, "मिश्र" को बन जाना चट्टान चाहिये॥

२७३

सचमुच तुम सौभाग्यवान हो
युद्ध क्षेत्र में मरने वालो।
मरे नहीं तुम अमर हो गए
जग का संकट हरने वालो ।।

वल पाती है जब कि तुम्हारा धरती गर्म लहू पीती है।
तुम मरते हो तभी देश की शेष सभी जनता जीती है।।
हो जाते हो उऋण देश से हम सब को तुम ऋणी बनाकर।
पा लेते हो स्वर्ग सहज में मृत्यु देवता को अपना कर ।।
धन्य धन्य हो धन्य देश पर तन न्योछावर करने वालों ।।

तुम जैसों पर ही करते हैं गर्व देश वासी हम सारे।
तुम जैसों से ही रहते हैं ये ऊँचे मस्तिष्क हमारे।।
तुम जैसों पर टिका हुआ है इस जग में अस्तित्व हमारा।
हम जीने वालों को सच है तुम से मिलता रहा सहारा ।।
मृत्युंजयी सत्य में तुम हो नहीं मृत्यु से डरने वालों ।।

सर्वोपरि है मृत्यु तुम्हारी देख ईर्षा होती मन में।
रक्खा क्या है कीट पतंगों जैसे इस जग के जीवन में।।
पर ऐसा मरना भी सबके कहो भाग्य में कहाँ लिखा है।
कई जन्म के पुण्य इकट्ठे होते जिनके वहाँ लिखा है ।।
तुम महान हो अपने सुख का ध्यान न कुछ भी धरने वालो ।।

मरने को तो सभी मरेंगे इस मरने में कुछ न धरा है।
मृत्यु तुम्हारी मरने में ही जीवन यश भंडार भरा है ।।
ईश्वर से है यही प्रार्थना प्रभो "मिश्र" में जीवन भर दो।
हो जाए बलिदान देश पर इतनी दया दयामय कर दो ।।
भर कर यह वीरत्व भावना का पुरुषों में भरने वालो ।।

२७४

कोख तुम्हारी धन्य हो गई
माता तुम सच्ची माता हो।

जननी बनना बहुत सरल है माता बनना बहुत कठिन है।
कोख धन्य हो ऐसा दिन भी आता नहीं भाग्य के बिन है ॥
तुम वह माँ हो जिसके सुत ने जग को जीवन दान दिया है।
सच्चे अर्थों में जिसने धरती माँ का सम्मान किया है ॥
वीर वही है धरती माता पर न्योछावर हो जाता हो ॥

तुम जैसा सौभाग्य कहो क्या प्राप्त कहीं सबको होता है।
क्या प्रत्येक पुत्र माता का युद्ध क्षेत्र में जा सोता है ॥
वीर प्रसूता बनने का क्या बार बार अवसर आता है।
हो उत्पन्न कुपुत्र कोख से क्या वह भी कोई माता है ॥
केवल मात्र रक्त का चाहे कहने माता का नाता हो ॥

लाज अनेकों माताओं की रखी प्राण है जिसने देकर।
भारत माँ ने गले लगाया बेटे को उसकी बलि लेकर ॥
सच है माता लिये तुम्हारे यह प्रसन्नता का अवसर है।
अभिमन्यु सा पुत्र तुम्हारा मरकर वह हो गया अमर है ॥
कोटि कोटि माता बहनों की माता तुम जीवन दाता हो ॥

कोख तुम्हारी ने न मान लो ऐसा सुत उपजाया होता।
यदि कपूत बनकर इस जग में, जीवन सदा बिताया होता ॥
और अचानक मृत्यु मान लो हो जाती कोई अवसर पर।
क्या वह कुछ भी कीर्ति कमाता इस प्रकार जीकर या मरकर ॥
"मिश्र" धन्य है वह सुत माता के यश को जो फैलाता हो ॥

मरने की मत कर चिन्ता
जीने का यत्न किया कर।
नैसर्गिक अटल नियम पर
तू अपना ध्यान दिया कर ॥

देही को तजना क्या है भाड़े का भवन बदलना।
लेता है जन्म उसे तो निश्चय पड़ता है चलना ॥
दूसरे ढंग से भी तू यह बात समझ ले ऐसे।
जो पहन रखे हैं तन पर यह वस्त्र बदलते जैसे ॥
दृष्टान्त सामने अपने रखकर यह सदा जिया कर ॥ १ ॥

यह मरना बुरा नहीं है तू समझ रहा है जितना।
आता न समझ में यों क्यों तू घबराता है इतना ॥
मरने पर ही तो नूतन तू जन्म कहीं पर लेगा।
माता का प्यार मिलेगा, प्रभु फिर उत्तम तन देगा ॥
इन छिपे रहस्यों को भी कुछ तो तू जान लिया कर ॥ २ ॥

सोता है तू रातों में प्रातः फिर जग जाता है।
आवश्यक फिर अपने तू कामों में लग जाता है ॥
बस इसी भाँति मरने को सोना है समझ चलाकर।
दूसरे जन्म में जागृत होना है समझ चलाकर ॥
धार्मिकता से तू जग में खाया कर और पिया कर ॥ ३ ॥

जो बात है तेरे बस की तू उस पर सदा डटा कर।
साहसपूर्वक दृढ़ रहकर, डर कर पीछे न हटा कर ॥
होनी है हो रहती है उसकी चिन्ता न करा कर।
क्या "मिश्र" बता कर लेगा भय खाकर या घबराकर ॥
गल गया वस्त्र है उसको मत बैठा हुआ सिया कर ॥ ४ ॥

स्वाभिमान से जीने वाले
नहीं दीनता दर्शाएँगे ।
आन बान की रक्षा करने
हँसते हँसते मर जाएँगे ।।

मूल्य नहीं है जीने का भी, स्वाभिमान से बढ़कर जग में ।
स्वाभिमान खो देने वाला गिर जाता है चढ़ कर जग में ।।
स्वाभिमान जीवित है जिसका उसको ही है जीता समझो ।
स्वाभिमान ना रहा शेष तो पशु सम जीवन बिता समझो ।
स्वाभिमान के रक्षक जो हैं कभी नहीं वे दब पाएँगे ।। १ ।।

जनता भला बुरा कुछ बोले उसकी वे परवाह न करते ।
करें प्रशंसा लोग हमारी इसकी भी वे चाह न करते ।।
लगन यही रहती उनमें है स्वाभिमान जाने ना पाए ।
मिले मिले न मिले न मिले सुत किन्तु आन जाने ना पाए ।।
अपने स्तर से नहीं गिरेंगे अत्याचार नहीं ढाएँगे ।। २ ।।

सत्पुरुषों के आगे झुकने प्रति दिन ही तैयार रहेंगे ।
अति मानी बनकर घमण्ड की कभी न कोई बात कहेंगे ।।
साधारण जनता की बातें सुन सुन कर वे सहन करेंगे ।
स्वाभिमान पर चोट पड़े पर भार नहीं वे वहन करेंगे ।।
जो करनी है बात समय पर वे करके ही दिखलाएँगे ।। ३ ।।

जैसी स्थिति में रहना होगा बड़ी शान के साथ रहेंगे ।
उस प्रभु की इस वसुन्धरा पर स्वाभिमान के साथ रहेंगे ।।
आत्म शान्ति का सुख भोगेंगे ईश्वर का गुणगान करेंगे ।।
"मिश्र" सदा अपनी त्रुटियों पर कमियों पर भी ध्यान करेंगे ।।
जो मिल जायेगा पहनेंगे जो मिल जाएगा खाएँगे ।। ४ ।।

कायर जन मरने से पहले
कई वार मर जाते हैं ।
मरना उनका यही है
जो वे कायरता दिखलाते हैं ।।

वीर पुरुष को इस जग में बस एक वार मरते देखा ।
कही बात से नहीं उसे तो पग पीछे धरते देखा ।।
अन्तरात्मा के विरुद्ध जाते उसको डरते देखा ।
यदि हो गई भूल उससे तो फिर आहें भरते देखा ।।
भीरू लोग वचनों से टलने कभी नहीं भय खाते हैं ।। १ ।।

वीर पुरुष के लिए आन से बढ़कर होते प्राण नहीं ।
जीना नहीं चाहते उनकी रह पाए यदि आन नहीं ।।
लक्ष्य भ्रष्ट पथ भ्रष्ट बने ऐसे वे हैं नादान नहीं ।
असफल होने देता है ऐसों को वह भगवान नहीं ।।
कायर जन विचलित होकर जग में अपयश ही पाते हैं ।। २ ।।

वीर पुरुष के मर जाने पर उसकी पूजा होती है ।
हँसते हुए मरा करता वह सारी जनता रोती है ।।
लोग शान से उसके गुण गा गाकर पढ़ते पोथी है ।
उसकी घटनाओं को अपने मन में सदा पिरोती है ।।
कायर की कायरता पर तो सब जन धूल उड़ाते हैं ।। ३ ।।

चाह हमारी यही रहे बस कृपा यही भगवान करें ।
एक वार ही मरें शान से जीवन को बलिदान करें ।।
वार बार हम मरें नहीं सब लोग हमारा मान करें ।
ऐसे वीर बने हम भी यह "मिश्र" सदा गुण गान करें ।।
जो कायर होते वे तो मन नहीं किसी के भाते हैं ।। ४ ।।

मैं कहता हूँ जीवन है वह
लोग जिसे कहते मरना है ।

नूतन शक्ति लिये आया था और सदा ही काम किया हूँ ।
सदा विरोधी तत्वों से मैं जीवन भर संग्राम किया हूँ
अब तो इस जर्जरित देह से मोह न कर बदली करना है ।

आया था जब मैं रोया था जाता हूँ तब तुम रोते हो ।
जाने पर तो मैं प्रसन्न हूँ आने पर खुश तुम होते हो ।।
रोना खुश होना यह छोड़ो भव सागर से यदि तरना है ।

वस्त्र बदलते हुए किसी को क्या होते दुःखित देखा है ।
अपितु पुराने वस्त्र त्यागते सब ही को हर्षित देखा है ।।
जब यह बात सत्य है तो फिर वस्त्र बदलते क्या डरना है ।

कहीं किसी माँ की गोदी में मर कर ही तो पहुँचूंगा मैं ।
मर कर ही तो सत्य समझिये जन्म कहीं जाकर लूँगा मैं ।।
मृत्यु अटल है इसी बात पर भी तो ध्यान हमें धरना है ।

यदि पहले मरता न कहीं पर तो फिर कौन जन्म ले आता ।
आज यहाँ पर मर कर ही तो कहीं जन्म लेने हूँ जाता ।।
"मिश्र" समझ लो तथ्य आज तुम व्यर्थ अरे आँखें भरना है ।

२७९

तुम मरा उसे मत समझो
जो शरीर से मरता है।
दूसरा जन्म ले वह तो
देही धारण करता है ॥

है मरा हुआ वह मानव जो घोर दुराचारी है।
धिक्कार सुनाते रहती जिसको जनता सारी है ॥
तुम उसे मरा मत समझो जो मरता सुयश कमाकर ।
कर्तव्य पारायण वन जो जाता है सुयश जमा कर ॥
तुम उसे मरा मत समझो जो पापों से डरता है ॥ १ ॥

है मरा हुआ, वन रहता अत्याचारी जो मानव ।
आकृति मानव की पाकर फिरता वन कर जो दानव ॥
तुम उसे मरा मत समझो कर्तव्य पारायण जो था ।
हो गया अमर यों कहिये आदर्श पुरुष यदि वो था ॥
है मरा हुआ वह जन जो सब का जीवन हरता है ॥ २ ॥

मर गया उसे जानो जो करता सव का अनहित है ।
जो बिना विचारे करता सव काम सदा अनुचित है ॥
कामान्ध वना फिरता है उल्टा करता है धन्धा ।
इससे तो अच्छा वह है जो है आँखों का अन्धा ॥
है मरा हुआ वह नर जो पशु बना हुआ चरता है ॥ ३ ॥

जिन के जीने से जग में होती कुछ भी न भलाई ।
जो नहीं जानते जग में होती क्या पीर पराई ॥
वस मात्र स्वार्थ अपना ही साधते असुर बनकर जो ।
अंकुश न धर्म का रहता जिनके उस जीवन पर तो ॥
है "मिश्र" अमर जो मानव इस ओर ध्यान धरता है ॥ ४ ॥

जो महान पंडित इस जग में
राजनीतिक कहलाते हैं।
धोखा देना आता उनको
वे न कभी धोखा खाते हैं॥

होती उनसे भूल न ऐसी पड़ता हो पछताना जिससे।
करते ऐसी बात न कोई लेना पड़े बहाना जिससे॥
मित्र शत्रु कब बन सकता है शत्रु मित्र कब बन सकता है?
उन्हें ज्ञान रहता है इसका कौन व्यक्ति कब तन सकता है॥
प्रतिपक्षी के मुख को लखकर मन में तुरत ताड़ जाते हैं॥ १॥

विरोधियों की दुर्बलता का तुरत पता लग जाता उनको॥
बात उगलवा लेना सारी, ढंग ठीक यह आता उनको॥
कर लेते संतुलन शक्ति का हम बढ़ कर या वह बढ़कर है।
करें किस समय कार्य कौन सा कभी न फिर पड़ता अन्तर है॥
सोच समझकर जो भी कहते फिर करके ही दर्शाते हैं॥ २॥

राम कृष्ण चाणक्य शिवाजी का पूरा इतिहास देखिये।
थे सरदार पटेल देश का कैसा किया विकास देखिये॥
कहा उसे करके दिखलाया, हुआ वही जो कुछ कह डाला।
कहता है इतिहास कि इनका कैसा था व्यक्तित्व निराला॥
भूल चूक कर भी न किसी के बहकावे में वे आते हैं॥ ३॥

आकर चले गए इस जग में व्यक्ति करोड़ों सत्ताधारी।
किन्तु हुवे विरले ही ऐसे राजनीति के श्रेष्ठ खिलाड़ी॥
बड़े बड़े विद्वान धुरन्धर जिनका यश का गान किया है।
विरोधियों ने भी जिनका यश गाया है सम्मान दिया है॥
"मिश्र" वीरवर ऐसे नर ही, सदा सभी के मन भाते हैं॥ ४॥

संजय ने धृतराष्ट्र भूप का
लाकर यह सन्देश सुनाया ।
लड़ने में कुछ सार नहीं है,
झूठी है यह जग की माया ।।

सत्ता पद संपत्ति आदि ये साथ नहीं जाने पाएँगी ।
व्यर्थ मोह इनसे करना है सभी यहीं पर रह जाएँगी ।।
एक वंश में रण का होना, बहुत बुरा है कुछ विचारिये ।
कहला भेजा है नर पति ने बात मानिये शांति धारिये ।।
जब कि सुना सन्देश वहाँ पर धर्मराज के मन को भाया ।। १ ।।

और कहा वह दुर्योधन है दुष्ट किन्तु तुम सब सज्जन हो ।
शुद्ध विचारों से प्रेरित हो रखते आए धार्मिक पन हो ।।
बहुत बड़ा गहरा प्रभाव चढ़ बैठ गया मन पर अर्जुन के ।
अन्य सभी व्याकुल हो बैठे, संजय का यह भाषण सुनके ।।
कृष्णचन्द्र के और नहीं यह द्रुपद सुता के मन को भाया ।। २ ।।

कहा कृष्ण ने संजय तुमको भेजा गया भावना भरके ।
तुमने उसे सुनाया मुख से शब्द जाल की रचना करके ।।
दुर्योधन है दुष्ट इसलिए शासक बने सँभाले शासन ।
ये सज्जन हैं करें तपस्या ओर लगा बैठें योगासन ।।
संजय स्तब्ध रह गया सुनकर शब्द न एक निकलने पाया ।। ३ ।।

और कहा ये सहनशील बन सब कुछ संकट सहना चहिये ।
दुर्योधन सम्राट कहाकर राजा बन कर रहना चहिये ।।
कहा कृष्ण ने कह दो उनसे हम अधिकार नहीं छोड़ेंगे ।
बहे रक्त की नदियाँ हम करना प्रतिकार नहीं छोड़ेंगे ।।
"मिश्र" मौन होकर के संजय अपना मुँह ले तुरत सिधाया ।। ४ ।।

कहा कृष्ण ने सुनो कर्ण तुम
सच मुच कुन्ती के जाए हो।
किंतु आज तक सूत पुत्र,
हे वीर व्यर्थ में कहलाए हो ॥

कहा कृष्ण ने दुर्योधन को छोड़ो और इधर आ जाओ।
कुन्ती सुत कहलाकर जग में भारत के सम्राट कहाओ ॥
पाँचो पाण्डव सेवक बन कर तनमन से सम्मान करेंगे।
तुम्हें उच्च पद पर बैठाकर चरणों पर निज शीश धरेंगे।
दासी पुत्र समझ अपने को आज तलक तुम सकुचाए हो ॥ १ ॥

कहा कर्ण ने आज मुझे तुम बड़े स्नेह से समझाते हो।
लोभ राज का देकर मुझको उच्च वर्ण में बैठाते हो ॥
सम्मति आज आपकी मेरे नहीं समझ में कुछ आती है।
मीठी बातें आज गले के नीचे उतर नहीं पाती है ॥
स्वार्थ सिद्ध करने तुम अपना मुझको समझाने आए हो ॥ २ ॥

मेरा जब अपमान हुआ था, तब उस दुर्योधन के द्वारा।
पाया था सम्मान श्रेष्ठ पद जब था सबने किया किनारा ॥
मैंने वचन दिया तब उनको तुम्हें राज्य पर बैठाऊँगा।
मैं लूंगा प्रति शोध पार्थ से जीतूंगा या मर जाऊँगा ॥
समय बीत जाने पर आकर अब मेरे तुम गुण गाए हो ॥ ३ ॥

रखो ध्यान में कृष्ण ! बात यह धर्मराज से मत कह देना '।
कुन्ती सुत हूँ बात कभी भी उनके यह ध्यान में रहेना ॥
वीर पुरुष के लिए नहीं है कोई वस्तु वचन से बढ़कर।
साथ पार्थ के कृष्ण आप भी आ जाना अब रण में चढ़कर ॥
छिपा रहस्य "मिश्र" अब आकर मेरे सन्मुख दर्शाते हो ॥ ४ ॥

कुन्ती ने यों कहा कर्ण से,
आज वचन लेने आई हूँ !
पूर्ण करोगे आशा मेरी,
अपनी झोली फैलाई हूँ ।।

मैं जननी तुम सुत हो मेरे, इस रहस्य को जाना होगा ?
यदुराई के द्वारा, तुमने, अपने को पहचाना होगा ।।
अभय दान दो मुझको बेटे, यह कि पार्थ का वध न करोगे।
ध्यान रखोगे इन वचनों का, जब तुम प्रांगण में उतरोगे ।।
कहा कर्ण ने जान गया हूँ, यह कि पाण्डवों का भाई हूँ ।। १ ।।

याचक जो कोई भी आता, खाली हाथों कभी न जाता ।
खाली हाथ न जाओगी तुम, किन्तु बात यह सुनलो माता ।।
भारत का सम्राट बनाने, दुर्योधन को वचन दिया है ।
अर्जुन का वध करने का भी, मैंने मन में ठान लिया है ।।
अर्जुन का भाई हूँ फिर भी, दुर्योधन का अनुयाई हूँ ।। २ ।।

धर्म, भीम, सहदेव, नकुल के प्राणों का-ना-हरण करूँगा ।
अर्जुन को मारूँगा या तो उसके हाथों स्वयं मरूँगा ।।
नैतिकता कह रही मुझे यों, प्रण है प्राणों से भी प्यारा।
इस कारण से अधिक न इससे दे सकता सहयोग तुम्हारा ।।
स्पष्ट हृदय की बात खोलकर अपनी इच्छा दर्शाई है ।। ३ ।।

कुन्ती द्वारा समाचार सुन, कृष्णचन्द्र ने हर्ष मनाया ।
चारों की रक्षा तो होगी क्या यह भी कम लाभ उठाया ।।
अर्जुन की रक्षा की चिन्ता, और कर्ण के वध करने की ।
"मिश्र" रह गई चिन्ता अब तो बात यही है बस डरने की ।।
कुन्ती ने यों कहा सफल मैं पूर्ण नहीं होने पाई हूँ ।। ४ ।।

२८४

कहा कृष्ण ने सुनो युधिष्ठिर
शान्तिदूत बन मैं जाऊँगा ।
दुर्योधन से बातचीत कर
अन्तिम निर्णय कर आऊँगा ।।

कहा युधिष्ठिर ने मैं तो नहीं आपको जाने दूंगा ।
जो भी कुछ बीतेगी मुझ पर मैं सहर्ष सब कुछ सह लूंगा ।।
जाने पर ना जाने कपटी दुर्योधन क्या का क्या कर दे ।
पहुँचादे आघात आपको अथवा बन्दी घर में धर दे ।।
क्षमा करें इसलिए आपको मैं तो भेज नहीं पाऊँगा ।। १ ।।

कहा कृष्ण ने यदि ऐसा ही यदि वह करके दिखलाएगा ।
ऐसा करने से पहले ही वह सीधा यमपुर जाएगा ।।
मुझको धोखा देने वाला, हुआ नहीं उत्पन्न अभी तक
धर्मराज ! यह कृष्ण कहीं भी धोखा खाया नहीं अभी तक
रखो अटल विश्वास हृदय में, कभी न मैं धोका खाऊंगा ।। २ ।।

कहा युधिष्टिरने यह सुन कर अच्छा सुनिये बात आप यह ।
समझौता करलीजे भगवन पाँच गाँव भी देता हो वह ।।
कट मरते से तो अच्छा है, यदि यह बात मानता हो तो
सर्व नाश करने के बदले, इसको ठीक जानता हो तो
कहा कृष्ण ने ठीक बात है बने जहाँ तक समझाऊँगा ।। ३ ।।

किया भीम ने अर्जुन ने भी धर्मराज का पूर्ण समर्थन ।
नकुल और सहदेव सुन रहे करके अपनी नीची गर्दन ।।
दबी हुई वाणी में कुछ सहदेव विरोध किया समझाया ।
लघुभ्राता होने के कारण, नहीं अधिक कुछ कहने पाया ।।
सोचा नहीं मानने पर तो मैं क्या करके दिखलाऊँगा ।। ४ ।।

२८५

कहा कृष्ण से यों कृष्णाने भीरू बन गए तुम भी भैया ।
चक्र सुदर्शनधारी होकर चुप बैठोगे कृष्ण कन्हैया ।।
कहा कृष्ण ने शान्त रहो तुम इच्छा पूर्ण तुम्हारी होगी ।
"मिश्र" देखते रहो दूर से खेल खेलता हूँ मैं जो भी ।।
मन में नहीं रखूँगा कुछ भी सबकुछ करके दर्शाऊँगा ।। ५ ।।

कृष्णा ने यों कहा क्रुद्ध हो अर्जुन तुमसे ऐसी आशा ।
कभी नहीं रक्खी थी मैंने आज हो रही घोर निराशा ।।
नाम धनंजय रखकर अपना बड़ा घमण्ड किया करते हो ।।
क्षत्रिय कहलाकर के जग में बनकर वीर जिया करते हो ।।
तुमने तो यह बात कही थी बदल लेकर हर्षाऊँगा ।। ६ ।।

भीम तुम्हें भी हाँ में हाँ यों करने की सूझी है ऐसे ।
दुर्योधन का रक्त अरे केशों में तुम डालोगे कैसे ।।
क्या न कहा था गदा घुमाकर जाँघ तोड़कर दुर्योधन की ।
हृदय चीर पी रक्त दुष्ट का प्यास बुझाऊँगा मैं मन की ।।
पांच गाँव ले आज कह रहे पेट पाल कर दिखलाऊँगा ।। ७ ।।

तुम सब से मैं पूछ रही हूँ क्या सबके आगे बोलोगे ।
पाँच गाँव ले कर के क्या तुम राशन की दुकान खोलोगे ।।
दीन हीन बनकर करलोगे, पाँच गाँव लेकर समझोता ।
क्या कर लेगा वह भी तुम से पाँच गाँव देकर समझोता ।।
कृष्ण ! कह रहे तुम भी, यह संदेश तुम्हारा पहुँचाऊँगा ।। ८ ।।

कहा कृष्ण ने हे दुर्योधन
पाँच गाँव की माँग हमारी ।
सुख पूर्वक घर बैठे भोगो
शेष रहे जो धरती सारी ।।

दुर्योधन ने कहा सुई की नोंक है धरती तो उतनी भी ।
विना युद्ध के ले न सकोगे बात कह रहा हूँ मैं जी की ।।
हे केशव ! उनका शासन में किंचित भी अधिकार नहीं है।
इसीलिए ही यह दुर्योधन देने कुछ तैयार नहीं है ।।
एक मात्र हम ही शासक हैं ध्यान लगा तुम सुनो मुरारी ।। १ ।।

रक्खा था प्रस्ताव कृष्ण ने चतुराई से भोलेपन से ।
किन्तु चतुराई छुप पाई महाधूर्त उस दुर्योधन से ।।
कूट नीति के दोनों पंडित नीति निपुण दोनों महान थें ।
मनोभावना एक दूसरे की क्या वे थे नहीं जानते ?।।
चली निराली चाल किंतु हो सफल नहीं पाए बनवारी ।। २ ।।

कृष्ण चाहते थे कि सुयोधन से पहले स्वीकार करा लें ।
वचनबद्ध कर दुर्योधन को वातावरण अनुकूल बना ले ।।
प्रमुख पाँच ग्रामों को लेने का रखकर प्रस्ताव सामने ।
क्या है उसके मन में वे सब आ जाएँगे भाव सामने ।।
बन सशक्त फिर धीरे धीरे कर लेंगे रण की तैयारी ।। ३ ।।

इसी बात को दुर्योधन ने समझा अस्वीकार कर दिया ।
भाव दबा भीतर के, ऐंसे बाहर प्रकट विचार कर दिया ।।
फिर जब करना चाहा वन्दी दुर्योधन ने बनवारी को ।
सावधान हो गए कृष्ण भी देख धूर्त की मक्कारी को ।।
निकल वहाँ से गए "मिश्र" रह गए देखते सब नर नारी ।। ४ ।।

सफलता बन जाती वरदान ।
सफल हुआ साधारण जन भी–
कहलाता विद्वान ।।

कहता है इतिहास, आज भी देख रहे हैं आप ।
प्राप्त सफलता कर लेने पर, लग जाती है छाप ।।
कहाता है वह व्यक्ति महान ।। १ ।।

कितना भी सुयोग्य मानव रखता हो भाव पवित्र ।
सफल न होने पर लिक्खेगा उसका कौन चरित्र ।।
करेगा कौन गुणों का गान ।। २ ।।

किये हुए ही शुभ कर्मों का फल मिलता है आज ।
थोड़ा सा श्रम करने पर ही, बन जाते है काज ।।
प्राप्त कर लेता उच्च स्थान ।। ३ ।।

अत्याचारी प्रथम गर्जना करके अत्याचार ।
अन्त बुरा निश्चय ही होगा, उसका किसी प्रकार ।।
आज चाहे ना देवे ध्यान ।। ४ ।।

ईश्वर के न्याय में न अन्तर आता सच है बात ।
इसीलिए मत करो "मिश्र" अन्याय किसी के साथ ।।
न्याय को चलो सदा पहचान ।। ५ ।।

एक व्यक्ति ने प्रश्न किया यह,
भीष्म द्रोण से विद्वानों ने ।
साथ दिया क्यों दुर्योधन का,
चुने हुए ऐसे दानों ने ॥

नारी का अपमान किया था, बैठी भरी सभा में जिसने ।
क्यों अन्जान हो गए दोनों, इन्हें कहो रोका था किसने ॥
इनकी भी दृष्टि में दुष्ट थे, दुर्योधन दुःशासन दोनों ।
इन दोनों को किसका भय था, क्यों अंजान रहे बन दोनों ॥
अन्तरात्मा की हत्या की इन दोनों ही धी मानों ने ॥ १ ॥

वेदों के प्रकाण्ड पण्डित थे, देते थे उपदेश सभी को ।
प्रश्न सामने हो जाता है खड़ा अजी इस भाँति तभी तो ।
कम से कम तटस्थ रह जाते तो भी दुर्बलता कहलाती ।
फिर भी मन को समझाने के लिए बात कहने में आती ॥
धृतराष्ट्र को बना दिया था अन्धा उसकी सन्तानों ने ॥ २ ॥

रक्खा था सम्मान कर्ण का दुर्योधन ने भरी सभा में ।
होने उऋण कर्ण ने उठकर वहीं प्रतिज्ञाकरी सभा में ॥
भारत का सम्राट बनाकर सिंहासन पर बैठाऊँगा ।
यदि ऐसा न कर सका तो बलिदान स्वयं मैं हो जाऊँगा ॥
नाश किया क्यों पाण्डव दल का, भीष्म द्रोण के उन बाणों ने ॥ ३ ॥

मैंने कहा मनुष्यों में यह कमी सदा रहती आई है ।
साथ चाहते देना, उसके दोष—न देते दिखलाई है ॥
भीष्म द्रोण जैसे मानव क्या आज नहीं है मान रहे हो ।
बात दूसरी है यदि उनको आप नहीं पहचान रहे हो ॥
अपने साथी दुष्ट जनों का साथ दिया है इन्सानों ने ॥ ४ ॥

यदि कोई तुमसे द्वेष करें,
तो तुम उससे भी प्यार करो ।
यदि दुर्व्यवहार करे कोई,
तो भी तुम सद् व्यवहार करो ।।

अपशब्द कहें कोई तुमको शुभ वचन सुनाओ तुम उसको ।
यदि गला दबाता हो कोई तो गले लगाओ तुम उसको ।।
चाहें यदि बुरा तुम्हारा तो तो भी उससे तुम स्नेह रखो ।
हो शत्रु तुम्हारा उससे भी मत कुछ मन में संदेह रखो ।।
दुष्ट और दुर्जनों के प्रति भी उत्पन्न न अशुभ विचार करो ।। १ ।।

निर्दय बनकर वध करने भी आए उसको भी क्षमा करो ।
है दया धर्म का मूल समझ उसके आगे भी नमा करो ।।
करता हो क्रोध व्यक्ति कोई बदले में तुम मत क्रोध करो ।
तुम हो महान करबद्ध हुए सज्जनता से अनुरोध करो ।।
असुरों का जो आचरण रहे तुम मत उसके अनुसार करो ।। २ ।।

झूठे तो झूठ कहेंगे तुम सच्चे हो इससे सत्य कहो ।
तुम ज्ञानी हो ! हो सहनशील ! सब सहने को तैयार रहो ।।
यदि नीच नीचता करता हो करने दो तुम मत नीच बनो ।
तुम अपनी उत्तमता न तजो अंजान हो आँखें मींच बनो ।।
कितना भी संकट आ जाए तुम कभी नहीं प्रतिकार करो ।। ३ ।।

ये कही हुई बातें कितनी सुनने में सुन्दर लगती हैं ।
साधारण जनता को मन में कितनी ये हितकर लगती हैं ।।
पर सर्वनाश है छिपा हुआ, सच समझो इन हीं बातों में
सीधे साधे मानव होते वे आ जाते आघातों में ।।
तुम "मिश्र" तर्क से सोचो भी मनमाना मत निर्धार करो ।। ४ ।।

२८९

कहा पार्थ ने सुनो सखे रण,
करने मैं तैयार नहीं हूँ ।
लिए स्वार्थ के हत्या करना,
करता यह स्वीकार नहीं हूँ ॥

इन स्वजनों को मारे से यदि मिले विश्व का पूरा शासन ।
ऐसा पाप कमाने पर यदि मिले विश्वभर का सुख साधन ॥
सर्वनाश कर विजय पताका को फहराना ठीक नहीं है ।
घर के घर में घर कों का अस्तित्व मिटाना ठीक नहीं है ॥
इसीलिए अभिनेता के पद से करता मैं प्यार नहीं हूँ ॥ १ ॥

कहा कृष्ण ने सुनो पार्थ तुम आततायियों से न लड़ोगे ।
अत्याचार बढ़ेगा जग में यदि न कहीं उनसे झगड़ोगे ॥
क्षत्रिय का जो धर्म है उसको तुम अधर्म है मान चलोगे ।
मिट जाएगा न्याय नहीं कर्तव्य कर्म पर ध्यान धरोगे ॥
जो कर्तव्य है उस पर कहते होता मैं बलिहारी नहीं हूँ ॥ २ ॥

भीष्म द्रोण इत्यादि तुम्हारे साथ कहो क्यों लड़ने आए ?
तुम जिस भाँति विचार रहे क्यों ना विचार ये मन में लाए ?
ये चाहते मिटाना तुमको तुम इनकी रक्षा करते हो ।
क्या है न्याय नाम इसका ही तुम इनसे लड़ते डरते हो ॥
नहीं चाहता किस मुख से कहते करता प्रतिकार नहीं हूँ ॥ ३ ॥

लोगे यदि प्रतिशोध नहीं तो, जग में तुम कायर कहलाकर ।
अपयश लोगे और सहोगे अत्याचारों को दुख पाकर ॥
गीता का उपदेश दिये पर युद्ध किया कर विजय बताया ।
साथ "मिश्र" के सब जनता ने हर्ष सहित गुण भी यश गाया ।
कहा कृष्ण ने धर्म रहित करता मैं कारोबार नहीं हूँ ॥ ४ ॥

अर्जुन ! लड़ना होगा तुमको,
इस कान सुनो उस कान सुनो ।
क्यों का कारण समझाता हूँ,
देकर वचनों पर ध्यान सुनो ॥

जो आततायियों का करने प्रतिकार व्यक्ति घबराता है ।
व्यर्थ का अहिन्सावादी बन, मुख अपना सदा छिपाता है ॥
तब अत्याचारी मनमाना, कर अत्याचार दिखाता है ।
अंततः एक दिन निश्चय ही लड़ने का अवसर आता है ॥
तब लड़ने से तो अब लड़ना, अच्छा है देकर ध्यान सुनो ॥ १ ॥

अत्याचारी को मनमाना जो चाहे, यदि करने दोगे ।
जनता को उसका दास बना, जीने दोगे मरने दोगे ॥
यदि तुम भी बने दास उसके, उससे दबते ही जाओगे ।
परिणाम कहो क्या होगा फिर, फ़िर भी तो शस्त्र उठाओगे ॥
बिन लड़े नहीं रह पाएगा, जग में अपना सम्मान सुनो ॥ २ ॥

ये भीष्म, द्रोण, दुर्योधन का, खुलकर के साथ दे रहे हैं ।
अत्याचारी है समझ उसे, फिर भी वे पक्ष ले रहे हैं ॥
सहयोग पापियों का देना, यह भी तो पाप कहाता है ।
ऐसों के साथ युद्ध करना यह पाप न माना जाता है ॥
इसलिए युद्ध करने वाला कहलाता व्यक्ति महान सुनो ॥ ३ ॥

निर्दोषी का वध करना तो, यह पाप कहाएगा निश्चय ।
पर प्रत्याक्रमण करें कोई तो रखो न कुछ मन में संशय ॥
इसलिए बढ़ो साहस करके, शंका न रखो कुछ भी मन में ।
ऐसे अवसर तो बार बार आते न "मिश्र" है जीवन में ॥
लोहू की प्यासी धरती को, तुम दो लोहू का दान सुनो ॥ ४ ॥

कहा कर्ण ने शल्य सुनो यह
युद्ध आज का अनुपम होगा ।
साथ पार्थ के आज हमारा,
खुलकर डट कर दमखम होगा ॥

निर्णायक है युद्ध आज का कर्ण वीर या पार्थ रहेगा ।
कौन प्रबल है इन दोनों में होकर यह चरितार्थ रहेगा ॥
विश्व चकित होकर सोचेगा जाग उठा है क्या प्रलयंकर ।
वर्णन जिसका हो न सकेगा ऐसा होगा युद्ध भयंकर ॥
कहा कर्ण ने प्रलय हो रहा ऐसा लोगों को भ्रम होगा ॥ १ ॥

कहा शल्य ने कर्ण बताओ जब गौ हरण किये थे तब भी ।
तुमने भी तो युद्ध किया था साथ रहे थे योद्धा सब भी ॥
वहाँ पार्थ से पिटे गये थे विचलित हो घबरा बैठे थे ।
कुछ न बिगाड़ सके थे उसका मुख उस समय छिपा बैठे थे ।
कहा शल्य ने सुनो और भी सुनने पर तुमको गम होगा ॥ २ ॥

कहा शल्य ने अभिमन्यू को तुमने धोखे से मारा था ।
था निःशस्त्र वह तुमने उसको कायरता से संहारा था ॥
कहा शल्य ने आज प्रशंसा अपने ही मुख से करते हो ।
लज्जा नहीं आ रही तुमको यों बखान सुख से करते हो ॥
कहा शल्य ने हे दासी सुत ! व्यर्थ तुम्हारा यह श्रम होगा ॥ ३ ॥

कहा कर्ण ने सुनो शल्य यह बड़ी धृष्टता तुमने की है ।
मरने की तैयारी करलो तुम्हें यहाँ अब मरना ही है ॥
दुर्योधन ने कहा न यों आपस में वैर विरोध बढ़ाओ ।
कर्ण शल्य की बातों पर तुम ध्यान न देकर लड़ने जाओ ॥
कर्णार्जुन भिड़ गए परस्पर बढ़कर कौन कौन कम होगा ॥ ४ ॥

कहा कर्ण ने सुनो ! धनंजय,
तनिक रुको. मत शस्त्र चलाओ ।
मुझे सँभलने का अवसर दो,
यों अधर्म मत करने जाओ ।।

शस्त्र रहित पर शस्त्र चलाना, क्षत्रिय का यह धर्म नहीं है ।
बात नहीं है शोभनीय यह शूर वीर का कर्म नहीं है ।।
अर्जुन ने सोचा यों मन में, कर्ण कह रहे बात उचित है ।
बात धर्म संगत है एवं, न्याय नीति से यह प्रेरित है ।।
कहा कृष्ण ने कर्ण इधर दो ध्यान और मुझको समझाओ ।। १ ।।

द्रुपद सुता को भरी सभा में, नंगी करने की ठाना था ।
दुर्योधन को देकर के उपदेश तनिक तो समझाना था ।।
लाखा गृह में जीवित इनको जब कि भस्म करना चाहा था ।
तुम भी थे सहयोगी उनके जब जीवन हरना चाहा था ।।
शुभ सम्मति दे रहे आज तुम, तबकी भी मत बात भुलाओ ।। २ ।।

विष देकर जिस समय भीम को, बीच नदी के जब फेंका था ।
उपदेशक बन वहाँ तुम्हारा, काम न क्या समझाने का था ।।
शस्त्र रहित अभिमन्यु को जब सात महारथियों ने मारा ।
उनमें भी तुम प्रमुख व्यक्ति थे, तब क्या था कर्तव्य तुम्हारा ।।
धर्म धुरीण आज बनते हो उन पापों का फल भी पाओ ।। ३ ।।

अपने पर जब आती है तब पापी देते धर्म दुहाई ।
डींग मारते धर्म कर्म की न्याय नीति के बन अनुयाई ।।
कहा कृष्ण ने सुनो धनंजय, इस अवसर को जाने मत दो ।
शक्ति लगा दो न दो सँभलने आगे पाँव बढ़ाने मत दो ।।
निसंकोच हो शस्त्र चलाओ, "मिश्र" इन्हें यमलोक पठाओ ।। ४ ।।

कुन्ती सुत श्री धर्मराज से
माँग किया याचक नें आकर ।
आज नहीं परसों आओ,
कह भेज दिया उसको समझाकर ।।

मिले मार्ग में भीमसेन, याचक से पूछा बोला उसने ।
परसों बुलवाया है मुझको कह अपना मुख खोला उसने ।।
याचक को ले साथ भीमने कहा कि आओ साथ हमारे ।
खाली हाथ न जा पाओगे, आकर आप हमारे द्वारे ।।
लोग इकठ्ठे किये भीम ने तुरत नगाडा बजा बजाकर ।। १ ।।

ऐसी यह उस समय प्रथा थी, अति प्रसन्नता के अवसर पर ।
घर के सारे कार्य छोड़कर पूरे लोग इकट्ठे होकर ।।
धूमधाम से उत्सव करते, रंग रेलियाँ वहाँ मनाते ।
उत्सव को करके समाप्त फिर अपने अपने घर को जाते ।।
पता चलाकर धर्मराज ने पूछा फिर भीम को बुलाकर ।। २ ।।

कहा भीमने सुनिये राजन, अति प्रसन्नता मेरे मन में ।
आज हुई है जैसो मेरे हुई नहीं पूरे जीवन में ।।
परसों तक तुम नहीं मरोगे, क्या यह कुछ प्रसन्नता कम है ।
इस प्रसन्नता के कारण ही उत्सव मना रहे सब हम हैं ।
समझ गये सम्राट युधिष्ठिर चुप बैठे मन में सकुचाकर ।। ३ ।।

कहा भीमने जो देना हो इस याचक को अभी दीजिये ।
अपने द्वारा ही है भैया इसकी इच्छा पूर्ण कीजिये ।।
जीवन का कुछ नहीं भरोसा, निकला साँस न आए आए ।
सोची हुई बात मानव की "मिश्र" न मन में ही रह जाए ।।
जो देना था दिया नृपतिने इच्छित धन मन में हर्षा कर ।। ४ ।।

मैकाले तेरा सफल हुआ अभिमान ।
तेरे मानस पुत्रों ने ले लिया है तेरा स्थान ।।

भारत में इंग्लिश भाषा तूने फैलाना चाहा था ।
ईसाई मत का प्रभाव फैलाकर छाना चाहा था ।।
भारतीयता को भारत से शीघ्र मिटाना चाहा था ।
बौधिक दास बना लोगों पर धाक जमाना चाहा था ।।
तेरी सोची हुई बात को आज मिला मैदान ।। १ ।।

तेरे बन पटु शिष्य कर रहे तेरी आज्ञा का पालन ।
तेरे ये दासानुदास बन पूर्ण कर रहे आज वचन ।।
देखो जिधर उधर ही तेरी शिक्षा पर है लगी लगन ।
अंग्रेजीयत को फैलाने लुटा रहे हैं तन मन धन ।।
दिन पर दिन अब बढ़ी जा रही है तेरी सन्तान ।। २ ।।

सभी मतों के, सभी दलों के, पढ़े लिखे एवं अनपढ़ ।
तेरे मार्ग बताए पर ही चले जा रहे आगे बढ़ ।।
भाषा भूषा रहन सहन तेरी अपना कर रहे अकड़ ।
इन शिष्यों के द्वारा तूने जीत लिया भारत का गढ़ ।।
ये काले मेकाले तेरी बढ़ा रहे हैं शान ।। ३ ।।

तूने अपने समय काम जो यहाँ नही कर पाया था ।
वही काम हो रहा आज जो तेरे मन को भाया था ।।
वृक्ष बन गया आज बीज जो तूने यहाँ लगाया था ।
मर सब गये विरोधी जो बलपूर्वक तुझे दबाया था ।।
तेरे ही अनुकूल आज परिवर्तन हुआ महान ।। ४ ।।

ईसाई मत का प्रभाव भी चारों ओर छा रहा है ।
भारत के मतवालों का वल, प्रति दिन घटा जा रहा है ।।
शासक वर्ग सभी पश्चिम के ही गुण गान गा रहा है ।
छिपे रूप से भारतियों पर अत्याचार ढा रहा है ।।
समझ रहे हैं "मिश्र" इसी में अपना गौरव मान ।। ५ ।।

२९५

बनतो गए स्वतन्त्र, देश की अभी आत्मातो मूछित है ।
इस मूर्छावस्था में ही हम समझ रहे हैं अपना हित है ।।

भारत है स्वाधीन किन्तु सव, संस्कृति भाषा वेश खो दिया ।
ऋषियों की शिक्षा ऋषियों के जो भी थे आदेश खो दिया ।।
बुद्धिमान बढ़ रहे देश में किन्तु आत्म सम्मान खो दिया।
ज्ञान और विज्ञान बढ़ रहा पर हमने सद्ज्ञान खो दिया ।।
अंग्रेजीयत के आगे तो कर डाला सब कुछ अर्पित है ।। १ ।।

धनपति तो बन रहे सभी पर अपनी सभी प्रतिष्टा खो दी ।
अपने पूर्वजनों के प्रति जो वनी हुई थी निष्ठा खो दी ।।
भौतिकता की चकाचौंध में, अपनी आध्यात्मिकता खो दी ।
दिखने में उन्नति की है पर भीतर की मौलिकता खो दी ।।
साधारण जन के आगे तो, भारत दिखने में विकसित है ।। २ ।।

भ्रष्टाचार बढ़ रहा दिन दिन, रखना श्रेष्टाचार खो दिया ।
अनुशासन खो दिया और नैतिकता का आधार खो दिया ।।
देश भक्ति की शुद्ध भावना से करना व्यापार खो दिया ।
देश वासियों के सँग में, करना भी सद् व्यवहार खो दिया ।।
"मिश्र" समझने लगे सभी, हम जो भी करते वही उचित है ।। ३ ।।

वह देश भक्त कैसा जिसको
अपनी भाषा से प्यार नहीं ।
इंग्लिश भाषा का मोह अभी हैं
तजने को तैयार नहीं ॥

वह देश भक्त कैसा, अपनी संस्कृति को और सभ्यता को ।
तैयार नहीं निज इच्छा से अपनाने अपनी शिक्षा को ॥
छिटकाने भारतीयता को तैयार रहे तन मन धन से ।
मिलती हो देश भक्ति की भी शिक्षा ना उसके जीवन से ॥
जो समझ रहा हो अपनापन है अपनाने में सार नहीं ॥ १ ॥

वह देश भक्त कैसा महत्व देवे न देश की धरती को ।
हम देख रहे हैं ऐसी ही अब तो भावना उभरती को ॥
जिनको स्वदेश की वस्तु नहीं भाती है नहीं सुहाती है ।
फॉरेन की बनी वस्तुओं पर अब दृष्टि सदा ही जाती है ॥
सच समझो देश भक्ति का तो यह कहलाता आधार नहीं ॥ २ ॥

वह देश भक्त कैसा ऐसा जो वातावरण बनाता है ।
हो नष्ट देश का स्वाभिमान ऐसा अवसर ले आता है ॥
खा पी कर मस्त रहो घूमो, होता जगमें चरित्र क्या है ।
करके विचार अनुभव करिये भारत का बना चित्र क्या है ॥
चहुँ ओर अराजकता सा है, करते कुछ कभी विचार नहीं ॥ ३ ॥

वह देश भक्त कैसा जो है खो डाले सब प्रभाव अपना ।
दासत्व भरे कुविचारों का जो बना रखा स्वभाव अपना ॥
जो देश भक्ति का माप दण्ड होता है उसे न स्थान दिया ।
फिर भी करते हैं दावा यह हमने इतना उत्थान किया ॥
ऐसों का कभी "मिश्र" ने तो करना चाहा सत्कार नहीं ॥ ४ ॥

संघर्ष किया भारतियों ने,
अंग्रेज समन्दर पार गया।
पर, विजयी भारत हाथों से,
उन अंग्रेजों से हार गया॥

अंग्रेज गए पर गई नहीं भारत से अंग्रेजी भाषा।
अंग्रेजीयत को अपनाने की हो रही प्रवल है अभिलाषा॥
मिट रही है भारत की संस्कृति, जा रहे किधर ये नारी नर।
सब साथ गर्व के चलते हैं अंग्रेजों के पद जिन्हों पर॥
स्वाधीन देश के होते ही, अपना आचार विचार गया॥ १॥

खो दिया देश ने स्वाभिमान, खो डाला सब गौरव अपना।
निज इच्छा से अंग्रेजों का हाथों से मानस पुत्र बना॥
दासत्व स्वयं अपना कर के अन्धा अनुकरण कर रहा है।
उनकी प्रत्येक बात पर ही देखो आचरण कर रहा है॥
वर्चस्व खो दिया सब अपना, अपने पर से अधिकार गया॥ २॥

भाषा के साथ वेश भूषा सब रहन सहन बदला अपना।
हो गया हवा बापूने जो सच करना चाहा था सपना॥
दारू बन्दी करने वाले, दारू के आदी हो बैठे।
जो सत्य अहिन्सावादी थे, वे सब कुछ अपना खो बैठे॥
जो उमड़ पड़ा था हृदयों में, वह सब स्वदेश का प्यार गया॥ ३॥

गोवध बन्दी करना चाहा उस समय महात्मा गाँधी ने।
इस समय अजी होने न दिया सत्ताधीशों की आँधी ने॥
हनुमान बनाना चाहा था, पर भारत बन बैठा बन्दर।
प्रत्यक्ष दिख रहा जो कुछ भी हो रहा "मिश्र" इसके अन्दर।
हो सका नहीं जो चाहा था, उल्टा ही हो विस्तार गया॥ ४॥

जिस शासक के द्वारा होगी,
जिस दिन सच्ची जीत ।
उस शासक के हम गाएँगे,
बड़े हर्ष से गीत ।

जिसके द्वारा यहां अराजकता का होगा ह्रास ।
भारतीय संस्कृति का होगा चारों ओर विकास ।।
जिसके द्वारा राष्ट्रीयता चमकेगी चहुँ ओर ।
देशद्रोह करने वालों को नहीं मिलेगा ठौर ।।
जिसके द्वारा शत्रु देश के होएँगे भयभीत ।। १ ।।

जिसके द्वारा भारत भर में गोवध होगा वन्द ।
सुधरेगा गो वंश देश का आएगा आनंद ।।
जिसके द्वारा दारू बन्दी का होगा जय घोष
सत्य समझिये उस दिन ही होगा हमको संतोष ।।
जिस शासक द्वारा आएगा वह दिन परम पुनीत ।। २ ।।

जिस शासक द्वारा मिट जाएगा सब भ्रष्टाचार ।
सत्य अहिन्सा अपरिग्रह का होएगा विस्तार ।।
चल चित्रों द्वारा फैलेगा यहाँ न भ्रष्टाचार ।
व्यसनों की भी यहाँ रहेगी कभी नहीं भरमार ।।
जिस शासक द्वारा होंगे शुभ कार्य सदा परिणीत ।।३ ।।

जिसके द्वारा पैदा होगा यहाँ आतम सम्मान ।
सच्चे अर्थों में होएगा भारत का उत्थान ।।
भूषा भाषा रीति नीति सब अपनी होगी मित्र ।
"मिश्र" बनेगा ऐसा भारत का जब चित्र चरित्र ।।
जिस शासक के द्वारा होंगे काम नहीं विपरीत ।। ४ ।।

समझो सच्चा नर्क उसी को।
दुश्चरित्र निर्माण जहाँ हो॥

जहाँ नहीं पर हित रहता हो। और न वश में चित रहता हो।
विषयी दुष्ट जनों के द्वारा नारी का अपमान जहाँ हो॥

दृष्टि लगी रहती पर धन पर। मरते हो जब लोग व्यसन पर।
घेर रखी हो तृष्णा जिनको बसा हुआ अज्ञान जहाँ हो॥

वहाँ रहेगा दुःख न क्यों कर ? होते हो दुष्कर्म जहाँ पर।
वहाँ दीनता क्यों न रहेगी रहा लोभ को स्थान जहाँ हो॥

उन्हें न क्यों मरने से भय हो। कहो मृत्यु पर कैसे जय हो ?
जिनसे माया मोह न छूटे धन ही जब भगवान जहाँ हो॥

जहाँ प्रेम का नाम नहीं हो। सदाचार का काम नहीं हो।
क्यों कर फिर चिर शान्ति रहेगी रहा न लक्ष महान जहाँ हो॥

चलें नहीं जब लोग नियम पर टिके नहीं जो जन संयम पर।
निज कर्तव्य कर्म अंकुश का रहे न कुछ भी ध्यान जहाँ हो॥

जहाँ भ्रात हो जैसे कौरव। क्यों न बने फिर वह घर रौरव।
कैसे हो सुख शान्ति, नहीं जब सबका त्याग समान जहाँ हो॥

भ्रष्टाचार जहाँ होता हो। हा-हाकार जहाँ होता हो।
रूद्र रूप उस प्रभु के भय से नहीं काँपते प्राण जहाँ हो॥

नर्क न क्यों वह ऐसा घर है। दैत्य न क्यों वे नारी नर है।
"मिश्र" प्रगति को मिले न अवसर अवनति के सामान जहाँ हो॥

समझो सच्चा स्वर्ग उसी को–
सच्चरित्र निर्माण जहाँ हो ।

बसा जहाँ परहित रहता हो–वश में जिनके चित रहता हो ।
विषय वासनाओं से हट कर नारी का सम्मान जहाँ हो ।। १ ।।

दृष्टि न हो जिनकी पर धन पर–मरता हो जो नहीं व्यसन पर ।
हो संतोष कोष में जिनके भरा हुआ सद् ज्ञान जहाँ हो ।। २ ।।

उन्हें सताएगा दुख क्यों कर ? होते हों शुभ कर्म जहाँ पर ।
वहाँ दीनता क्यों फटेगी नहीं लोभ को स्थान जहाँ हो ।। ३ ।।

मरने से उनको क्यों भय है, ? सदा मृत्यु पर उनकी जय है ।
जिनको माया मोह न घेरे उर में स्थिर भगवान जहाँ हो ।। ४ ।।

चले लोग जिस जगह नियम पर टिके हुए हों जो संयम पर ।
यों कर्तव्य कर्म अंकुश का रहता मन में ध्यान जहाँ हो ।। ५ ।।

जहाँ घृणा का नाम नहीं हो–दुराचार का काम नहीं हो ।
वहाँ न क्यों चिर शांति रहेगी सब का लक्ष महान जहाँ हो ।। ६ ।।

निश्छल हो परिवार राम सा, भ्राताओं में प्यार राम सा ।
एक सूत्र में बँधे हुए सब सबका त्याग समान जहाँ हो ।। ७ ।।

पिता सदृश्य जहाँ हो शासक, प्रजा पुत्रवत् ईश उपासक ।
अपने अपने अनुशासन में रहकर रखते आन जहाँ हो ।। ८ ।।

सुख पूर्वक सबको दें जीने अन्यों के अधिकार न छीने ।
रुद्र रूप उस प्रभु के भय से रहे काँपते प्राण जहाँ हो ।। ९ ।।

स्वर्ग नहीं क्यों ऐसा घर है देव न क्यों वे नारी नर हैं ?
"मिश्र" प्रगति करने हो अवसर उन्नति के सामान जहाँ हो ।। १० ।।
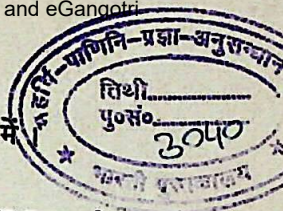
शान्ति तभी होगी त्रिभुवन में

मानव जब सब जीव मात्र से वैर न रखकर प्यार करेगा।
हिन्सा से रह दूर सदा ही स्नेह पूर्ण व्यवहार करेगा॥
दुष्कर्मों का दुर्व्यसनों का दृढ़ता से प्रतिकार करेगा।
अन्यों का भी और स्वयं का अपने आप सुधार करेगा॥
द्वेष ईर्षा घृणा न होगी सभ्य जनों के प्रति जब मन में॥ १॥

पर नारी के साथ मातृवत् पुरुषों का व्यवहार रहेगा।
अर्थ दोष से मुक्त रहेगा देश—न भ्रष्टाचार रहेगा॥
और साथ ही मेल मिलावट का न यहाँ व्यापार रहेगा।
शान्ति रहेगी क्यों न कहो फिर क्यों न सुखी संसार रहेगा॥
शुद्ध भावना शुद्ध आचरण और शुद्धता कर्म वचन में॥ २॥

ईश्वर और आत्म चिंतन कर नैतिकता का पालन होगा।
अनुशासन में रहकर सबका कार्य सदा संचालन होगा॥
पद लोलुपता धन की तृष्णा भी सीमा के पार न होगी।
जनता स्वार्थ साधने में तजने सुमार्ग तैयार न होगी॥
धनपति तो होंगे पर उनका, ध्यान नहीं होगा पर धन में॥ ३॥

यह नैसर्गिक नियम रहा है जब मानव शुभ कर्म करेगा।
शुभ फल सदा मिलेगा उसका, पापों को तज धर्म करेगा॥
सब ऋतुएँ अनुकूल रहेंगी, इच्छित जल प्रभु वर्षाएगा।
अना वृष्टि अति वृष्टि न होगी, जीव मात्र तब हर्षाएगा॥
"मिश्र" रहेगी शान्ति सदा ही जल में थल में और गगन में॥ ४॥

३०२

शान्ति कीजिये प्रभु त्रिभुवन में ।

जल में स्थल में और गगन में ।
अन्तरिक्ष में अग्नि पवन में ॥
औषधि वनस्पति वन उपवन में
सकल विश्व में जड़ चेतन में ॥

ब्राह्मण के उपदेश वचन में ।
क्षत्रिय के द्वारा हो रण में ॥
वैश्य जनों के होवे धन में ।
और शुद्र के हो तन तन में ॥ २ ॥

शान्ति राष्ट्र निर्माण सृजन में ।
नगर ग्राम में और भवन में ॥
जीव मात्र के तन में मन में ।
और प्रकृति में हो कण कण में ॥ ३ ॥
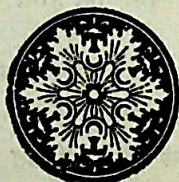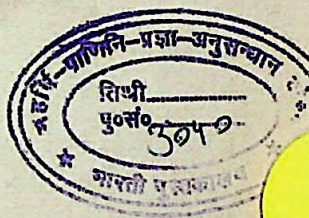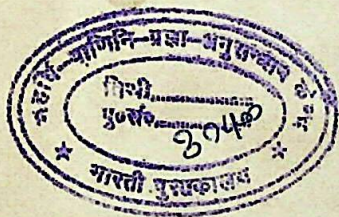
प्रकाशित पुस्तकें

रामचरित दर्पण, वाल्मीकि रामायण का संक्षिप्त–
पद्यानुवाद मू. ३–५०

वैदिक दर्पण पद्यमय सैद्धातिक विचार मू. २–५०

गद्यमय शाश्वत सत्य सिद्धान्त दर्पण
शंकाओं का समाधान मू. ४–००

मिश्र पद्याञ्जली मू. ६–००

वैदिक कुण्डलियाँ (प्रेस में)

प्राप्ति स्थान

आर्य प्रतिनिधि सभा मध्य दक्षिण

दयानन्द मार्ग (सुलतान बाजार) हैदराबाद–५०० ००१

एवं

पं. मुन्नालाल मिश्र

प्राचीन मल्लेपल्ली हैदराबाद–५०० ००१ (आं. प्र.)